महिलाओं की दृष्टि में पुरुष

मन्दिर, बीकानेर

महिलाओं की दृष्टि में पुरुष

डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा

मरुधर साहित्य मन्दिर, बीकानेर

यू जी सी की प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित

© डा पुरुषोत्तम आसोपा

प्रकाशक
मरुधर साहित्य मन्दिर
124 बिन्नाणी बिल्डिंग
अलखसागर, बीकानेर

संस्करण प्रथम, 1987

मूल्य पैंसठ रुपये

आवरण शिवजी

कलापक्ष क्राइदअली

मुद्रक
साखला प्रिंटस, बीकानेर

Mahılaon Kı Drıshtı Men P

प्रेम व प्रेरणा की अजस्र स्रोत
जीवन संगिनी श्रीमती कमला आसोपा
के लिए

// मैं आभारी हूँ—

— समस्त उपन्यास लेखिकाओ का, उनके उपन्यासो व विचारो का शोध प्रबन्ध मे उपयोग करने के लिए

— गुरुवर डा. कन्हैयालाल शर्मा का, शोध निर्देशन के लिए

— अभिन्न डा शिव नारायण जोशी (शिवजी) का, पग-पग पर प्रेरित कर उत्साह बढाने के लिए

— भाई सूर्य प्रकाश बिस्सा का, शोध हेतु सामग्री उपलब्ध कराने के लिए

— विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का, ग्रन्थ को प्रकाशन सहायता देने के लिए

— राजस्थान विश्वविद्यालय के कुल सचिव श्री एन के सेठी एव उप-कुल सचिव श्री आर एन श्रीवास्तव का तथा प्रोजेक्ट सेक्शन के श्री पी पी. पारीक का, यू जी सी की प्रकाशन साहयता दिलाने हेतु कष्ट उठाने के लिए

— मित्रवर डा. गेवरचन्द आचार्य, श्री प्रेमरत्न व्यास, डा धर्मचन्द्र जैन, डा दिवाकर शर्मा एव श्री हरीश मेहता का, उत्साहवर्द्धन के लिए

— डा नामवरसिंह का, परीक्षक के रूप मे 'शोध प्रबन्ध की जितनी तारीफ की जाय कम है' कहते हुए इसे हिन्दी शोध को नयी दिशा देने वाला शोध-प्रबन्ध बतलाने के लिए

— भाई देवीचन्द गहलोत व श्री काइदअली का, पुस्तक का आवरण पृष्ठ तैयार करवाने के लिए

— श्री दीपचन्द साखला व 'साखला प्रिटर्स' के समस्त कर्मचारी बन्धुओ का, पुस्तक की सुन्दर छपाई के लिए

— डूँगर कॉलेज, बीकानेर के विभागीय साथियो का, उनकी शुभकामनाओ के लिए

— बीकानेर के साहित्यकार बन्धुओ व समस्त साहित्यिक सस्थाओ का, साहित्य की समझ पनपाने मे सहायक होने के लिए

— सभी मित्रो, हितैपियो, परिजनो का, कर्म की प्रेरणा भरने के लिए

— आत्मज परितोप व पुनीत का शोध हेतु सभी प्रकार के परिश्रम करने के लिए

डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा

लेखिकाओं का व्यक्तित्व एवं जीवन दृष्टि' है। तीसरा अध्याय 'महिला उपन्यासकारों के पुरुष-पात्र' हैं। चौथा अध्याय 'महिला उपन्यास लेखिकाओं के उपन्यासों में पुरुष का व्यक्तित्व' है।

शोध प्रबन्ध का अंतिम अध्याय 'उपसंहार' है। इसमें शोध के निष्कर्षों को प्रस्तुत किया गया है। महिलाकृत उपन्यासों के पुरुष पात्रों के निरूपण द्वारा आज की महिलाओं की दृष्टि में 'पुरुष' को स्थापित करने का प्रयास किया गया है। निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए यह स्पष्ट किया गया है कि उपन्यासों में पुरुष को चित्रित करते समय नारी रूप में लेखिकाओं की दृष्टि क्या रही है? क्या पुरुष का नायकत्व खण्डित किया गया है? क्या पुरुष की सामाजिक प्रधानता को अस्वीकारा गया है? नारी की विवशताओं से इस दृष्टि में किस रूप में आगे बढ़ा गया है? इन बिन्दुओं पर दृष्टि डालने के उपरान्त नारी की दृष्टि में पुरुष, को स्थापित किया गया है।

अध्ययन के द्वारा यह प्रमाणित होता है कि महिलाओं के उपन्यासों में पुरुष के चित्रण में क्रमशः विकास हुआ है। स्वतन्त्रता के पूर्व तक पुरुषों के प्रति पूज्यभाव के दर्शन होते हैं। यही भावना स्वतन्त्रता बाद के प्रारम्भिक उपन्यासों में भी रही, किन्तु परवर्ती उपन्यासों में पुरुष के प्रति पूज्य भाव में कमी आई। उसके दोषों का उद्घाटन अधिक विस्तार से किया गया और उसके व्यक्तित्व के समकक्ष नारी के व्यक्तित्व को उठाया गया। साठोत्तरी काल में पुरुष के अहंकार, यौन दुर्बलता, पलायनवादिता आदि पर प्रश्न चिह्न लगाए गए। कहीं कहीं उसकी विवशता, लघुता आदि को भी प्रस्तुत किया गया। पुरुष के व्यक्तित्व पर नारी के अहं को प्रत्यारोपित करने का प्रयास भी किया गया। पुरुष का यह व्यक्तित्व जहाँ समकालीन पुरुष उपन्यास लेखकों के पुरुष पात्रों के समकक्ष है वहीं आज के पुरुष को भी सुन्दर अभिव्यक्ति देता है।

हिन्दी में इस प्रकार के विश्लेषणात्मक शोध-प्रबन्धों का अभाव है। मैंने अपनी ओर से इस दुष्कर कार्य को करने की यथाशक्ति चेष्टा की है। पुस्तकाकार सामग्री के अभाव में पत्रिकाओं में बिखरी सामग्री का तथा अध्ययन के उपरान्त निर्मित दृष्टि का प्रचुर उपयोग किया गया है। अपने प्रयास में मैं कितना सफल रहा हूँ इसका मूल्यांकन करने का दायित्व विद्वान् समीक्षकों पर छोड़ते हुए मैं शोध की त्रुटियों के लिए अग्रिम क्षमा माँग लेता हूँ।

डॉ. पुरुषोत्तम आसोपा

अहंकारी पति 79, अत्याचारी पति 80, अनुकूल पति 81, विवश पति 82, साराश 83, विधुर 84, प्रेम सम्बन्धों के आधार पर चित्रित पुरुष-पात्र 86—आदर्श प्रेमी 86, असफल एवं निराश प्रेमी 87, धोखेबाज एवं भ्रमरवृत्ति के प्रेमी 88, साराश 90, शैक्षणिक योग्यता के आधार पर चित्रित पुरुष-पात्र 90—शिक्षा के प्रति विचार 91, विदेशी शिक्षा प्राप्त पुरुष 91, शिक्षित पात्रो मे बौद्धिक चेतना का स्वरूप 92, अशिक्षित पुरुष 93, साराश 94, संस्कारो के आधार पर चित्रित पुरुष-पात्र 94, क्षेत्रीय संस्कारो के आधार पर चित्रित पुरुष-पात्र 96—महानगर के पुरुष पात्र 97, ग्राम्यांचल के पुरुष पात्र 98, पर्वतांचल के पुरुष पात्र 99, विदेश गमन किए हुए पुरुष पात्र 100, विदेशी पुरुष-पात्र 101, सामाजिक वर्गों के आधार पर चित्रित पुरुष-पात्र 103—उच्च वर्ग के पुरुष पात्र 104, मध्यवर्ग के पुरुष-पात्र 104, निम्नवर्ग के पुरुष पात्र 107।

69–111

चौथा अध्याय : महिलाओं के उपन्यासो मे पुरुष व्यक्तित्व

पुरुषों का बाह्य व्यक्तित्व 112—सौंदर्य 112, शिष्टाचार 115, साराश 117, पुरुषो का आन्तरिक व्यक्तित्व 117, सामाजिक धरातल पर पुरुष चिंतन का स्वरूप 119—विवाह सम्बन्धी मान्यताएँ 118, विवाह का स्वरूप 118 विवाह का प्रयोजन 119, विवाह और प्रेम 120, रोमांस और विवाह 120, विवाह और नैतिकता 121, दहेज 121, अनमेल विवाह 123, उम्र के आधार पर अनमेल विवाह 124, वैचारिक दृष्टि से अनमेल विवाह 125, अतर्जातीय विवाह 126, अत धार्मिक विवाह 127, तलाक 128, अन्य सामाजिक समस्याओ के प्रति पुरुष-दृष्टि 129—भ्रष्टाचार 130, मुनाफाखोरी 131, बेरोजगारी 131 वेश्यावृत्ति 131, परिवार 132—संयुक्त परिवार 132, परिवार के प्रति मान्यताएँ 133, धार्मिक धरातल पर पुरुष चिंतन 134—धार्मिक संकीर्णता 135, धार्मिक सहिष्णुता 136, राजनीतिक धरातल पर पुरुष चिंतन 137—आजादी का मोहभंग 137, राजनीतिक दलो के प्रति विचार 137, राष्ट्रीयता की भावना 138, व्यवस्था के प्रति दृष्टि 139, परिवर्तन के सम्बन्ध म विचार 139, आर्थिक धरातल पर पुरुष चिंतन 140—निष्कर्ष 141। 112–147

पांचवां अध्याय : महिलाओ की दृष्टि मे पुरुष एक विवेचन

महिलाओ के उपन्यास एक दृष्टि 148, उपन्यासो मे चित्रित पुरुष के विविध रूप 149, महिलाओ के उपन्यासो का पुरुष कौन सा है ? 152, उपन्यासों मे पुरुष व्यक्तित्व 152, महिलाओ की दृष्टि मे पुरुष 155, निष्कर्ष 160।

148–160

बनाए रखते हुए उन्हें विशिष्ट आनन्द की अनुभूति करा सके। स्तरीय साहित्यिक उपन्यासों की अपेक्षा जासूसी, घटना-प्रधान, अविश्वसनीय कथा प्रसंगो वाले उपन्यासों की माग यह सिद्ध करती है कि पाठक चाहे जितना शिक्षित ही क्या न हो वह सदैव उपन्यासकार से अपने मनोरंजन के साधनों की पूर्ति चाहता है। किन्तु जब लेखक उपन्यास के माध्यम से अपने विचार प्रस्तुत करने लगता है तब वह पाठकों की अपेक्षाओं की उपेक्षा कर जाता है। अत उपन्यास के माध्यम से अपनी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक मान्यताओं या जानकारियों का निरूपण करने के प्रयास मे लेखक पाठकीय जिज्ञासाओं का अपशमन कर देता है।

लेखकीय विचाराभिव्यक्ति के सम्बन्ध मे सामान्य धारणा यह है कि यदि वह अपने विचार उपन्यास मे प्रकट करना चाहता है तो उसे सचेत कलाकार की भाँति कथा-प्रवाह को बाधा न पहुँचाने वाले प्रसगो के द्वारा ही ऐसा करना चाहिए। डॉ गणेशन के अनुसार अगर कथा ठोकर खाए बिना ठीक तरह से चलती हो तो उसके साथ थोडी बहुत राजनीति और फिलॉसफी को सहन किया जा सकता है। ऐसी दशा मे भी यह आवश्यक है कि विषय के साथ इन विचारो का दूध-पानी का सा मिलन हो जाय।[3]

लेखक के विचारों के प्रतिनिधि-पात्र

अधिकांश उपन्यासकार अपने विचारो के प्रकाशन के लिए पृथक् कथा-प्रसगो, भाषणो के स्थान पर पात्रो का सहारा लिया करते हैं। वैसे भी उपन्यास के पात्र लेखक के चाहे-अनचाहे उसके विचारो का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। पात्रो के व्यक्तित्व निर्माण मे उसके स्वय के अनुभव तो कार्य करते ही है चरित्रो के बारे मे उसके पूर्वाग्रहों, रुचियो-अरुचियो व विचारो का भी अत्यत महत्त्व होता है। कभी-कभी तो पात्रो के बारे मे लेखक की निजी धारणाओं का दबाव इतना प्रबल हो जाता है कि लेखक उनको अभिव्यक्त किए बिना नही रह सकता है। यद्यपि उपन्यास के स्वरूप की दृष्टि से यह कोई अच्छी बात नही है फिर भी ऐसे पात्रो मे लेखक के व्यक्ति विशेष के प्रति की धारणाओं को समझा जा सकता है।

लेखिकाओं के पुरुष-पात्र

हिन्दी उपन्यास लेखिकाओं के उपन्यासो मे जो पुरुष पात्र चित्रित हुए हैं वे अप्रत्यक्षत उपरि उल्लिखित सिद्धान्त के आधार पर यथार्थ जगत् मे लेखिकाओं के पुरुषो के प्रति धारणाओं को सकेतित कर जाते हैं। एक स्त्री के रूप मे ये लेखिकाएँ पुरुष के बारे मे क्या विचार रखती है उसी का अवगन करना प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का प्रयोजन है।

लेखिकाओं के द्वारा चुने उपन्यास विषय

समनता व स्वातन्त्रता की बहु चर्चित नारेबाजी के बावजूद भारतीय नारी अनेक सीमाओ मे बँधी हुई है। यहाँ की समाज व्यवस्था मे पुरुषो को जो अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त हैं उनसे नारी आज भी कोसो दूर है। हम नारी महिमा की पूर्णता को सिर्फ घर की देहरी के भीतर ही देखने के अभ्यस्त हैं। इस कारण नारी के लिए अनेक प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष बन्धनो की सृष्टि नित्य होती रहती है। लेखिकाओ ने नारी पर होने वाले इन अत्याचारो को गहराई से अनुभव किया है। सम्वेदना के स्तर पर नारी की पीड़ामयी अनुभूतियो से अत्यन्त गहराई से जुड़े होने के नाते इन्होंने अपने लेखन में भी लिया है। इनके उपन्यासो के विषय इसी कारण मुख्यत नारी की समस्याओ से ही निर्मित हुए है। नारी की समस्याओ से परे प्रेम भावना, पारिवारिकता का सत्य, पति-पत्नी सम्बन्ध आदि विषयो से सम्बन्धित उपन्यासो म भी मुख्यत नारी को ही केन्द्रीय महत्त्व प्राप्त हुआ है।

विषय चयन के सम्बन्ध मे लेखिकाओ के विचार

नारी ने सिर्फ नारी को ही अपने उपन्यासो का विषय बनाया है इस सत्य को ये लेखिकाएँ भी स्वीकार करती हैं। इस सम्बन्ध म आत्म स्वीकारोक्ति के रूप म सूर्यबाला का यह कथन उचित ही प्रतीत होता है कि "अनुभव यही कहता है कि लेखिकाओं का क्षेत्र अधिकतर घर और नारी मन रहा है जबकि पुरुष लेखक का घर बाहर दोनो, लेकिन हम इस क्षति की पूर्ति भी तो कर लेती हैं—नारी मन की अथाह गहराईयो म पैठकर। और इतना तो मै दावे के साथ कह सकती हू कि नारी के अन्दर इतने गूढ तिलिस्म गुफाएँ और प्राचीरें है कि इन्हे भेद पाना आसान नही— जितनी सफ्यता और ईमानदारी से नारी भेद सकती है पुरुष नही।[4]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने नारियो के विषय चुनाव को सगत बतलाते हुए कहा है "यह विचित्र बात है कि स्त्री जब साहित्य लिखती है स्त्रियो के बारे म ही लिखती है और पुरुष जब साहित्य लिखता है तब भी स्त्रियो के सम्बन्ध म ही लिखता है। दोनो मे अन्तर यह होता है कि स्त्री के लिखने का उद्देश्य है अपने विषय म फैले हुए भ्रम का निराकरण और पुरुष का उद्देश्य है उसके विषय म और भी भ्रम पैदा करना।[5]

लेखिकाओ के उपन्यासो का विभाजन

लेखिकाओ के प्राय सभी उपन्यास नारी का एव उसकी समस्याओ को ही केन्द्र म रखकर लिखे गए हैं। इनके उपन्यासो के ऐसे मर्यादित विषय-क्षेत्र को देखते हुए उन्हे शास्त्रीय परम्पराओ के आधार पर विभाजित करके देखना उचित नही है।

परिवार की भर्त्सना की शिकार मिसेज श्रीवास्तव शिक्षित होते हुए भी सामाजिक बन्धनों की निरर्थक बेड़ियों में जकड़ी जाने को विवश है। ' देखो सोचा था, आर्थिक कष्ट के सिवाय कोई समस्या सामने नहीं आयेगी परन्तु यहाँ तो ढेरों परम्पराएँ सामने हैं जिन्हें तोड़ने के लिए कितना संघर्ष करना पड़ रहा है और दुःख तो तब होता है जब हम जैसे शिक्षित लोगों को भी परम्पराओं की बेड़ियों में बंधने को विवश होना पड़ता है।" पुरुष के अत्याचारी रूप का वर्णन इस उपन्यास में विस्तार से हुआ है।[7] 'नारी और पुरुष की मैत्री एक ही ढंग की होती है नारी और पुरुष में कोई सम्बन्ध नहीं होता सिर्फ यौन सम्बन्ध होता है।[8] दिनेशनन्दिनी डालमिया का उपन्यास 'मुझे माफ करना' भी नारी की पीड़ा को अभिव्यक्ति देता है। कथा के नायक सेठजी स्वयं तो एकाधिक पत्नियों के पति हैं लेकिन अपनी पत्नियों को वे सीता के आदर्श का पालन करने का उपदेश देते हुए उन्हें पतिव्रत धर्म का पाठ पढ़ाते हैं।

शिवानी के उपन्यासों में वैभव सम्पन्न वातावरण के भीतर से नारी की पीड़ा मुखरित हुई है। 'मायापुरी' की शोभा शिक्षिता भी है और सौन्दर्य की धनी भी है। मावस की सी तरल कान्ति रखते हुए भी विवश और निरुपाय है। परिस्थितियों के वात्याचक्र में उलझी हुई शोभा अनेक कष्ट पाती रहती है। 'श्मशान चम्पा' की नायिका चम्पा का जीवन भी इसी पीड़ा में से गुजरा है। पिता की मृत्यु, माँ की रुग्णता और छोटी बहिन का विधर्मी के साथ भाग जाने से यह अनपेक्षित विवशताओं में धकेल दी जाती है। योग्यता रखते हुए भी चम्पा के लिए नारी होना ही अभिशाप हो जाता है। 'भैरवी' में भी चन्दन की पीड़ा को उभारा गया है। शशिप्रभा शास्त्री का 'अमलतास' रजवाड़ों की मार से पीड़ित नारी की व्यथा कथा को प्रकट करता है। कामदा के लिए भीषण आतप में भी फलने फूलने वाला अमलतास अभिशाप बन जाता है। इस प्रकार रजवाड़ों के सुख–वैभव में घुटती जिंदगी की अभिव्यक्ति 'अमलतास' उपन्यास की नायिका कामदा का जीवन करता है। 'नावें' उपन्यास में नायिका मालती सोमजी जैसे स्वार्थ केन्द्रित व्यक्ति से छली जाती है और कुंआरी माँ के रूप में पीड़ित होती है। सोमजी उसे रखैल से अधिक सुविधाजनक स्थिति में नहीं रखना चाहते, परिवार उसे अस्वीकार कर देता है और जब वह अपने पैरों पर खड़े होकर अपना तथा पुत्री का भरण पोषण करने लगती तब सोमजी ही उसे बदनाम करने की चेष्टा करते हैं।

उषा प्रियम्वदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' भी शिक्षिता नारी की पीड़ा को प्रकट करता है। नौकरी करते हुए वह परिवार की समस्त जिम्मेदारियों को अपने कन्धे पर उठा लेती है किन्तु उसके लिए उसे अपनी हृदय स्थित भावनाओं को पूरी तरह कुचल देना पड़ता है। नील के साथ उसका प्रेम सम्बन्ध परिवार और समाज दोनों को मान्य नहीं होता और वह कॉलेज हॉस्टल की वार्डन के रूप में

पचपन खम्भों और लाल दीवारों के बीच बन्दिनी होकर अपनी आकांक्षाओं को कुचलने के लिए विवश हो जाती है।

शारदा मिश्र का 'नयना' उपन्यास तो पूरी तरह नारी की पीड़ा को ही प्रस्तुत करता है। अछूत होने का अभिशाप नायिका नयना को आजीवन झेलना पड़ता है। मरकर ही वह उस पीड़ा से मुक्त हो पाती है।

मालती जोशी के 'पाषाणयुग' तथा 'ज्वालामुखी के गर्भ में' दोनों लघु उपन्यास नारी पीड़ा को ही प्रकट करते हैं। पारिवारिक परिवेश में ये उपन्यास दहकते ज्वालामुखी में झोंकी गई स्थिति में नारी की व्यथा को प्रस्तुत करते हैं। 'सूखी नदी का पुल' की नायिका भी अधिक उम्र के पुरुष रायसाहब के साथ विवाह करके कष्ट ही पाती है और अन्ततोगत्वा सामाजिक स्थितियों से असम्पृक्त होकर आत्म-केन्द्रित हो जाती है। दीप्ति खण्डेलवाल के 'प्रिया' उपन्यास में पुरुष के वासनान्ध रूप के प्रहार से जूझती प्रिया एवं उसकी माँ की पीड़ा को प्रस्तुत किया गया है। यही स्थिति 'बात एक औरत की' उपन्यास की नायिका की भी है। पति के व्यभिचारी रूप से त्रस्त नारी की पीड़ा को इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार पारिवारिक एवं सामाजिक विषमताओं में उलझी नारी की पीड़ा को लेखिकाओं ने उपन्यासों का प्रधान विषय बनाया है।

संघर्षशील नारी की कहानी कहने वाले उपन्यास

नारी की पीड़ा को मुखरित करने की चेष्टा से आगे बढ़कर संघर्षशील नारी को अभिव्यक्त करने के लिए भी महिलाओं के द्वारा अनेक उपन्यास लिखे गए हैं। नारी जागरण के साथ ही सामाजिक धरातल पर नारी के चिन्तन में भी पर्याप्त रूपान्तर प्रस्तुत हुआ है। घर के बाहर का क्षेत्र केवल पुरुषों के लिए ही आरक्षित है, इस भावना को नारियों ने तोड़ा है। अब नारी राजनैतिक, सामाजिक, व्यावसायिक सभी क्षेत्रों में पुरुष के समान ही भाग ले रही है। प्रशासनिक क्षेत्रों में भी नारियाँ अब सक्षमता पूर्वक कार्य कर रही हैं। किन्तु नारी को घर से बाहर निकलने के लिए एक संघर्षपूर्ण लम्बी यात्रा तय करनी पड़ी है। जीवन के हर क्षेत्र में उसने संघर्ष किया है। पुराने प्रतिमानों, विश्वासों, आस्थाओं, स्थितियों से मुकाबला किया है। कहीं वह पराजित होकर हतोत्साहित हो गयी है, कहीं यश और लोकप्रियता की बाढ़ में फैशन की अन्ध तमिस्रा में भटक गई है तो कहीं संघर्षों से जूझते हुए सफल काम भी हुई है। इन लेखिकाओं के उपन्यासों में नारी संघर्ष का यह बहुमुखी रूप अनेक रूपों में प्रकट हुआ है।

उषादेवी मित्रा की लेखनी से इसका समारम्भ हुआ। उनके उपन्यास मुख्यतः नारी संघर्ष को ही मुखरित करते हैं। इनके 'वचन का मोल', 'नष्टनीड़' नारी के संघर्षमय

रूप को ही अभिव्यक्त करते हैं। 'वचन का मोल' विषम परिस्थितियों में नायिका के वचनों के मोल को चुकाने के महत्त्व को प्रकट करता है। 'नष्टनीड' की कहानी स्वातन्त्र्योत्तरकालीन स्थितियों में नारी के संघर्षमय रूप को सुन्दरता से प्रस्तुत करती है। रजनी पनिकर के अधिकांश उपन्यास नारी के संघर्ष को मुख्यत आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर नारियों की बाधाओं एवं कठिनाईयों को चित्रित करते हैं। 'मोम के मोती', 'सोनाली दी', 'दूरियां' इत्यादि उपन्यास नारी की ही समस्याओं पर आधारित है। शशिप्रभा शास्त्री का 'नावें' नायिका मालती की संघर्ष पूर्ण जीवन गाथा को प्रस्तुत करता है। उषा प्रियम्वदा के उपन्यास भी नारी के संघर्ष भाव को ही मुखरित करते हैं। किन्तु जहाँ 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की नायिका सुषमा संघर्षों से जूझते हुए थक कर हार जाती है परिस्थितियों के समक्ष पूरी तरह हथियार डाल देती है वहां 'रुकोगी नहीं राधिका' की राधिका नारी रूप में अपने अहं की रक्षार्थ निरन्तर जूझती रहती है।

नौकरीपेशा नारी की समस्याओं को प्रस्तुत करने वाले उपन्यास

पारिवारिक अथवा वैयक्तिक स्तर पर संघर्ष करने वाली नारियों से वर्किंग वीमेन की समस्याएँ सर्वथा भिन्न हैं। उनका संघर्ष दोहरे आयामों को समेटे हुए है। घरेलू स्तर पर पारिवारिक विषमताओं के साथ ही उस बाह्य परिवेश से, व्यवस्थाओं से भी टकराना पड़ता है। पुरुष यह कभी बर्दाश्त नहीं कर पाता कि नारी उससे आगे बढ़ जाय। दफ्तरों में इसलिए उनका रुख प्रतिद्वन्द्विता पूर्ण होता है। अधिकांशत यह भावना महिलाओं के मार्ग में रोड़े अटकाने के रूप में सामने आती है। इसलिए घर और बाहर सर्वत्र उसे पुरुषों के अहं की तुष्टी करनी पड़ती है। चन्द्रकिरन सौनरेक्सा के शब्दों में 'नौकरी पेशा स्त्री के संदर्भ में भी यह बात लागू होती है। उसे पति के पुरुषोचित अहम् को संतुष्ट करने के लिए घर में जहां तक सम्भव हो झुककर पूर्ण समर्पिता गृहलक्ष्मी के सभी कर्त्तव्य पूरे करने होते हैं और कार्यालय में भी जहां नारी होने के नाते वह एक लोभनीय वस्तु भी है, अपना संतुलन बनाना पड़ता है।'[9]

रजनी पनिकर ने वर्किंगवूमन के साथ न्याय किए जाने के लिए विपुल प्रयास किए हैं। अनेक भाषणों, निबन्धों के द्वारा उन्होंने उनकी वेदना को मुखरित करने का प्रयास किया है। उनके प्रति होने वाले अत्याचारों के प्रति अत्यन्त तल्खी के साथ *उन्होंने कहा है 'अपनी आजीविका कमाने* वाली नारी का संघर्ष ज्यों का त्यों बना हुआ है। पुरुषों की प्रवृत्ति वैसी ही है। नारी को कार्य-क्षेत्र में आज भी उतनी ही दिक्कत उठानी पड़ती है जितनी पहले उठानी पड़ती थी। कार्यकुशलता के अलावा भी नारी को चतुर होना पड़ता है नहीं तो उसे विफलता हाथ लगती है। प्रति-

द्वन्द्विता की भावना पुरुषों में वैसी ही है। उनके उपन्यास 'मोम के मोती', 'सोनाली दी' नौकरीपेशा नारियों की समस्याओं को ही उद्घाटित करते हैं। 'मोम के मोती' की नायिका माया स्वावलम्बिता के लिए नौकरी करती है किन्तु उसका सेठ और समाज के अन्य समुदाय के व्यक्ति उसे सतीत्व का सौदा करने वाली साधारण नारी समझते हैं। इसके विपरीत सोनाली की पीड़ा भिन्न प्रकार की है। आर्थिक विपन्नता के कारण इसे एक परिवार में नौकरी करनी पड़ती है व परिवार की एकमात्र कन्या की बिगड़ी हुई आदतों को नियंत्रित करने के अलावा उसे पारिवारिक सदस्यों का विरोध भाव भी झेलना पड़ता है।

'कान्ता भारती का 'रेत की मछली', निरुपमा सेवती का 'पतझड़ की आवाजें', मीरा महादेवन का 'सो क्या जाने पीर पराई', चन्द्रकिरन सौनरेक्सा का 'चन्दन चाँदनी' इत्यादि उपन्यासों में भी वर्किंगवूमेन की विभिन्न समस्याओं को सुन्दरता से उपन्यास का विषय बनाया गया है। 'रेत की मछली' की नायिका को नौकरी ढूँढने में कठिनाईयाँ आती है उसका चित्रण उपन्यास के अन्त में विस्तारपूर्वक हुआ है। 'पतझड़ की आवाजें' में दफ्तरों की जिन्दगी की हकीकत को नायिका की समस्याओं के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। नायिका को प्रमोशन के लिए अंक शायिनी बनने का निमन्त्रण उसका अफसर देता है और ऐसा न करने पर योग्यता रखते हुए भी उसे प्रमोशन नहीं दिया जाता है। 'सो क्या जाने पीर पराई' की नायिका माधवी नौकरी करने बम्बई में निकलती है किन्तु उसे उसके जीवन में आने वाले परिचित पुरुषों, सहयोगियों से सिर्फ धोखा मिलता है। 'चन्दन चाँदनी' में वर्किंग वूमेन की दोहरी बाधाओं को उद्घाटित किया गया है। नायिका गरिमा के घर वाले उसे नौकरी करने की इजाजत नहीं देते किन्तु जब वह ऐसा कर लेती है तो उसके विवाह को टालते रहते हैं। जब वह प्रेम विवाह कर लेती है तो यही कहानी ससुराल में भी दोहराई जाती है। मानसिक तनावों से मुक्ति पाने के लिए जब वह नौकरी छोड़ने का निश्चय करती तो उसके इस निर्णय के पहले विरोधी उसके सास-ससुर ही होते हैं। इसी प्रकार 'पचपन खम्भे लाल दीवारें', 'नावें', 'अनारो' इत्यादि उपन्यासों में प्रसंगवश नौकरीपेशा स्त्रियों की कठिनाईयों को उभारा गया है।

नारी के भटके कदम की त्रासदी को प्रस्तुत करने वाले उपन्यास

जब किसी कारण से नारी के कदम भटक जाते हैं तो उसके लिए समाज में विपत्तियों की सृष्टि हो जाती है। पारिवारिक पीड़ाओं के अतिरेक के कारण या यौवन भावनाओं में बहक जाने पर जो पीड़ा नारी को भोगनी पड़ती है वह अनजानी न है। इन लेखिकाओं ने नारी के भटके कदम की पीड़ा को भी उपन्यासों का विषय बनाया है। वर्तमान समाज व्यवस्था में पुरुष अवैध सम्बन्ध स्थापित करके

निर्दोप ही समझा जाता है जबकि नारी के लिए ऐसा करना अभिशाप बन जाता है। कृष्णा सोवती के 'डार से विछुडी' उपन्यास म डाली से विछुडी हुई नायिका के पीडित जीवन को ग्रामीण परिवेश के मध्य प्रस्तुत किया गया है। घर मे जब अत्याचार उसकी सहन-शक्ति से परे हो जाता है तो नायिका एक रात को घर से भाग जाती है। यही से उसकी श्राप कथा शुरू होती है। उसके जीवन म न जाने कितनी स्थितियाँ और पुरुष आते हैं और उसके लिए अपने अपने ढग से अनजानी पीडाएँ खीच लाते हैं। अन्त म डार से विछुडी नायिका अपने भाई के द्वारा ही उबारी जाती है। प्रभावती के उपन्यास 'अनामा' की नायिका सुषमा भी ऐसी ही पीडा को भोगती है। शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास 'नावें' की नायिका मालती की पीडा का कारण भी उसका बहक जाना है। यही व्यथा-कथा कतिपय भिन्न परिवेश मे मजुल भगत के 'टूटा हुआ इन्द्रधनुष' म चित्रित हुई है। इन सभी नायिकाओ के चित्रण मे लेखिकाओ न सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाया है एव अपन विषय का तदनुरूप मान्यताओ के परिपार्श्व म विकसित किया है।

प्रेमाश्रित रोमास चेतना वाले उपन्यास

रजनी पनिक्कर का विचार है कि 'नारी म भाग की अपेक्षा रोमास की भूख अधिक प्रबल होती है।[11] लेखन क माध्यम स नारी का यह रोमास भाव उसके उपन्यासा म भी प्रकट हुआ है। इन उपन्यासा म प्रमुखत नारी की प्रेमजनित विफलता, उसकी दमित भावनाएँ, प्रेम के क्षेत्र म पुरुषो द्वारा दिए गए धोखे आदि को ही अभिव्यक्ति दी गई है। इनम उपादेवी मित्रा का 'जीवन की मुस्कान', रजनी पनिक्कर क 'पानी की दीवार', 'महानगर की मीता', 'सोनाली दी', निरुपमा सेवती का निर्झरिणी और पत्थर', विद्या मिश्र का 'सघर्ष', मालती परुलकर का 'इत्तो', शिवानी क 'मायापुरी, चौदहफेरे', 'श्मशानचम्पा, उषा प्रियम्वदा का 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' इत्यादि उपन्यास प्रमुख है।

'जीवन की मुस्कान' का युवा डाक्टर कमलेश प्रेम म विश्वास नही करता किन्तु सविता की प्रेम भावना के आगे उसे झुकना पडता है। किन्तु उसके हृदय परिवर्तन तक वह विरक्त हो जाती है और विफल प्रेम की यह कथा समाप्त हो जाती है। पानी की दीवार' प्रेम के मनोवैज्ञानिक विकास की कहानी कहने वाला श्रेष्ठ उपन्यास है। बालसखा स प्रेम करन वाली नायिका नीना उसके विदेश चले जाने पर शिमला के कॉलेज मे लेक्चरर बन जाती है। यहाँ शान्त, अन्तर्मुखी दिलीप का व्यक्तित्व उसे भा जाता है। इस प्रकार उसेके प्रेम मे द्वैतभाव का बीजारोपण ह ... । के अन्तर्द्वन्द्व ... उपन्यास मे सुन्दर ढग से ... गय ... ों मे

परिस्थितियो मे दबकर सामने आई भावना को प्रस्तुत किया गया है। प्रेम भावना को सजोए रखने पर भी यह घर की नौकरानी के दर्जे के कारण मुख से कुछ कह नही पाती। जबकि परिस्थितियो के नाटकीय प्रसग इसे ऐसा करने को विवश करते हैं। निर्मला दर का उपन्यास प्रेम की विचित्र कथा है। कथा का अन्त पुरानी शैली मे सभी प्रमुख पात्रो की समाप्ति के साथ हो जाता है। विद्यामिश्र का 'सघर्ष' प्रेम को लेकर आदर्शमय त्याग भावना को प्रकट करने वाला साधारण उपन्यास है। नायक प्रमोद और नायिका मीना की प्रेम भावना प्रतिकूल परिस्थितियो मे फलित नही हो पाती और वे प्रौढावस्था मे अपने बच्चो का विवाह कर सन्तोष करते हैं। 'इन्नी' मे भी प्रेम का आदर्श रूप वर्णित हुआ है। इन्नी और राज का बाल्य परिचय यौवनागम के साथ प्रेम के रूप मे परिणत हो जाता है किन्तु प्रतिकूल परिस्थितियो के घात-प्रतिघात मे वे परिणय सूत्र मे बध नही पाते।

शिवानी के उपन्यासो मे रोमाटिक परिवेश अधिक उजागर हुआ है। इनके प्रायः सभी उपन्यास असफल प्रेम कहानियो को ही प्रस्तुत करते हैं तथा उनमे प्रेम का भाव अतृप्त ही रहता है। इसी भाति पूर्वराग के विविध सुन्दर प्रसगो को भी इनके उपन्यासो मे प्रस्तुत देखा जा सकता है। 'कृष्णकली' मे आकर्षण का भाव प्रेम का रूप धारण ही नही कर पाता। एक-दूसरे की योग्यता, गुण एव सौदर्य से आकर्षित होकर प्रीति की पखुडियाँ निर्मित की गई है। 'कैंजा', 'रथ्या' जैसे उपन्यासो मे प्रेम का इकतरफा निरूपण ही हुआ है। दूसरे पक्ष से प्रेम का प्रतिदान मिला भी है तो इतन विलम्ब से कि बाजी हाथ से निकल चुकी होती है। 'मायापुरी' की शोभा की प्रेम भावना भी दबी-दबी है। सतीश की कायरता से इनका प्रेम भाव सफल काम नही हो पाता। इसका परिणाम अनेक कष्टो के रूप मे शोभा को भोगना पडता है। पुरुष होकर भी सतीश परिस्थितियो के समक्ष घुटने टेक देता है इसलिए यह उपन्यास विफल प्रेम कहानी बनकर रह जाता है। 'चौदह फेरे' मे प्रेम भावना अन्ततोगत्वा सफल होती है। नाटकीय ढग से हुआ नायिका अहिल्या और राजू का परिचय प्रेम भाव मे परिणत होकर पुष्ट होता है युद्ध मे मृत घोषित राजू कुछ माह बाद लौट आता है और अहिल्या नियुक्त पति के साथ विवाह को छोडकर उसके पास पहुँच जाती है।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' भी प्रेम प्रधान उपन्यास है। उषा प्रियम्वदा का यह उपन्यास नारी जीवन की विवशता के माध्यम से प्रेमजनित पीडा को अभिव्यक्त करता है। एक लघु घटना से नील और सुषमा का परिचय प्रेम के रूप मे परिणत हो जाता है। सुषमा के लिए यह प्रसग जहा उसके जीवन के बहुत बडे शून्य को भरता है वही पारिवारिक उत्तरदायित्वो के वहन करने मे बाधक सिद्ध होता है।

भावनात्मक स्तर पर वह नील से जुड़कर समस्त बाधाओं को झेल जाती है किन्तु वैचारिक धरातल पर वह स्व कर्त्तव्यों से मुक्त नहीं हो पाती। अन्ततोगत्वा सुषमा परिस्थितियों के समक्ष हार जाती है और उपन्यास एक विफल प्रेम कहानी में समाप्त होता है। इस प्रकार यह उपन्यास प्रेम भावना की रूमानियत का आधुनिक परिवेश में सुन्दरता से चित्रित करता है। दीप्ति खण्डेलवाल का 'प्रिया' भी प्रेम-जनित विफलताओं को प्रकट करता है। प्रिया की माँ एवं वह स्वयं प्रेम के नाम पर छली जाती है।

इस प्रकार नारी लेखिकाओं ने नारी की कोमल अनुभूतियों से युक्त प्रेम भावना को इन उपन्यासों में सुन्दरता से वर्णित किया है। नारी की पीड़ित जिन्दगी की तरह अधिकांश नायिकाएँ विफलकाम होकर पीड़ित ही होती हैं। प्रेम भावना सामान्यत अतृप्त ही रही है। उसके विकसित होने में सामाजिक विधि-निषेधों के साथ ही नारी की विवशताएँ ही बाधक रही है।

यौन भावना को मुखरित करने वाले उपन्यास

हिन्दी उपन्यासों में यौन भावनाओं का निरूपण अधिक पुराना नहीं है। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के लेखन के साथ ही यौन भावना को भी उपन्यास का विषय बनाया जाने लगा। किन्तु इनमें यौन समस्याओं को ही उद्घाटित करने का प्रयास अधिक हुआ। डॉ गणेशन के शब्दों में 'जहाँ तक हिन्दी के यौन-मनोविज्ञानिक उपन्यासों का सम्बन्ध है उनमें काम अमुक्ति या कुण्ठा ही एक विषय है, जिसके अध्ययन में हमारे लेखकों ने अपनी सारी प्रतिभा का उपयोग किया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि अगर हम हिन्दी मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की यौन सम्बन्धी कुण्ठा मात्र का अध्ययन करें तो हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास साहित्य का अध्ययन करीब करीब पूर्ण हो जायगा।'[12]

साठोत्तरी काल तक आते आते महिला लेखिकाओं ने भी इस विषय पर उपन्यास लिखने शुरू किए। नारी के स्वभावजन्य शील भाव को चुनौती देते हुए यौन सम्बन्धों का खुला चित्रण ही नहीं किया जाने लगा वरन् नारी की काम अमुक्ति को एवं एतद्विषयक प्रतिक्रियाओं को भी खुले शब्दों में चित्रित किया गया। कृष्णा सोबती के 'मित्रो मरजानी' और 'सूरजमुखी अंधेरे के' दोनों उपन्यास यौन समस्या पर ही आधारित है। मित्रो की पीड़ा कामजनित कुण्ठा से सम्बन्धित है। जिस परिवेश में पैदा होकर वह बड़ी हुई है उसमें लज्जा का भाव अपरिचित वस्तु है। कामज्वर से दग्ध मित्रो सस्कारी पति के साथ तथा ससुराल में और सब तरह से तो एडजस्ट कर लेती है किन्तु यौन अमुक्ति के कारण उसका व्यवहार असामान्य हो जाता है। जेठ, जेठानी को भी बेबाक शब्दों में अपनी पीड़ा वह

सुनाती है। इस प्रकार यौनाक्रान्त नारी की पीड़ा को इतनी साफगोई के साथ प्रकट करने वाला समूचे हिन्दी साहित्य का यह अकेला उपन्यास है। किन्तु 'सूरजमुखी अँधेरे के' की नायिका रत्ती की समस्या भिन्न प्रकार की है। बचपन में ही बलात्कार की शिकार होने से इसका नारीत्व बुझ जाता है। अतिशय सम्वेदनशील व्यक्तित्व की धनी रत्तिका का प्रारम्भिक जीवन उस दुर्घटना के निरन्तर बोध के कारण प्रतिक्रियाशील हो जाता है। उम्र बढ़ने के साथ उसका आक्रोश कम हो जाता है और वह आत्मलीन होकर बुझ सी जाती है। अनेक पुरुष उसके जीवन में आते हैं किन्तु वह ठण्डी बेजान ही रहती है। अन्त में दिवाकर के साथ ऊष्मा को प्राप्त करके भी वह उसे अपना नहीं पाती। इसी प्रकार मृदुला गर्ग का 'उसके हिस्से की धूप', कान्ता भारती का 'रेत की मछली', कृष्णा अग्निहोत्री का 'बात एक औरत की' उपन्यास भी यौनाश्रित कथानकों पर आधारित हैं।

पारिवारिक जीवन के कथानकों पर आधारित उपन्यास

अब तक उल्लिखित सारे उपन्यास विषय वैविध्य रखते हुए भी एकमेव नारी को ही केन्द्रस्थ बनाए हुए थे। नारी के सीमित घेरे से बाहर निकल कर लेखिकाओं ने अन्य विषयों के रूप में प्रमुखतः परिवार को अभिव्यक्ति दी है। परिवार के बीच नारी का सारा जीवन व्यतीत होता है। उसकी चेष्टाओं, संघर्षों का आधार परिवार ही है। संयुक्त परिवार की ह्रासमान स्थितियां तथा खोखले सम्बन्धों की उथली आत्मीयता का सुन्दर निरूपण इन उपन्यासों में हुआ है जिनमें एक ही परिवार में निकट रहते हुए भी परिवार के लोग एक दूसरे से कोसों दूर चले जाते हैं। एक ही छत के नीचे रहते हुए भी परिवार के सदस्य एक-दूसरे से अपरिचित होकर अनजानी दूरियों को पा लेते हैं। इन सभी स्थितियों पर लेखिकाओं ने कुछ सुन्दर उपन्यास लिखे हैं। मीरा महादेवन का 'अपना घर', रजनी पनिकर का 'सोनाली दी', मालती जोशी के 'ज्वालामुखी के गर्भ में' तथा 'पाषाणयुग' उपन्यास पारिवारिक कथानकों पर ही आधारित हैं।

'अपना घर' की मुख्य कथा यहूदियों के एक परिवार से सम्बन्धित है। इज़राइल बनने पर सारी दुनिया के यहूदी वहाँ चले जाते हैं। भारत के यहूदियों को भी अपने देश में जाने की ललक उठती है। किन्तु यहाँ दो सौ वर्षों तक उन्हें जैसी आत्मीयता मिली थी वैसी अन्य देशों के यहूदियों को नहीं मिली थी अतः यहाँ के यहूदी अपने देश में जाना चाहकर भी भारत नहीं छोड़ना चाहते थे। ऐसे ही एक यहूदी परिवार की द्वैत भावना का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। परिवार का मुखिया सैलाराम इज़राइल चला जाता है लेकिन उसके परिवार के लोग भारत का मोह नहीं छोड़ पाते और अनेक बच्चों में मुस्लिम परिवार की एक सूचना बनाए रखती है। अत

मे मेखाएल भी लौट आता है। इस प्रकार परिवार की कथा के माध्यम से लेखिका ने यहूदी परिवार की जीवन पद्धति, उनके आचार-विचार, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास एव सस्कारो को विस्तार के साथ वर्णित किया है। राष्ट्रीयता के स्तर को दृढता देने वाला यह उपन्यास पारिवारिक परिवेश को अच्छे ढग से प्रस्तुत करता है। कृष्णा सोबती का 'मित्रो मरजानी' भी परिवार की आधार भूमि पर स्थित है। किन्तु मित्रो की काम अमुक्ति की प्रचुर अभिव्यक्ति के कारण यह कोरा पारिवारिक उपन्यास ही नही रह पाता। फिर भी तीन भाईयो के सयुक्त परिवार की टूटती इकाइयो को, बहुओ की त्याग एव स्वार्थ सकुल मनोवृत्ति को इसमे विस्तार मिला है। रजनी पनिकर के 'सोनाली दी' की कथा भी पारिवारिक परिवेश मे ही अग्रसर होती है।

मालती जोशी के उपन्यास परिवार को ही विषय बनाकर लिखे गए हैं। लेखिका परिवार के प्रति इतनी प्रतिबद्ध है कि अपनी लेखनी से इससे बाहर की दुनिया पर कुछ भी लिखने मे अपने आपको असमर्थ महसूस करती है। स्वय उन्ही के शब्दो म 'मेरा लेखन क्षेत्र सीमित है दाम्पत्य। मेरी कहानियो की दुनिया घर आँगन म ही सिमिट कर रह गई है। भीडभाड से बचकर मैं अपनी इस छोटी सी दुनिया मे व्यस्त हूँ।'[13] धर्मयुग म प्रकाशित इनके दोनो लघु उपन्यास 'ज्वालामुखी के गर्भ मे' और 'पाषाणयुग' दोनो ही परिवार की बात को हमारे सामने रखते है। 'ज्वालामुखी के गर्भ मे' का कथानक दो बहिनो के इर्द गिर्द घूमता है। दोनो अपने अपने कारणो से क्षुब्ध है फिर भी अपने परिवारो को साथ रखने को विवश है। यह सयुक्त परिवार इसी से कुण्ठाओ का घर बन जाता है और प्रत्येक सदस्य अपने को जलते हुए ज्वालामुखी मे झोंका हुआ पाता है। छोटी बहिन की ईर्ष्या, मौसाजी का तटस्थ भाव एव बच्चो का पारस्परिक सम्बन्ध अत्यत सुन्दर ढग से पारिवारिक परिवेश मे चित्रित किए गए हैं। 'पाषाणयुग' भी परिवार की ही कथा है। अनमेल विवाह की पीडा को परिवार मे उपेक्षित पत्नी की दु खद कथा के माध्यम से वर्णित किया गया है।

इस प्रकार पारिवारिक परिवेश पर आधारित इन उपन्यासो मे भारतीय परिवार की आधुनिक झाँकी को नारी के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है। छोटी छोटी साधारण प्रतीत होने वाली बातें परिवार के सगठन के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण होती है उसे इन उपन्यासो के कथ्य से देखा जा सकता है। पुरुषो से ऐसे समर्थ पारिवारिक कथानको वाले उपन्यासो की अपेक्षा करना गलत है। नारी ही परिवार की इन सूक्ष्म सम्वेदनाओ की धडकन को पकड सकती है और उन्हे साधिकार अभिव्यक्त कर सकती है।

दाम्पत्य सम्बन्धो को प्रस्तुत करने वाले उपन्यास

आधुनिक जीवन की जटिलताओ ने पति-पत्नी सम्बन्धो पर तीव्र प्रहार किया है। सक्रान्तिकालीन सामाजिक स्थितियो, ह्रासमान जीवन मूल्यों तथा अर्थाभावो ने वैवाहिक जीवन की एकतानता को खण्डित किया है। इन सब कारणो ने पति-पत्नी सम्बन्धो मे आपसी तनाव की सृष्टि की है। गृह कलह के पारिवारिक कारणो की अनुपस्थिति मे अब एक-दूसरे की रुचियो, सस्कारो, मान्यताओ एव विश्वासो का वैभिन्य उन्हे पीडित करता रहता है। यही कारण है कि आज के उपन्यास का एक मुख्य विषय पति-पत्नी सम्बन्धो का निरूपण हो गया है।

पुरुषो की ही तरह नारियो ने भी इस महत्त्वपूर्ण जीवन पहलू को उपन्यासो मे उभारा है। चूँकि पत्नी रूप मे लेखिकाएँ भी इन तनावो को भोग रही है इसलिए पत्नी की बात को इनके द्वारा अधिक सबलता से प्रस्तुत किया गया है। ऐसे उपन्यासो मे रजनी पनिकर के 'जाडे की धूप', 'महानगर की मीता', इन्दिरा मित्तल का 'स्मृतियो का दश', कान्ता भारती का 'रेत की मछली', शशिप्रभा शास्त्री का 'नावें', मृदुला गर्ग का 'उसके हिस्से की धूप', दीप्ति खण्डेलवाल का 'वह तीसरा', मालती जोशी का 'पाषाणयुग', कान्ता सिन्हा का 'सूखी नदी का पुल' इत्यादि प्रमुख है। 'जाडे की धूप' मे यह समस्या केवल सतही धरातल पर चित्रित हुई है। पाच वर्षीय बच्चे की मा भारती अपने पति पवन से असन्तुष्ट होकर अजय की ओर आकर्षित होती है। किन्तु उसके द्वारा छले जाने पर इसे आत्मबोध होता है। इस प्रकार आदर्शात्मक ढग से उपन्यास की कथा का अन्त होता है। 'महानगर की मीता' की नायिका मीता भी पति अजय की भ्रमर वृत्ति से प्रताडित होती है। 'नावें' उपन्यास का उत्तरार्द्ध पति-पत्नी सम्बन्धो पर आश्रित है। मालती की वर्जनाओ से विजयेश का जीवन यौन कुण्ठाओ से भर जाता है और वह नीरस रेगिस्तानी जिन्दगी जीने के लिए विवश हो जाता है। पति-पत्नी के सम्बन्धो को कामजनित कुण्ठाओ के साथ सुन्दरता से चित्रित किया गया है। ठीक ऐसी ही स्थिति 'मित्रो मरजानी' उपन्यास मे भी है जहाँ मित्रो की काम अभुक्ति पति पत्नी के मध्य तनाव का कारण बनती है। 'रेत की मछली' उपन्यास भी अप्रत्यक्षत पति-पत्नी सम्बन्धो पर प्रकाश डालता है। समूचा उपन्यास नायिका कुन्तल की करुण गाथा है और नायक शोभन की मधुकरी वृत्ति को प्रकट करता है। यही दोनो के मध्य तनाव की सृष्टि करती है। 'स्मृतियो के दश' मे नायिका प्रतिमा की व्यथा कथा को पति-पत्नी सम्बन्धो के धरातल पर अभिव्यक्ति मिली है। उपन्यास की खासियत यह है कि यह दो दम्पत्तियो की कथा को एक ही कलेवर मे प्रस्तुत करता है। एक दम्पत्ति तनावग्रस्त है तो दूसरी पूरी तरह समायोजित। इस प्रकार उपन्यास मे तुलनात्मक ढग से सम्बन्धो के बिखराव को

मार्मिक प्रसगो के साथ रूपायित किया गया है। 'उसके हिस्से की धूप' भी नायिका मनीषा के जीवन चरित के साथ-साथ पति पत्नी सम्बन्धो पर प्रकाश डालता है। पहला पति जितेन औद्योगिक व्यस्तताओ म इतना लिप्त रहता है कि मनीषा की ओर विशेष ध्यान नही दे पाता। अत मनीषा क्रमश मधुकर की ओर आकर्षित होती है। जितेन को छोडकर वह मधुकर से विवाह करती है किन्तु कुछ समय के बाद मधुकर की भावनाएँ भी सूख जाती हैं। जीवन के जिस अभाव की पूर्ति के लिए वह दो पतियो को अपनाती है वह पूरा नही होता और वह तनावग्रस्त शापित जीवन जीने को विवश होती है।

पति पत्नी सम्बन्धो को सर्वाधिक गरिमा के साथ प्रस्तुत करने वाला उपन्यास 'वह तीसरा' है। दीप्ति खण्डेलवाल के इस उपन्यास म पति पत्नी सम्बन्धो को ही प्रमुख प्रतिपाद्य बनाया गया है। सदीप और रजिता के बीच तीसरा कोई नही है। दोनो प्रेम विवाह करते हैं किन्तु कुछ समय बाद ही प्रेम का मायावी तिलिस्म टूट जाता है। तब यथार्थ अपने कटुतम रूप मे सामने आता है जो दोनो की चेतना को झकझोर जाता है। वे सारे प्रसग जो कभी दोनो को प्रेम के सूत्र म बाधते थे अब कटुता और वैमनस्य का कारण बन जाते हैं। प्रेम जो दोनो को जोडता था क्रमश अधिकार की माग बन जाता है। वे दोनो एक दूसरे से अपना अधिकार मागने लगते है और प्रतिदान मे कुछ भी देने को तैयार नही होते। इसी से दोनो का अह उन्हे अलगाव के घेरे म धकेलने लगता है। समपण एव प्रेम का रूप समाप्त होकर तनाव के दायरे म जा पहुँचता है। इस प्रकार पति पत्नी के बीच कोई तीसरा न होने पर भी 'वह तीसरा' प्रविष्ट हो जाता है जो उन्ह निरन्तर टकराने को मजबूर करता रहता है।

पति पत्नी सम्बन्धो की व्याख्या करने वाले ये उपन्यास निस्सन्देह प्रेम के तिलिस्म के टूटने की कहानी कहते हैं। रोमानी भावुकता का पर्दा जब हटता है तो यथार्थ के क्रूर थपेडो के कारण पति पत्नी सहज नही रह पाते और आपसी तनाव की भावना से क्रमश टूटते रहते हैं। यह विषय आज के जीवन का यथार्थ है। इस पर लेखिकाओ की कलम इतने सशक्त ढग से चली है कि उस स्तर को पुरुषो की लेखनी छू नहीं पाई है।

सामाजिक समस्याओ पर आधारित उपन्यास

प्रेमचन्द काल से ही उपन्यासो म सामाजिक समस्याओ का निरूपण किया जाने लगा था। सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए तदनुरूप कथानक निर्मित किए जाने लगे और समाज की अनेक समस्याओ का उल्लेख हुआ। प्रारम्भ म आदर्शवादी दृष्टिकोण के कारण समस्याओ का यथासम्भव समाधान देने की चेष्टा भी की गई। किन्तु शीघ्र ही लेखको को लेखक और समाज सुधारक के भेद का बोध हो

गया तब से उपन्यासो में समस्याओ का समाधान करने की परिपाटी समाप्त हो गई। प्रेमचन्दोत्तर काल में यथार्थवादी आग्रह के कारण मनोवैज्ञानिक और प्रगतिशील चिन्तन के आधार पर कथानक निर्मित होने लगे फिर भी सामाजिक उपन्यासो का पूरी तरह अकाल नहीं पड़ गया।

महिला लेखिकाओ का लेखन भी ऐसे ही दौर में से होकर गुजरा है। इनके द्वारा भी प्रारम्भिक काल में समस्याओ का समाधान देने की प्रवृत्ति से शुरू होकर आज के यथार्थवादी चित्रण तक सीमित रहने वाले उपन्यास लिखे गए। उषादेवी मित्रा के उपन्यास सामाजिक ही हैं। 'पथचारी', 'सम्मोहिता', 'नष्टनीड', 'पिया' सभी का सामाजिक कथानक है। कंचनलता सब्बरवाल के 'मूकप्रश्न', 'भोलीभूल' 'सकल्प', 'भटकती आत्मा', 'त्रिवेणी', 'अनचाहा', 'स्नेह के दावेदार' सभी सामाजिक उपन्यास हैं।'मूकप्रश्न' मे शारीरिक सौंदर्य की तुलना म मानसिक सौंदर्य को श्रेष्ठ बतलाया गया है। 'भोलीभूल' भी ऐसा ही सुधारवादी उपन्यास है जो पापी से नही पाप से घृणा करने की बात कहता है। 'सकल्प' म सामाजिक घटना प्रसगो को राजनैतिक परिवेश मे चित्रित किया गया है। इनके अन्य उपन्यासो का स्वर भी प्रेमचन्दयुगीन सुधारवादी दृष्टिकोण लिए हुए है।

स्वातन्त्र्योत्तर काल मे भी सामाजिक उपन्यास लेखन की यह परम्परा अनवरत चलती रही। रजनी पनिकर के 'ठोकर', 'प्यासे बादल' सामाजिक समस्याओ का उद्घाटन करने वाले उपन्यास हैं। 'ठोकर' मे मध्यवर्गीय समाज की स्वच्छद वृत्तियो को नारी की ईर्ष्या के माध्यम से चित्रित किया गया है। 'प्यासे बादल' मे वर्ग वैषम्य को उभारा गया है। विमला शर्मा के 'वेदना' एव 'भावना' उपन्यास भी सामाजिक समस्याओ पर आधारित हैं। 'वेदना' की सम्पूर्ण कथा का विकास एक तीव्र सामाजिक चेतना से सम्प्रेरित होकर किया गया है। रजिया सज्जाद जहीर का 'अल्लाह मेघ दे' लखनऊ शहर की कहानी कहता है। धार्मिक सहिष्णुता का उपदेश देते हुए उपन्यास का कथानक एक इन्जीनियर के स्वप्न को सफल बनाने की बात कहता है जिसके द्वारा उत्तरप्रदेश का फालतू पानी राजस्थान तक पहुँचाया जा सके। शान्ति त्रिवेदी का 'भीगे पख' दो परिवारो की पुश्तैनी दुश्मनी को युवा प्रेमियो के द्वारा दूर करने की कथा को वर्णित करता है। इनका दूसरा उपन्यास 'अन्तिमा' वॉर विडोज की महत्त्वपूर्ण समस्या को उद्घाटित करता है। वसन्ती सेन का 'दिलारा' हिन्दू–मुस्लिम ऐक्य पर आधारित है। सोमा वीरा का 'तिनी' जासूसी माहौल मे तस्करो की कथा को विदेशी परिवेश म कहता है। इस उपन्यास की समस्या तस्कर व्यापार से लेकर आत्महत्या म अवरोध तक है। किन्तु इन समस्याओ का स्पर्श आधुनिकता मे नही है, आधुनिकवादी फैशन से।[14] इसी प्रकार

मीना सरकार का 'समस्या का समाधान' पद्मासुधि का 'उल्टे काँटे सीधे फूल' सामाजिक समस्याओ पर आधारित है। चन्द्रकिरन सौनरेक्सा का 'वंचिता' नारी पर होने वाले सामाजिक अत्याचारो को प्रस्तुत करता है। शारदा मिश्र के 'नयना' उपन्यास मे हरिजन बाला की करुण कथा के द्वारा हिन्दुओ मे अस्पृश्यता की समस्या को उठाया गया है।

मन्नू भण्डारी का 'आपका बंटी' तलाक की समस्या को सशक्त ढग से प्रस्तुत करता है। तलाक के कारण पति पत्नी के जीवन की कटुता भले ही समाप्त हो जाय बच्चे के जीवन मे वह विष घोल जाता है। बच्चे की सहज प्रेमानुभूति माता-पिता दोनो के प्रति होती है किन्तु तनावो के कारण उनके अलग हो जाने से बच्चे की स्थिति त्रिशकु की-सी हो जाती है। विवाह के साथ ही तलाक की यह समस्या युग की प्रमुख समस्याओ मे से है। इस समस्या को या तो पत्नी की दृष्टि मे देखा गया है या फिर पति की दृष्टि से किन्तु मन्नू भण्डारी का 'आपका बंटी' बच्चे की दृष्टि से इस समस्या का उद्घाटन करता है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यासो मे यह पहला उपन्यास है जिसमे एक विशेष परिस्थिति मे पडे हुए बच्चे की मन स्थिति का इतने विस्तृत फलक पर चित्राकन किया गया है। बंटी हमारे सामने आधुनिक युग के लिए एक चुनौती बनकर खडा है। वह हमसे अपनी स्थिति के लिए जवाब माग रहा है और हम शायद जवाब देने मे बिलकुल असमर्थ है।[15]

ममता कालिया के दोनो उपन्यास 'बेघर' और 'नरक दर नरक' युगीन समस्याओ को सुन्दर ढग से चित्रित करते हैं। 'बेघर' महिला द्वारा पुरुष के अन्तर्मन की बात को प्रकट करने का पहला समर्थ प्रयास है। नारियो ने नारी की बात तो कही है पर पुरुषो के मन मे झाँककर देखने का प्रयास सिर्फ 'बेघर' मे हुआ है। परमजीत के व्यक्तित्व एव उसकी मान्यताओ के चित्रण के द्वारा नारी की ओर से मानो लेखिका यह प्रकट करना चाहती है कि आज का पुरुष भले ही अपने को कितना ही आधुनिक और प्रगतिशील घोषित करदे वह सस्कारो से इतना अधिक जकडा हुआ है कि नारी के साथ न्याय नही कर पाता। कुल मिलाकर 'बेघर' औसत व्यक्तियो का एक असम्बद्ध जगत है जिसमे नजदीकी के साथ परायापन, सम्बन्धो के बीच अजनबीपन तथा खुशी को भरे चुटकीलपन के साथ द्रवित करने वाली करुणा है।[16] 'नरक दर नरक' मे स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारतीय सामाजिक असगतियो को उभारा गया है। जातिवाद, धार्मिक असहिष्णुता, बेकारी, शिक्षितो की कुण्ठाएँ, शैक्षणिक जगत् मे व्याप्त भ्रष्टाचार, वर्गभेद, राजनेताओ के झूठे आश्वासन, महानगर की समस्याएँ, साहित्यकारो का दोमुँहापन इत्यादि अनेक सामयिक विसगतियो को विस्तारपूर्वक उभारा गया है। जोगेन्दर साहनी की सघर्षगाथा आज के प्रत्येक युवा

के संघर्ष को प्रकट करती है। अतः कहा जा सकता है कि ममता कालिया ने सर्वाधिक यथार्थवादी ढंग से सामयिक समस्याओं का संस्पर्श किया है। 'बेघर' की ही तरह पुरुष के भीतर को उद्घाटित करने का प्रयास आशासिंह के 'दो वर्ष' उपन्यास में हुआ है 'दो वर्ष' की अवधि को समेटे हुए यह उपन्यास आधुनिक युवा मनोहर के स्वतन्त्र चिंतनपक्ष एवं तदनुरूप जीवनयापन पद्धति को वर्णित करता है। विवाह जैसे नाजुक मामले पर विचार करते हुए उपन्यास उसमें मेच्योरिटी आदि का महत्त्व दर्शाता है।[17]

अस्तु, लेखिकाओं द्वारा स्वीकृत सामाजिक कथानकों का फलक भी अत्यन्त विस्तृत है जिसमें वर्तमानकालीन विविध समस्याओं को औपन्यासिक विषय बनाया गया है। नारी की कसौटी पर इन समस्याओं को देखा-परखा गया है। यथार्थवादी आग्रह के प्रबल होने के साथ इन सामाजिक विसंगतियों को अधिक तुर्शी के साथ प्रस्तुत किया जाने लगा। इन विषयों का संस्पर्श करते हुए लेखिकाओं ने अपनी सामाजिक चेतना का प्रदर्शन किया है और विद्यमान युगधारा की अनेक विडम्बनाओं को उद्घाटित करने का प्रयास किया है।

निष्कर्ष

नारी लेखन के विषय क्षेत्र के उपर्युक्त विश्लेषण के बाद हम सहज ही इनके लेखन के सम्बन्ध में यह कह सकते हैं कि इनके उपन्यासों में नारी को ही प्रमुख प्रतिपाद्य के रूप में चुना गया है। लेखिकाओं ने अपने उपन्यासों को नारी की पीड़ा की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। इसलिए इनके लेखन के पीछे विशिष्ट सोद्देश्यता परिलक्षित होती है। किन्तु इसमें रचनाकार की स्वायत्तता का ह्रास हुआ है। कथ्य का स्थूल और पूर्व निर्धारित रूप ही उपन्यास में प्रकट हुआ है। वस्तु निरूपण में सामान्यतः फैलाव का अभाव है और घटना बहुलता ने तथा वर्णन बाहुल्य ने इनके चिन्तन पक्ष को तिरोहित कर दिया है। जीवन के नाना क्षेत्रों को वस्तु का विषय नहीं बनाया गया है। नारी की दुखद स्थितियों, घर-परिवार के सकुंचित दायरे से बाहर निकलकर विषय निर्वाचन के अन्य प्रयास अनुपस्थित हैं। बाह्य दृष्टि में सीमित दृष्टिगत होते हुए भी उपन्यासों के विषयों में वैविध्य-विस्तार अधिक है। नारी की पीड़ा, वर्किंगवूमेन की समस्याएँ, संघर्षशील नारी की कहानी, भटके कदम की पीड़ा, प्रेमाश्रित रोमांटिक भावना, यौनाश्रित भावना, सामाजिक एवं पारिवारिक अनेक प्रसंगों पर उपन्यास लिखे हैं। एक ही विषय पर अलग अलग दृष्टियों से लेखनी चलाई गई है इसलिए बाह्य दृष्टि से सीमित प्रतीत होने वाला इनका विषय क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। नारी ने लेखनी धारण कर अपनी प्रतिभा का अधिकाधिक प्रबल ढंग से प्रतिपादन किया है।

उपन्यासो मे घटनाओ, प्रसगो का चित्रण, वस्तु-विन्यास, विषय-निरूपण सभी में अपनी बात को कहने की प्रवृत्ति प्रधान है। लेखनी पर पूर्व धारणाओ, मान्यताओ, विषयगत निष्कर्षों को सबल-निर्बल ढग से स्थापित करने का प्रयास हुआ है। नारी को मुख्य प्रतिपाद्य बनाने के कारण पुरुष को परोक्ष ढग से चित्रित किया गया है। किन्तु उसके पीछे लेखिका की चिन्ताधारा और मान्यताओ की प्रत्यक्ष उपस्थिति है। परवर्ती काल में 'बेघर' जैसे उपन्यासो में पुरुष के भीतर झाँककर देखने की चेष्टा भी हुई है। जहा पुरुष-चित्रण प्रत्यक्ष नही है वहाँ घटनाओ की तथा अन्यान्य प्रसगों की उद्भावना कर उसे अभिव्यक्ति दी गई है। सामान्यत नारी की समस्त बाधाओ के लिए पुरुष को दोषी ठहराने का प्रयास हुआ है। इस प्रकार पुरुष पात्रो का चित्रण भी पर्याप्त मात्रा में हुआ है और उससे महिलाओ की पुरुष सम्बन्धी मान्यताओ को समझा जा सकता है।

•

सदर्भ

1 हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग से उद्धृत–पृ 44
2 डॉ त्रिभुवनसिंह–हिन्दी उपन्यास वस्तु और शिल्प–पृ 44
3 डॉ गणेशन–हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन–पृ 173
4 क्या लेखिकाओ का लेखन दायरा सीमित है ?-साप्ताहिक हिन्दुस्तान 11 मई 1975–पृ 39
5 स्त्री प्रतिभा' शीर्षक निबन्ध-कमला पत्रिका अक्टूबर 1939–पृ 3
6 'काली लडकी –पृ 1
7 'जुडे हुए पृष्ठ' पृ –41
8 वही–पृ 48
9 दिनमान 6 जुलाई 1975–पृ 39
10 मेरी रचना प्रक्रिया ज्ञानोदय अक्टूबर 1968–पृ 101
11 पति के अतिरिक्त पुरुष मित्र (परिचर्चा) रजनी पनिकर, धर्मयुग 1■ माच 1975–पृ 34
12 हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन–पृ 316
13 प्रश्नों के सात घेरे और आठ लेखिकाएँ (परिचर्चा)-प्रभु जोशी द्वारा प्रस्तुत, साप्ताहिक हिन्दुस्तान 1 अप्रल1973
14 गगाप्रसाद विमल-ज्ञानोदय, अगस्त 1967
15 गोपालराय-समीक्षा, जुलाई 1971–पृ 3
16 रामदेव आचार्य-समीक्षा, जुलाई 1971–पृ 7
17 डॉ शशि शर्मा-कादम्बिनी, अप्रैल 1976

उपन्यास लेखिकाओं का व्यक्तित्व और जीवन दृष्टि

उपन्यास लेखिकाओं का व्यक्तित्व

उपन्यास का निर्माण प्रत्येक उपन्यासकार अपने व्यक्तित्व के आधार पर करता है। रचना से अनुपस्थित रहते हुए भी वह अपनी रचना मे पूरी तरह उपस्थित रहता है। लेखक का अपना व्यक्तित्व होता है जिसके निर्माण के लिए उसकी शिक्षा, पारिवारिक परिवेश, सस्कार, मान्यताएँ, आस्थाएँ, रुचियाँ-अरुचियाँ इत्यादि उत्तरदायी होते हैं। सामाजिक स्थितियो से वह भी आम व्यक्ति की तरह जुडा रहता है किन्तु उसकी अनुभूतियाँ सजग रहती हैं। अपनी मान्यताओ और आदर्शों के अनुरूप जीवन-यापन करते समय उसे जो पात्र और स्थितियाँ प्रभावित कर जाती हैं उन्ही को वह अपने ढग से उपन्यास मे अभिव्यक्ति दे दिया करता है। अत. उपन्यास रचना के मूल मे लेखक का अपना व्यक्तित्व अत्यत महत्वपूर्ण होता है।

महिलाओ के उपन्यास लेखन के सदर्भ मे उनके व्यक्तित्व का अभिज्ञान कर लेना इसलिए भी आवश्यक है कि सामाजिक दृष्टि से नारियों की भारत मे सदा से विशिष्ट दशा रही है। समाज मे उनकी स्थिति मुख्यत. बाधित रही है। आधुनिक युग नार्युत्थान और उनकी स्वतन्त्रता का युग रहा है। इसके द्वारा नारी शिक्षा के साथ उनको समानाधिकार भी प्रदान किए गए हैं, जिनके कारण आज की नारियो के व्यक्तित्व मे पर्याप्त परिवर्तन हुए हैं। एक ओर वे प्राचीन मूल्यो से अभी तक जुडी हुई हैं तो दूसरी ओर नव शिक्षा तथा बौद्धिक जाग्रति के कारण उनमे आधुनिकता का समावेश भी हुआ है। लेखिकाओ के व्यक्तित्व निर्माण के इन घटको को अलग-अलग बिन्दुओ मे यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रारम्भिक परिवेश

अधिकाश लेखिकाओ का बाल्यकाल एव प्रारम्भिक जीवन सम्पन्न अथवा मध्यवर्गीय परिवेश मे व्यतीत हुआ है। राजस्थान मे जन्मी मन्नू भण्डारी अपने पिता की सबसे छोटी और लाडली बेटी हैं। यही कारण है कि इनमे विद्रोह की भावना सबसे अधिक प्रस्फुटित हुई है।[1] कृष्णा सोबती पजाब के गाव की सोंधी मिट्टी मे पलकर बडी हुई हैं इसी कारण इनमे जीवन के प्रति सहजता की भावना प्रबल है। उन्ही के शब्दो मे—'खर्च करने का ढग मेरा न बहुत छोटा है न बहुत बडा। माँ से यह

सीखा कि जो भी खर्च करो यह न लगे कि लुटाया जा रहा है। पिताजी से यह कि ऐसे खर्च करो कि अपने को भी खालिस जरूरत न लगे। शक लगे।[2] राजस्थान के बूँदी जिले के नैनवाँ गाँव में जन्मी कृष्णा अग्निहोत्री उसी माटी से अपने संस्कार प्राप्त कर सकीं।

शिवानी का जन्म राजकोट (सौराष्ट्र) में हुआ है और कुमाऊँ से आपका सम्बन्ध सदैव भाग्यहीन सन्तान का सा रहा है जो जन्मते ही माँ से बिछुड़ जाती है।[3] आपके पिताजी विदेश की शिक्षा, रोबीले व्यक्तित्व और कठोर अनुशासन के कारण प्रिंस वर्ग में बहुत जनप्रिय थे।[4] पिता के साथ अनेक रियासतों में रहीं तथा इनकी शिक्षा शान्तिनिकेतन में हुई। चन्द्रकिरन सौनरेक्सा का जन्म नौशहरा छावनी (पेशावर) में हुआ। पिताजी अंग्रेजों की सेना में स्टोरकीपर थे। परिवार में आर्यसमाजी वातावरण था फिर भी इनकी शिक्षा अधिक न हो सकी।

उषादेवी मित्रा की शिक्षा दीक्षा मैट्रिक तक ही हो सकी किन्तु साहित्यिक परिवार के साहित्यिक वातावरण में जन्म लेने के कारण साहित्यिक संस्कार विरासत् के रूप में प्राप्त किए।[5] चार पुत्रियों एवं तीन पुत्रों की माँ दिनेशनन्दिनी डालमिया को भी पिता के यहाँ से लिखने पढ़ने का शौक लगा था। उन्हीं के शब्दों में याद नहीं कब से लिख रही हूँ। बचपन से ही लिखने की काफी प्रेरणा मिली। छपी विवाह के बाद ही। *पारिवारिक जीवन की कुछ घटनाएँ लिखने के लिए प्रेरित करती रहीं।*[6]

शैक्षणिक योग्यताएँ

शैक्षणिक योग्यता की दृष्टि से प्रायः सभी लेखिकाएँ पूर्ण समृद्ध हैं। आजादी से पहले की लेखिकाओं में उच्च शिक्षा का उतना प्रचार दृष्टिगत नहीं होता जितना उसके बाद। वर्तमान युग की प्रायः सभी लेखिकाएँ स्नातक हैं। इनमें से अधिकांश ने स्नातकोत्तर तक की शिक्षा प्राप्त की है। ज्यादातर लेखिकाएं अंग्रेजी साहित्य में एम ए हैं। कुछ हिन्दी में एम ए हैं। उर्दू, संस्कृत, का भी कुछ का पर्याप्त ज्ञान है। कंचनलता सब्बरवाल, कृष्णा अग्निहोत्री उषा प्रियंवदा सूर्यबाला, शशिप्रभा शास्त्री, बिन्दु अगरवाल, सुनीता इत्यादि लेखिकाएँ शोधकार्य कर पी एच डी की उपाधि भी प्राप्त कर चुकी हैं। शैक्षणिक दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण ही ये लेखिकाएँ विविध जीवनानुभवों को यथार्थ के धरातल पर सहज अभिव्यक्ति देने में सक्षम रही हैं। प्रारम्भिक दौर की लेखिकाओं की रचनाओं में जैसी उपदेशात्मकता और भावुक आदर्शवादिता उपस्थित थी वह अनुपस्थित होकर इन लेखिकाओं के शैक्षणिक योग्यताओं के सम्बल से परवर्ती उपन्यासों में यथार्थ के रूप में परिणत हुई।

व्यवसाय

आर्थिक परावलम्बिता भारतीय नारी की सबसे बड़ी विवशता रही है। इसी कारण पति के समक्ष अथवा अन्य दशाओं में परिवार के पुरुषों के समक्ष उसे सदैव झुककर चलना पड़ता है। किन्तु अब नारियाँ भी आर्थिक स्वावलम्बिता अर्जित कर अपने पैरों पर खड़ी होने लगी हैं। लेखिकाएँ भी इसका अपवाद नहीं हैं। अधिकांश उपन्यास लेखिकाएँ स्वतन्त्र जीविकोपार्जन कर रही हैं। इस कारण इन्हें जीवन में एक साथ तीन प्रकार की भूमिकाएँ निभानी पड़ती हैं। पहली-आजीविका सम्बन्धी कार्यों को करना और उनसे जुड़ी हुई समस्याओं से जूझना। दूसरी—घर में पत्नी और माँ की भूमिकाओं का निर्वाह करते हुए गृहस्थी के झंझटों से जूझना। तीसरी—इन दोनों भूमिकाओं से बचे हुए समय में अपने भीतर के लेखक को जगा कर लेखन कार्य सम्पन्न करना। इन समस्त बाधाओं के रहते हुए भी अपने पैरों पर खड़े होने के सुख के लिए व परिवार की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए ये लेखिकाएँ जीविकोपार्जन करती हैं।

अधिकांश लेखिकाएँ अध्यापन का कार्य करती हैं, कुछ रेडियो से जुड़ी हुई हैं तो कुछ लेखिकाएँ प्रशासनिक दायित्वों का भी सकुशल निर्वाह कर रही हैं। तुलनात्मक दृष्टि से व्यवसाय कर्म और लेखन कर्म में लेखिकाएँ प्राथमिकता प्रायः जीविकोपार्जन को ही देती हैं। लेखक के रूप में पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने वाली मन्नू भण्डारी का कथन है कि 'यों शौक में आकर लिख लिखा भले ही लूँ, लेकिन मेरी असली लाइन तो पढ़ाना ही है।'[7] लेखक से अपने अध्यापक व्यक्तित्व को अधिक सम्मानित करते हुए वे अन्यत्र कहती हैं—'यदि भैरव प्रसाद गुप्त मेरी कहानी 'मैं हार गई' को कहानी पत्रिका में न छापते तो शायद मेरा परिचय एक अध्यापिका के रूप में ही दिया जाता। यह दूसरी बात है कि आज भी मैं अपने को अध्यापिका पहले मानती हूँ, लेखिका बाद में।[8]

आकाशवाणी में प्रोग्राम डायरेक्टर की पदेन व्यस्तताओं और घर में पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करके भी रजनी पनिकर के लिए लिखना आवश्यक था। उसे अपने लिए एक अनिवार्यता बतलाते हुए वे कहती हैं—'दिन भर ऑफिस में काम करके गृहस्थी का भी थोड़ा बहुत काम देखना पड़ता है। जीवन में बोरियत की कमी है। मेरा हर क्षण व्यस्त है। इन व्यस्तताओं के बावजूद मैं लिखती हूँ। केवल इस लिए कि लिखना मेरे जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना साँस लेना। कुछ दिन बिना लिखे बीत जायें तो मन उखड़ा उखड़ा लगता है। अकारण क्रोध आता है, झुंझलाहट होती है।'[9]

केन्द्रीय सरकार के शिक्षा निदेशालय मे उच्च पद पर कार्य करने वाली कृष्णा सोबती लेखक और लेखन के मध्य की समस्त बाधाओ को अस्वीकारती हैं। क्योकि श्रेष्ठ लेखन के लिए उनकी धारणा है कि 'अपने और अपने लेखन के बीच भी तीसरी शर्त का अकुश अस्वीकार कर देना होगा।'[19]

इस प्रकार ये लेखिकाएँ आजीविका उपार्जन करने की आवश्यकताओ को स्वीकारते हुए उनसे जुडी हुई समस्त उलझनो के उपरान्त भी लेखन के प्रति ईमानदारी से समर्पित हैं।

रचना ससार

इन लेखिकाओ की रचनाधर्मिता का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि इनका लेखन व्यक्तित्व बहुमुखी है। उपन्यास लेखन से इतर इन्होने कविताएँ, नाटक आदि क्षेत्रो भी पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की है। मृदुला गर्ग, मन्नू भण्डारी के नाटक अत्यत लोकप्रिय हुए हैं। शिवानी के सस्मरण हिन्दी साहित्य की धरोहर हैं। सूर्यबाला ख्यातनाम व्यग्य लेखिका है तो कृष्णा सोबती ने 'हम हशमत' शीर्षक से सुन्दर सस्मरणात्मक रेखाचित्र प्रस्तुत किए हैं। दिनेशनन्दिनी डालमिया ने गद्य-गीत लेखिका के रूप म पर्याप्त यश अर्जित किया है। इसी भांति साहित्यिक समीक्षाओ का कार्य भी इन्होने सम्पन्न किया है।

यद्यपि इनमे से अधिकाश ने कथा साहित्य लेखन मे प्रवीणता का प्रदर्शन किया है तथापि इतर साहित्य विधाओं मे इन्होन साहित्य सृजन कर पर्याप्त यशोपार्जन किया है।

जीवन दृष्टि

जीवन के विविध सत्यो, जीवन दशाओ के प्रति लेखक की दृष्टि ही उसके विशिष्ट व्यक्तित्व को आकार प्रदान करती है। इन लेखिकाओ के लेखक व्यक्तित्व की जानकारी के लिए यहाँ विवाह, तलाक, परिवार जाति, धर्म आदि स सम्बन्धित विचारो की जानकारी आवश्यक है।

लेखिकाओ मे नारी के प्रति ऐसी सर्वमान्य निरकुशी दृष्टि के प्रति प्रबल विरोध का भाव उपस्थित है। जाति, धर्म आदि मे ही विवाह की अनिवार्यताएँ, दहेज, कन्या का अक्षत योनीत्व आदि की रूढिग्रस्त चिन्ताधाराएँ नारी की स्वतन्त्रता का हरण करने, उस पर पारिवारिक बन्धनो को थोपने का पर्याप्त कारण रही हैं। ये लेखिकाएँ ऐसे सामाजिक आचारो का खुलकर विरोध करना जरूरी समझती हैं। बन्धनो के प्रति विद्रोह और इन्ही कारणो से पुरुषो के प्रति घृणा का भाव आज अनेक नारियो मे परिलक्षित है।

रजनी पनिकर वर्तमान नारी के एतद् विषयक चिन्तन को परिभाषित करते हुए कहती हैं—'बहुत सी नारियाँ ऐसी मिलती है जिन्हें पुरुषों से नफरत है। वे स्कूल और कॉलेजों में लिस्बियन सम्बन्ध स्थापित करती हैं। उनके मन में पुरुषों के प्रति गहरी घृणा होती है। इसका कारण बचपन में सम्बद्ध होता है। बचपन में वे देखती हैं कि भाई की देखरेख बड़ी दिलचस्पी से होती है, उसकी परवाह कोई नहीं करता। कई माता-पिता तो भोजन में भी अन्तर रखते हैं। लड़कियों पर उतना खर्च करना पसन्द नहीं करते। लड़कियाँ बड़ी होकर पूरी पुरुष जाति से नफरत करने लगती हैं क्योंकि बचपन से पुरुष उनका मित्र नहीं प्रतिद्वन्द्वी होता है।[11]

विद्रोह का यह स्वर लेखिकाओं के व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों में परिलक्षित है। किन्तु भिन्न परिवेश, रुचि, संस्कार आदि के कारण लेखिकाओं में इनके सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद भी हैं। इस कारण एक ही बिन्दु पर दोनों प्रकार की दृष्टियों की जानकारी दी गई है क्योंकि इन विचारों ने इनके लेखन को भी दूर तक प्रभावित किया है।

विवाह

विवाह वह संस्था है जिसने भारत की स्त्रियों को सदा से बन्धनग्रस्त रखा है। विवाह से सम्बन्धित सभी असमानताओं को भाग्य के नाम पर झुठलाया जाता रहा है। सतीत्व का आदर्श, पतिव्रत धर्म, जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध आदि के स्वीकृत सामाजिक आदर्शों के नाम पर स्त्री की अपनी इच्छा आकांक्षा को, उसकी अभिलाषाओं को नकारा जाता रहा है। पति की सारी कमजोरियों, क्रूरताओं, अहं भावनाओं को उसे मूक बनकर झेलते रहना पड़ा है। प्रेम-विवाह, स्वयंवर आदि से सम्बन्धित पर्याप्त कथाएँ प्रचारित करके भी वास्तविक जीवन में नारियों को स्वतन्त्रता का अधिकार नहीं दिया गया। इन अन्तर्विरोधी दशाओं के बारे में लेखिकाओं के विचार स्पष्ट रूप में उभर कर आए हैं।

शिवानी परम्परित आदर्शों के अनुसार विवाह को आवश्यक मानती हैं और इसकी मर्यादा रेखा को पार करने की प्रवृत्ति पसन्द नहीं करती हैं।[12] ऐसे ही विचार दीप्ति खण्डेलवाल, शशिप्रभा शास्त्री के भी हैं। यहां तक कि विदेश प्रवास करने वाली उषा प्रियम्वदा भी इनका समर्थन करती हैं।

मृदुला गर्ग किन्तु विवाह के सम्बन्ध में 'बोल्ड विचार' रखती हैं। ये विवाह को अनावश्यक मानती हैं। विवाह के बाद के सम्बन्धों के निर्वाह की थोथी औपचारिकताओं पर गहरा कटाक्ष करते हुए इन्होंने अपने 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास में पति-पत्नी के विवश बन्धनों की खिल्ली उड़ाई है।[13] शायद यही कारण है कि ये

विवाहेतर सक्स सम्बधा को निषिद्ध नही मानती बल्कि उन्हे सवथा उचित स्वीकारती हैं।[14]

(कृष्णा सोबती न भी विवाह सम्ब धी दृष्टिकोण को नवीन चितन आयाम अपने उपन्यासो मे दिया है। विवाह को सामाजिक दृष्टि स आवश्यक किन्तु व्यक्ति की दृष्टि स अनावश्यक मानते हुए कहती हैं— विवाह का चलन व्यक्ति की दृष्टि म अनावश्यक ब धन है। इसस व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता है। किन्तु सामाजिक दृष्टि स इसकी आवश्यकता को नकारा भी नही जा सकता है।)[15] जबकि मन्नू भण्डारी की दृष्टि म विवाह आवश्यक तो है पर इसका स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि व्यक्ति को तलाक की सुविधा बनी रहे तथा विवाह के असफल होने पर उसस मुक्ति भी हो सके।[16]

विवाह के माग की कठिनाईया को सम्वेदना क धरातल नारी मन सदव अनुभव करता रहा है। स अपने उपन्यासा म (प्रमुख प्रतिपाद्य के रूप म) इन लेखिकाआ के द्वारा चित्रित भी किया गया है। विवाह की शृखला की जकडन महसूस करते हुए इनकी धारणा है कि ये ब धन सिफ स्त्रिया के लिए ही है न तो उस स्वेच्छया विवाह की स्वत त्रता है और न ऐसा करने के लिए उस प्रो साहन ही मिलता है।

(चन्द्रकिरन सौनरेक्सा क अनुसार नारी इस दृष्टि स अभागा है विवाह की आजादी तो आज भी भारतीय युवती को नही है। हमारे यहा विवाह माता पिता तय करत ह। भारतीय नारी तो यदि विवाह न करना चाहे तब भी उस सामाजिक समथन नही मिलता क्योकि आज भी परम्परा का वही पुराना रूप मौजूद है—स्त्री बिना किसी एक रक्षक क अकेली कसे रहेगी?[17])

समाज के उपयक्त चिन्तन के सदभ स विवाह की सस्था कितनी खोखली है यह सिद्ध हो जाता है। ऐसी अवस्था म परम्परागत विवाह की गरिमा की दुहाई देना और उसकी प्रतिष्ठापना की ढीग हाकना सुनहरी भ्राति क अलावा और कुछ नही है। इस सत्य को देखकर मीरा महादेवन न उस इन शब्दा म अभिव्यक्त किया है— मैं समझती हू कि ववाहिक जीवन स्वय म एक असफल प्रतिष्ठापना है। पति पत्नी अलग अलग व्यक्तित्व होत है।[18]

अतर्जातीय विवाह

विवाह मे सम्बन्धित अधिकाश कठिनाईया स अतर्जातीय अन्त प्रान्तीय या अन्तर्धर्मीय विवाह व्यवस्थाओ स उबरा जा सकता है। मन्नू भण्डारी मालती परुलकर ममता कालिया आदि ने निजि निणय को प्रतिष्ठापित करते हुए प्रम विवाह किया है। मीरा महादेवन महाराष्ट्र के यहूदी परिवार की हैं और इनक

पति श्रीलंका के तमिल हैं, अतर्जातीय विवाह की अपनी दृढ़ संकल्पना को व्यक्त करते हुए कहती है 'मैं सदैव यह चाहती थी कि अन्त प्रान्तीय या अन्तर्जातीय विवाह करूँ।'[19] इसका कारण प्रकट करते हुए वे स्पष्ट करती हैं कि 'क्योंकि मैं अल्पसंख्यक जाति की हूँ और मुझे अक्सर लगता था कि अपनी जाति में मुझे वह आजादी नही मिल सकेगी जिसकी मुझे आकांक्षा थी। फिर हमारी अल्प सख्यक जाति में बन्धन बहुत अधिक थे। हमारी मुलाकात हुई और एक विवाह के बंधन मे बँध गए।[20]

तलाक

तलाक का प्रश्न भी विवाह के साथ ही जुड़ा हुआ है। विवाह की स्वतन्त्रता के अभाव में स्त्री-पुरुष उनके अपने निर्णय के बिना विवाह-बन्धन में बाँध दिए जाते हैं। रुचि, संस्कार, विश्वास, जीवन दृष्टि आदि अनेक स्थितियाँ हैं जो पति-पत्नी के सम्बन्धों मे कटुता उत्पन्न कर देती है। इस बारे में लेखिकाएँ तनाव की स्थिति में तलाक को पसन्द करती हैं। मीरा महादेवन पति-पत्नी के बीच सामञ्जस्य की दशा में ऐसी तनावग्रस्तता के समाप्त हो जाने के बारे में स्पष्ट करती हैं कि 'विवाह चाहे सजातीय हो या अतर्जातीय इससे विवाह की इस प्रतिष्ठापना में कोई अन्तर नही पड़ता है क्योंकि वैवाहिक जीवन में ऐसे क्षण सदा आते हैं जब पति-पत्नी के बीच तनाव पैदा हो जाते हैं। लेकिन अगर पति-पत्नी में सामञ्जस्य, प्रेम, स्नेह है तो ऐसे प्रसंगों का विस्तार क्षणिक होता है। सांस्कृतिक भिन्नता भी एक प्रकार से दूर हो जाती है।'[21]

किन्तु जब दम्पत्ति में सामञ्जस्य नही हो पाता है तभी मुख्य समस्या खड़ी होती है। मन्नू भण्डारी कहती है कि इस दशा में विवाह बंधन से मुक्त होने की स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। कानून ने भी ऐसा अधिकार दे रखा है पर यह अधिकार कितना व्यावहारिक और उपयोगी है इसकी सच्चाई किसी से छुपी नही है। यों मन्नू भण्डारी तलाक की अनिवार्यता की पक्षधर हैं। अपने विचारों को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है—'विवाह आवश्यक तो है पर इसका स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि व्यक्ति को तलाक की सुविधा बनी रहे तथा विवाह के असफल होने पर वह उससे मुक्त भी हो सके।'[22]

तलाक का समर्थन करते हुए भी लेखिकाएँ उसके दुष्परिणामों से भी अवगत हैं

प्रेम भावना

(प्रेम नारी की सबसे बड़ी दुर्बलता है। इसी के कोमल भावालोक में नारी का मन सहज ही पुरुष की ओर आकर्षित होता है। शशिप्रभा शास्त्री नारी की प्रेम विषयक भावना को परिभाषित करते हुए कहती हैं—'तनिक से भी स्नेह की आँच पाते ही मन कितनी जल्दी पिघल उठता है। विश्वास के कितने बड़े ताने बुने जाने लगते हैं सपनों की पेंगें कितनी दूर तक उड़ाने लेने लगती हैं, जिन्दगी भर निर्वाह करने की सामर्थ्य जुटाने की क्रिया प्रक्रिया कितनी सजग हो उठती है—निरीह अशक्त होकर एक नह्नी सी रसधार में तिरने की कितनी बड़ी क्षमता मैं स्वय में समोये हुए हूँ—मुझे कभी कभी खुद आश्चर्य होता है।'[24])

नारी की यह प्रेम भावना जीवन के कठोर, कटु यथार्थ से टकरा शीघ्र ही बिखर जाती है। इस सत्य को साहित्य सृजन की प्रेरणा से जोड़ते हुए दीप्ति खण्डेलवाल कहती है– 'अब कविता दीप्ति को एक छद्म लगती है। प्रेम और सौंदर्य के अर्थ उसके लिए बदल गए है प्रेम और सौंदर्य के स्थान पर जब यथार्थ का कटु और कुरूप उसके रूबरू खड़ा हो गया तो उसने घबरा कर आखें नही बन्द की उस रूबरू खड़े यथार्थ को भी अपना लिया फिर वह प्रेम और सौंदर्य के कैनवास पर कटु और कुरूप के चित्र खींचने लगी।'[25]

प्रेम के बने बनाये फ्रेम को तोड़ने की कोशिश के बावजूद नारी प्रेमजनित परवशता से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पायी है। समस्त आधुनिक बोध और अमेरिकी जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव के बावजूद उषा प्रियम्वदा असफल प्रेम कहानी पर आधारित 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' उपन्यास ही लिखती हैं। शायद इसका कारण संस्कार है जिनके रहते नारी चाहकर भी उन वन्दिशों को तोड़ नहीं पाती। इस दृष्टि से उषा प्रियम्वदा के कृतित्व का मूल्याकन करते हुए धनञ्जय वर्मा कहते हैं 'उषा प्रियम्वदा की कहानियाँ देखलो। विदेशी पात्र और पूरी सेटिंग विदेशी। लेकिन उसके पीछे धड़कता हुआ वही भारतीय मानस, भारतीय कुण्ठाएँ और अभिशप्ताएँ हैं। क्योंकि आप अपने सम्पूर्ण अस्तित्व की इकाई को कैसे नकार सकते हैं, उनके समस्त सामयिक सदर्भ से कैसे कट सकते है? और क्या कभी कट सकते हैं? जाने कहाँ कहाँ और कब आपके संस्कार आपका पीछा करें।'[26]

यौन भावना

/ सेक्स चित्रण को लेकर अवश्य लेखिकाओं के ये संस्कार टूटते नजर आते हैं। समलैंगिक सम्बन्धों, सम्भोग चित्रण, काम कुण्ठाओं के विपुल चित्र इनके उपन्यासों में अंकित है। यही दशा उनके चिंतन की भी है।

दीप्ति खण्डेलवाल कहती हैं 'सेक्स के सम्बन्ध में मेरे विचार एकदम स्पष्ट और बेबाक हैं। सेक्स को मैं मानवीय अतश्चेतना का ही अंग मानती हूँ। भारतीय जीवन पद्धति एवं विचार परम्परा में सेक्स इसलिए निषिद्ध है, क्योंकि हम इसे पवित्र मानते हैं। हमारे यहां सेक्स तन-मन के एकान्त की पूजा है चौराहों पर प्रदर्शित क्रीडा नहीं। लेकिन मैं सेक्स अपनी प्रभावक्ता में स्वीकारा जाना चाहिए। वैसे भी किसी कला का मूल्यांकन वस्तुगत कम, प्रभावगत अधिक होता है। सेक्स पर मैंने निर्भीक लेखनी उठाई है।[27] /

/ उषा प्रियम्वदा, कृष्णा सोबती आदि लेखिकाओं ने नारी के विवाह पूर्व में या विवाहेतर पर-पुरुष सम्बन्धों को विशेष परिस्थितियों में नाजायज नहीं माना है।[28] / मन्नू भण्डारी को सेक्स के बारे में पुरुष के व्यवहार से तीव्र शिकायत है। / ममता कालिया के 'बेघर' उपन्यास के नायक की भांति पुरुष तो हर नारी से शारीरिक सम्बन्ध जोड़ने के लिए लालायित रहता है परन्तु अपनी पत्नी को सतीत्व धर्म का पालन करते हुए देखना चाहता है। / इसलिए मन्नू भण्डारी विवाह पूर्व के शारीरिक सम्बन्धों को अनुचित न मानते हुए भी पुरुषों से भी अपने संकीर्ण चिन्तन को छोड़ने की बात बतलाते हुए कहती हैं— 'जैसे हम विवाह में पहले मिलना जुलना, घूमना-फिरना उचित ही नहीं जरूरी भी मानते हैं, उसी प्रकार यदि शारीरिक सम्बन्ध भी हो तो कुछ भी गलत नहीं। पर सारी मुसीबत होती है हमारे यहां के लड़के लड़कियों की मानसिक बनावट को लेकर उनके संस्कारों को लेकर। बातों में कोई चाहे कितना ही आधुनिक बने पर व्यवहार के धरातल पर चाहते सब यही हैं कि लड़की बिल्कुल फ्रिज में से ही निकलकर आ रही हो।'[29]

शिवानी लेकिन सेक्स के खुले चित्रण का विरोध करती हैं। इनकी धारणा है कि ऐसा न तो जीवन में और न साहित्य में ही किया जाना चाहिए। 'क्योंकि भोगे हुए यथार्थ में जो कटुता होती है पाठक उसे स्वीकार करने में संकोच भी कर सकता है। लेकिन काल्पनिक यथार्थ जो वासना के परिवेश में बधा हो उनको रुचिकर भी लग सकता है। मुझे कभी हँसी भी आती है, जो भोगा हुआ यथार्थ है उसे, पाठक अरुचि से दूर खिसका देता है, जो काल्पनिक यथार्थ होने पर भी, उसकी वासना की कली को सामान्य रूप से प्रस्फुटित कर सकती है—वह कहानी है।'[30] यह दूसरी बात है कि सेक्स विरोधी उपर्युक्त चिन्तन के बावजूद शिवानी ने स्वयं ने अपने उपन्यासों में कई बार ऐसे वाक्यों, वाक्यांशों का प्रयोग किया है जो प्रत्यक्षतः सेक्स से ही जुड़े हुए हैं। रामदेव शुक्ल शिवानी की इस प्रवृत्ति का निरूपण करते हुए कहते हैं— 'शिवानी ने एकाधिक स्थलों पर इस बात की ओर संकेत किया है कि स्त्री के सामने (लेखक के रूप में) संकट यह होता है कि वह स्त्री पुरुष के शारीरिक सम्बन्धों को

लेकर उतने बेबाक ढग से नही कह पाती जितनी स्पष्टता से पुरुष। 'अपराधिनी में अनेक स्थल उसके इस सकोच को झुठलाते हुए लगते हैं। स्त्री के समक्ष पुरुष को और पुरुष के समक्ष स्त्री को 'चटपटे व्यजन', 'सामने परसी थाल', मुह के ग्रास' आदि रूप मे सकेतित करने वाले स्थल आवश्यकता से अधिक मुखर हैं।'[31]

मृदुला गर्ग ने सेक्स के खुले चित्रण से परहेज नही किया है। यही इनकी त्वरित लोकप्रियता का आधार है इसे बतलाते हुए मधुरेश कहते है 'हिन्दी की नवोदित लेखिकाओ मे मृदुला गर्ग एक महत्वपूर्ण नाम है। अपेक्षाकृत बहुत कम समय में ही वह अपनी एक इमेज गढ सकने मे सफल हुई है और कुल मिलाकर वह एक ऐसी लेखिका की इमेज है जो बहुत बेबाक ढग से स्त्री पुरुष सम्बन्धो का अकन करती है।'[32]

इस प्रकार सेक्स के बारे म लेखिकाएँ खुले विचार रखती है और निद्वन्द्व भाव म उन्हे अपनी रचनाओ मे भी चित्रित करती हैं। कुछ लेखिकाओ ने बोल्ड लखन के नाम पर कही कही नग्न और घिनौने चित्र भी अकित किए है। इस कारण उन्मुक्त सेक्स को लेकर ये बहुत कुछ आशकित भी है। इसी चिन्ताधारा को प्रकट करते हुए दीप्ति खण्डेलवाल कहती हैं— 'सेक्स मनुष्य की आदिम प्रवृति होने पर भी उसकी विकसित मानवीय सम्वेदनाओ से जुडा होता है। अत नया सेक्स मनुष्य के नगेपन को उजागर तो करेगा लेकिन उसे पशु बनाकर। यदि देवत्व एक भ्रम है तो पशुत्व भी सच नही। आदमी तो इन दोनो के बीच कही होता है।'[33]

नैतिक मूल्य

नवजागरण के साथ ही देश मे नैतिकता व मूल्यों पर सकट उपस्थित हुआ। पुराने मूल्य तेजी से टूटने लगे और नैतिक आदर्श अब व्यक्ति के आचरण के नियामक नही रह पाए। लेखिकाओ मे भी नैतिकता के बन्धनो के प्रति मोह की कमी दिखाई देती है।

(कृष्णा सोबती मानती है कि 'साहित्य और कानून की निगाह एक नही हो सकती। साहित्य जीवन का दर्पण है जिन्दगी की बदिश नही। अत नैतिकता का जो पैमाना न्यायाधिकरण मे पेश किया जाता है वह साहित्य पर लागू करना या उसके साँचे मे साहित्य को मर्यादित कर देना अनुचित है। साहित्य इस दृष्टि म सिर्फ आन्तरिक सयम और बदिश रखता है जो उसके बहाव को, चढाव को, खुद ही सहेजता-समटता है। सत्य को अपने मे सजोता है और खुलेपन मे पनपने देता है।'[34] इसी आधार पर कृष्णा सोबती की स्थापना है 'तथाकथित नैतिकता और धर्म की चौखटो क बाहर इन्सान की जिन्दगी का एक बहुत बडा हिस्सा फैला पडा है। उसकी उम्मीदें, आस्थाएँ, उसकी कमजोरियाँ, प्यार और आर्थिक सघर्ष। इन सबको किसी एक

के नाम पर छाँट देना, उन्हे किसी दायरे से बाहर कर उन पर फैसले देना मुनासिब नही।'[35]

मन्नू भण्डारी आज के वैज्ञानिक युग मे प्राचीन नैतिक मूल्यो की रूढि को स्वीकारते जाने की प्रवृत्ति का विरोध करती हैं। उन्ही के शब्दो मे 'ईश्वर और धर्म के रूढिबद्ध रूप का पालन करके तो हम तिलक लगाकर जिन्दगी भर माला ही जपते रह जाएँगे। जीवन के वृहत्तर मूल्यो के लिए अपनी सार्थकता के लिए विवेक, मानवीय सवेदना और सह अनुभूति की आवश्यकता होती है, ईश्वर की नही।'[36]

प्रकाश के प्रति अपनी अमित आस्था के बल पर ही दीप्ति खण्डेलवाल 'पाप पुण्य, नैतिक-अनैतिक की कोई रूढिगत मान्यता को वह नही मानती, किन्तु प्रकाश मे उसकी आस्था है और प्रकाश और अधकार के भेद को वह दृढता से स्वीकारती है—जिद की हद तक।'[37] इस सत्य को आज की कहानी मे उपस्थित देखते हुए मन्नू भण्डारी कहती हैं 'आज की कहानी मे नारी के बहुमुखी प्रेम सम्बन्धो की चर्चा है, नैतिकता और अश्लीलता के परिवर्तित बोध अंकित हैं और अपनी समग्रता और विविधता मे चित्रित है।'[38]

नैतिकता का यह परिवर्तित बोध कैसा है ? इसकी व्याख्या शशिप्रभा शास्त्री इस प्रकार करती हैं—'नैतिक मान्यताओ का मूल्याकन मैं अब दूसरे ही कोण से करने लगी हूँ। अब मेरी निगाह मे वह व्यक्ति बुरा नहीं है जो पर-पुरुष या पर स्त्री गामी है, सिगार या शराब पीता है, अभक्ष्य नामधारी पदार्थों का सेवन करता है। घृणा या अवमानना मेरे मन मे अब उस व्यक्ति के प्रति उभरती है जो वचन देकर भी उसके निर्वाह मे कोताही करता है, धार्मिकता का स्वाग रचकर भीतरी प्रकोष्ठो मे रगरेलिया रचाता है। जो अपने दायित्व और कार्य के प्रति ईमानदारी नही कर पाता, केवल बात करता है सिर्फ बात।'[39]

यातो मान मे ही नैतिकता की दुहाई देने वाले किन्तु व्यवहार मे घृणित कार्य करने वाले दोहरे व्यक्तित्व के धनी लोगो से मानो मन्नू भण्डारी इन शब्दो मे पूछना चाहती है—'हिन्दू आदर्श और आज के भारतीय जीवन को दोहरी भाषा मे बोलने समझने का ढोंग आप कितने दिनों तक और चलाये रखना चाहते हैं।'[40]

वाचिक नैतिकता के स्थान पर नूतन परिस्थितियो मे उदित नए मूल्यो को सहजता से स्वीकार करना ये लेखिकाएँ अधिक पसन्द करती हैं। परम्परागत मूल्यों और नवोदित सत्या के द्वन्द्व मे अपने वरणीय को अभिव्यक्त करते हुए कृष्णा सोवती कहती हैं— 'हम क्यों न स्वीकार करें कि पुरानी परम्पराओ के ढहते इस ऐतिहासिक मोड पर हम देह की आत्मा की अमलदारी से आजाद कर उसकी स्वतन्त्र सत्ता को

स्वीकारें।'[41] इस स्वतन्त्र सत्ता का स्पष्टीकरण करते हुए वे विचार व्यक्त करती हैं कि 'हमने दर्शन और चिन्तन की सूक्तियों और विवशताओं दोनों से देहातीत अमर प्रेम और जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्धों के कुलावें बाँधे हैं। अब हम व्यक्ति की हैसियत से अपने होने की वैज्ञानिक सार्थकता को खोजने टटोलने के लिए नितान्त कुछ दूसरा करना है जो पहले से भिन्न होगा। नया होगा।'[42]

यह नवीन सत्य कोरा आदर्शवाद ही न रह जाय, इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है इसकी चर्चा करते हुए कृष्णा सोबती अपने विचार रखती हैं कि 'इसे कर पाने के लिए हम मानसिक रति की घटिया कहानियों, सेक्स की प्रेतात्माओं पर प्रतीकों के लबादे नहीं पहनाते हैं। हमें हाड़ मांस के इन्सान के पास जमी सड़ांध को साफ कर उस अनाम चमत्कार को उजागर करना है जो इन्सान के बार बार मर जाने के बाद भी जिन्दा रहता है। साहित्य क्योंकि धर्म नहीं और जीवन क्योंकि आचार नहीं इन दोनों की मभाती में हम अतीत से आक्रान्त जीवन और साहित्य में आधुनिकता के उस संस्कार को रोपना है जो सिर्फ शैली और कलेवर का फैशन ही नहीं - एक खुली उन्मुक्त और मेहनतमंद जिन्दगी का प्रस्तुतीकरण भी है।'[43]

किन्तु यहाँ यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या नारी लेखिकाएँ इस गुरुतर कार्य को पूरा कर सकेंगी? क्या वे अपने संस्कारों से सचमुच मुक्त हो गई हैं? क्या सचमुच इनमें आधुनिकता के नव संस्कारों को रोपन की क्षमता है? कहीं इनकी ये सारी बातें कोरी भावुकता तो नहीं है? मन्नू भण्डारी के इन शब्दों को ऐसी शंकाओं का आधार भी बनाया जा सकता है। वे कहती हैं 'हमारी आज की समस्त अव्यवस्था और दयनीयता का कारण हवाई समाधान और झूठे आदर्शवाद में रहना है।'[44] इस सम्बन्ध में लेखिकाओं की सीमाओं को सचेत करते हुए वे कहती हैं– 'आज का लेखक तो केवल स्थिति की विषमता और समस्या को ही रेखांकित कर सकता है।'[45]

मृदुला गर्ग लेकिन सारी शंकाओं का समाधान करते हुए एवं लेखिकाओं के सामर्थ्य के बारे में पूर्ण आश्वस्त करते हुए कहती हैं 'सही मानें में औसत पुरुष भी आधुनिक नहीं है। फिर भी एक बात कहती हूँ कि खुद को बदलने की शक्ति जितनी औरत में है उतनी पुरुषों में कम ही है। यह भी क्या कम है कि अब स्त्री पुराने नैतिक मानदण्डों से बुरी तरह असन्तुष्ट दिखाई दे रही है। स्वच्छन्दता की शुरुआत ऐसे ही होती है।'[46]

परिवार

गृहस्थी के झंझट नारी लेखन की सबसे बड़ी बाधा है। इनसे छुटकारा पाना पुरुष के लिए भले ही सम्भव हो स्त्री के लिए नहीं है। सारी प्रगतियों के बावजूद भारत

म आज भी घर-परिवार की सारी जिम्मेदारियाँ नारी के ही कन्धों का बोझ बनी हुई है। इनसे उसकी मुक्ति असम्भव है। लेखिकाओं ने न केवल परिवार व उनसे जुड़ी हुई समस्याओं को उपन्यास की कथा का अनिवार्य अंग बनाया है बल्कि उनसे सम्बन्धित चिंतन को भी प्रदर्शित किया है।

अधिकांश लेखिकाओं ने पारिवारिक झंझटों में दम घोटती लेखनी की विवशता को प्रसंगानुसार बड़े विस्तार से अपने उपन्यासों में चित्रित किया है। इस विवशता को लेकर लेखिकाओं में पूरा आक्रोश भी है। मृदुला गर्ग के उपन्यास 'उसके हिस्से की धूप' की नायिका भी एक लेखिका है। उसने लेखिका के लिए पारिवारिक समस्याओं के कारण आने वाली कठिनाइयों का विस्तार से वर्णन किया है। उसके अनुसार 'घर के रोजमर्रा के यह कामकाज — खाना बनाना, झाड़-पोंछ करना, फैला सामान बटोरना, नौकर से झिकझिक करना, सौदा मांगना, हिसाब रखना कपड़े धोना, इतने छोटे होते हैं कि इनका हवाला देकर न तो किसी व्यस्तता की फरियाद की जा सकती है और न उन्हें निबटाकर किसी बौद्धिक सन्तोष का अनुभव।'[47] लेखन कार्य के समय इन छोटी-मोटी घटनाओं का घटित होना लेखिकाओं की सबसे बड़ी खीज का कारण बनता है। इस असन्तोष को वह इन शब्दों में व्यक्त करती है—'इसके अलावा अनेक ऐसी छिटपुट घटनाएं हैं, जो उसे लगता है तभी घटती हैं जब वह कहानी लिखने बैठती है। वह कहानी लिखने बैठी नहीं कि फोन बजने लगता है, गैस खतम हो जाती है, नल से पानी चला जाता है, सब्जी वाला पुकारने लगता है, धोबी कपड़े मिलवाने आ टपकता है, पड़ोसन चीनी मांगने आ जाती है, बिना बुलाए मेहमान हाजिर हो जाते हैं या हाजिर कर दिए जाते हैं।'[48] अन्त में खीज के साथ वह कहती है 'कहानी लिखते लिखते दिल का दौरा पड़ जाना दुर्भाग्य माना जा सकता है धोबी का पुकारना नहीं मटन कबाब बनाने की फरमाइश कभी नहीं।'[49]

गृहस्थी के ऐसे झंझटों के रहते हुए लेखन कार्य करने की कठिनाई को मन्नू भण्डारी भी स्वीकारती है 'घर गृहस्थी का बोझा सभालकर लिखना कितना कष्टसाध्य होता है इसकी वास्तविक अनुभूति मुझे इस बार ही हुई।'[50]

ये पारिवारिक क्रियाकलाप अनिवार्य ही नहीं होते, अवकाश का लाभ तक नहीं देते हैं। इसके बारे मे शिवानी कहती हैं—'फिर गृहस्थी के सचिवालय में कभी कभी आकस्मिक अवकाश भी नहीं मिलता।'[51] इस कारण लेखिकाओं को शान्तिपूर्वक लेखन कार्य करने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता। और जब अवसर आता है तब अनभ्यास के कारण लेखनी अड़ियल घोड़ी सी अड़ जाती है। शिवानी कहती हैं 'महीनों तक लेखनी या तो धोबी का हिसाब लिखती है या दूध-राशन का। जब लिखने का

अमूल्य अवसर आता है तब लेखनी बहुत दिनो मे अस्तबल मे बँधी घोडी सी ही भडियल होकर बिदकने लगती है।'[52]

इन सारी कठिनाईयो-दिक्कतो के बावजूद लेखन कार्य एक अनिवार्यता है इसे प्राय सभी लेखिकाएँ प्रस्तुत करती हैं। रजनी पनिकर नौकरी भी करती थी, पारिवारिक उत्तरदायित्वों को भी निभाती थी फिर भी अपने लिए लिखना एक आवश्यक मजबूरी मानती थी। उन्ही के शब्दो मे 'दिनभर ऑफिस मे काम करके गृहस्थी का भी थोडा बहुत काम देखना पडता है। जीवन मे बोरियत की कमी है। मेरा हर क्षण व्यस्त है। इन व्यस्तताओ के बावजूद मैं लिखती हू। केवल इसलिए कि लिखना मेरे जीवन के लिए उतना ही आवश्यक है जितना सांस लेना। कुछ दिन बिना लिखे बीत जायें तो मन उखडा उखडा रहता है। अकारण क्रोध आता है, झुँझलाहट होती है।'[53]

चार बेटियो और तीन बेटो की माँ होकर भी दिनेशनन्दिनी डालमिया के लिए गृहस्थी के झंझट कोई बाधा खडी नहीं करते। वे कहती है 'आम गृहिणियों जैसी दिनचर्या—बच्चो की देखभाल बागवानी, मेहमानो का स्वागत इत्यादि के साथ ही बचपन से पाला हुआ शौक, लेखन का शौक भी नही छूटा है। क्योंकि जब लिखने की इच्छा होती है तब लिखने के लिए समय निकल ही आता है। समय नही मिलता—यह भी बचने का एक बहाना है।'[54]

मालती जोशी अपने को पहले गृहिणी और फिर लेखिका मानती है और कहती हैं—'लेखक मैं बाद मे हू पहले पत्नी और माँ हू। मेरा ससार छोटा सा है। मेरा आकाश सीमित है।'[55]

दूसरी ओर ऐसी लेखिकाएँ भी है जो लेखन कर्म के प्रति अधिक समर्पित होने के भाव को प्रदर्शित करती हैं। ये गृहस्थी के झंझटो, समस्याओ से आतंकित है। इस कारण तद्विषयक असन्तोष को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष ढग से प्रस्तुत करती रहती हैं।

शिवानी अपने विचारो को इन शब्दो मे व्यक्त करती है 'कहानी का कथानक और गृहस्थी का कथानक, दो पतगो के दो ऐसे मजे हैं जिन्हे दो हाथो मे पकडकर उडाने पर भी ऐसा हो ही नही सकता कि आपस मे न उलझें।[56] दीप्ति खण्डेलवाल के लिए पति का घर 'भुतहाघर' बनकर उपस्थित हुआ जिसके भूत उसे निरन्तर रूढियो की वर्दियो के रूप मे प्रताडित करते रहते थे। 'स्पष्ट कर दूँ वह भुतहा महल रूढियो का था, अधविश्वासो का था ' सत्य वहा बन्दी था। उस कोमल देह वाली युवती को, जिसके मन मे प्रतिपल किसी सत्य और सुन्दर की चेतना फडफडाया करती थी, उस भुतहे महल के भूत हाट करने लगे।'[57]

कचनलता सब्बरवाल पारिवारिक झझटो के बारे मे मौलिक विचार प्रस्तुत करते हुए कहती हैं—'बहुत ही अधिक सुव्यवस्था और परिवार के सदस्यो का सहयोग

यदि प्राप्त न हो तो गृहिणी के काम भी इतने अधिक विस्तृत एव बिखरे हुए हो जाते हैं कि उसे समय भी नही मिल पाता विशेषतया जबकि कार्यों के सामने लेखन कार्य को अनिवार्य की सज्ञा नहीं दी जा सकती।'[58]

लेखिका की लोकप्रियता भी कई बार उसके पति की ईर्ष्या का कारण बनकर गृह कलह की सभावनाएँ जगा देती है। इस सबध मे मृदुला गर्ग का कथन है कि 'सौभाग्यवश मेरे पति के साथ इस प्रकार का कोई अभिव्यक्ति द्वन्द्व नही है, मेरे पति लेखक नहीं है। फिर स्त्रियो को लेकर जितने पूर्वाग्रही लेखक लोग होते हैं उतने कोई और नही। वे मेरे आसपास किसी भी प्रकार की ऐसी पूर्वाग्रही या शकालु स्थिति का निर्माण न करके एक प्रकार मे मुझे मेरी रचना-प्रक्रिया मे एक आवश्यक व गहरा सहयोग देते हैं।'[59]

लेखक पति के प्रति मृदुला गर्ग के ये आक्षेप कि वे पूर्वाग्रही और शकालु होते है कहाँ तक सगत हैं यह नही कहा जा सकता। किन्तु लेखक पति-पत्नियो म एक अप्रत्यक्ष प्रतिस्पर्द्धा की भावना अवश्य आ जाती है। इसकी जानकारी राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी ने सहयोगी प्रयास मे लिखे गए उपन्यास 'एक इञ्च मुस्कान' मे प्राप्त होती है।

राजेन्द्र यादव स्वीकार करते है कि 'आँखो और कानो से एक एक शब्द मुद्रा को पी जाने वाले श्रोताओ और दर्शको की विपुल उपस्थिति जिस प्रकार वक्ता और अभिनेता को अनजाने ही अपने साथ बहा ले जाती है—वही कुछ स्थिति हमारी थी। यहाँ भी बहकने और भटकने के अवसर मन्नू को ही ज्यादा थे, क्योंकि वह निस्सन्देह मुझसे अधिक सरस-रोचक लिख रही थी। अन्त के दो-तीन अध्यायो मे तो सचमुच मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मन्नू के हर अध्याय के बाद की तालियो की गडगडाहट मेरा दिल धसका देती है। उपन्यास की भावात्मक और वैचारिक अन्विति की दृष्टि से देखता हूँ तो मुझे लगता है कि इन तालियो की गडगडाहट ने मन्नू को भटका भी दिया।'[60] इसके कारण उभर आई प्रतिद्वन्द्विता को सकेतित करते हुए वे कहते है "हस्बमामूल मन्नू मेरी खिलाफ पार्टी मे थी सहयोगी लेखिका प्रतियोगी लेखिका हो गई थी।"[61] दूसरी ओर मन्नू भण्डारी भी राजेन्द्र यादव के द्वारा प्रदर्शित की जाने वाली अवरोधी बातो को इन शब्दो मे व्यक्त करती हैं—'खाक बन जाओगी तुम अच्छी! तुम किसी चीज को गम्भीरता से लेना जानती ही नहीं हो। बडी सरलता से ख्याति मिल गई है, इसलिए दिमाग आसमान पर चढे हुए हैं। पर इस मुगालते मे रही तो साल भर में ही चुक जाओगी।'[62]

पतियो के ऐसे असहयोगपूर्ण व्यवहार के कारण लेखिकाएँ मानो दोहरे ढग से प्रताडित होती हैं—उनके पति यह तो चाहते हैं कि उनकी पत्नी लेखिका के रूप मे

उनको गौरव वृद्धि करती रहे लेकिन यह सब ऐसे गुपचुप करले कि उन्हे किसी प्रकार का कष्ट न हो।

अपने पति के ऐसे ही चिन्तन को स्पष्ट करते हुए कृष्णा अग्निहोत्री कहती है 'मेरे पति किसी समय कहानी लेखक थे, आज जज मात्र हैं। यो तो वह चाहते हैं कि लिखूं, बडा गर्व भी अनुभव करते है कि उनकी पत्नी लिखती है। मगर जब लिखने की प्रक्रिया चलती है तो मैं उनके लिए परेशानी का कारण बन जाती हूँ। तब वह हँसकर कह भी देते हैं कि पत्नी के लिए कहानी लेखिका होना अनिवार्य नही। यो ये बड़े सहृदय सवेदनशील हैं।'[63]

दूसरी ओर मालती जोशी की अनुभूतियाँ पूरी तरह समर्पिता की अनुभूतियाँ प्रतीत होती है। चूंकि वे अपने को पहले पत्नी या माँ मानती हैं और बाद मे लेखिका इसलिए ऐसी कठिनाई का अनुभव नही करती। पति को वे अपने लेखन का पूर्ण सम्बल के रूप मे ही पाती है। उन्ही के शब्दो मे 'मेरे पति लेखक नही हैं फिर भी मानसिक रूप मे वे मेरे सम्बल होते है। लौटी हुई कहानी पर मातम मानती मैं उन्ही से सम्वेदना पाती हूँ। प्रकाशित कहानी पर उनकी प्रशसा मेरा सबसे बडा पारिश्रमिक होता है।'[64] लगभग ऐसे ही विचार व्यक्त करते हुए दीप्ति खण्डेलवाल कहती है 'मेरा पारिवारिक परिवेश उदार है। जो मेरे अभिन्न हैं, वे मुझे किसी व्यक्तिगत सम्बन्ध के सदर्भ मे नही, एक सप्राण चेतना के स्तर पर स्वीकारते है। उनके इस स्वीकार ने मुझे बल दिया है।'[65]

इन सब अभिशसाओ के बावजूद इसे सर्व स्वीकृत सत्य के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता है। लेखन मे भले ही पति सहयोग प्रदान करते हो पारिवारिक कार्यों म उनके सहयोग की बात असदिग्ध नही है। मन्नू भण्डारी एक लेखिका के लिए गृहस्थी के ढेर सारे झझटो के बीच पति के असहयोगपूर्ण आचरण को प्रदर्शित करते हुए कहती है कि मन और ध्यान को बटाने वाले अनेक प्रसग नारी लेखिका के सामने रहते हैं। ऊपर से 'राजेन्द्र जैसा पति जो पारिवारिक जिम्मेदारियो के सामने 'बाबा मौज करेगा' का नारा लगाकर हाथ झटकता हुआ चल दे।'[66]

इस प्रकार पारिवारिकता का उलझनग्रस्त स्वरूप नारी के लेखन की सबसे बडी कठिनाई है। इस कोण के अलावा भी नारी का परिवार के प्रति चिंतन और उसमे पति की सामान्यत अवरोधक भूमिका को इन विचारो मे स्पष्ट देखा जा सकता है।

धर्म

भारतीय चिंतन मे ईश्वर विषयक आस्था और धर्म का विशेप महत्व है। आधुनिकता के पक्षधर व्यक्तियों मे भी धार्मिक आचारो के अनुसर्ता होने की प्रवृत्ति यथावत उपस्थित देखी जा सकती है। इन लेखिकाओ ने भी धार्मिक आस्थाओ के निर्वाह का

समर्थन किया है यद्यपि कुछ ने कड़े शब्दो मे इसका विरोध भी किया है। अत इस सम्बन्ध मे इनके चिन्तन की दो दिशाए हैं जो इन्हे दो अलग अलग चिन्तन-वर्गों मे विभाजित कर देती है।

शशिप्रभा शास्त्री आस्था के निर्वाह की समर्थक है क्योकि 'इनकी आस्था का विन्दु एक दूसरे स्तम्भ पर भी टिककर खड़ा हो जाता है। जहाँ व्यक्ति नैतिकता के समान मानदण्डो को स्वीकारता हुआ भी उनको क्रियात्मक रूप देने म इसलिए असमर्थ रहता है क्योकि उसे परिवार के नादान सदस्यो को अनुशासित रखना है।'[67] आस्था का यह भाव मुख्यत अदृष्ट की शक्ति के प्रति विश्वास के कारण स्थिर हुआ है। इसे स्पष्ट करते हुए वे कहती हैं 'मैं उस एक अदृश्य शक्ति की बात कर रही हूँ, जो मुझे ठेलकर जहाँ चाहे ले जा सकती है, ले जाती है। सयोग, नियति कुछ भी कहे आप उसे।'[68] उस ईश्वर की इच्छा को अपरिहार्य, अन्तिम और अन्यतम स्थापित करने हेतु कहती हैं कि वह अदृष्ट आज भी प्रमुख है 'जिसकी इच्छा के बिना मैं एक कदम भी आगे नही बढ सकती।'[69]

मन्नू भण्डारी लेकिन ईश्वर की अपेक्षा जीवन के वृहत्तर मूल्यो के लिए, अपनी सार्थकता के लिए विवेक, मानवीय सवेदना और सह-अनुभूति को अधिक आवश्यक मानती हैं। इनके अनुसार भारतवासी ईश्वर से नही ईश्वर की रूढि से प्यार करता है। 'नीत्शे ने अपनी सहज दार्शनिक भाषा मे तो यह कहा था कि ईश्वर मर गया है और (आपका प्रश्न सुनकर) मुझे लगा कि उसे जिन्दा रहने का कोई हक नही है। आप ईश्वर को नही, सच्चे भारतीय की तरह ईश्वर की रूढि से प्यार करते हैं। ईश्वर तो एक आस्था का नाम है बन्धु, और वह आस्था अपने आसपास भी हो सकती है अपने भीतर भी। ईश्वर और धर्म के रूढिबद्ध रूप का पालन करके तो हम तिलक लगाकर जिन्दगी भर माला ही जपते रह जाएँगे।'[70]

धर्म की रूढिबद्ध आस्था का प्रतिकार करने की समर्थक लेखिकाएँ धर्म और समाज की परिभाषाएँ बदलने को तत्पर हैं। मालती परुलकर कहती हैं 'जहा तक धर्म का सवाल है मैं समझती हूँ धर्म कोई बहुत आवश्यक वस्तु नही है।'[71]

इसी चिन्तन दिशा के कारण ये लेखिकाएँ उस व्यवस्था को नारी के लिए एक बड़ी चुनौती मानती हैं जो रूढिबद्ध धर्म के नाम पर सदैव नारी के लिए बन्धनो की सृष्टि करती रही हैं। चन्द्रकिरन सौनरेक्सा उसकी व्याख्या इन शब्दो मे करती हैं— 'भारतीय नारी को मानव समाज मे एक मानव के नाते जीने का अधिकार प्राप्त करने के लिए अभी और भी सघर्ष करना पड़ेगा। उसे धर्म और समाज की प्राचीन परिभाषा को बदल कर अपने को उस मानवी रूप म प्रतिष्ठित करना है जो मानव की सहयोगी, साथी, पूरक हो न कि गृहलक्ष्मी, देवी या ... ।'[72]

फैशन

लेखन के स्तर पर आधुनिकता के प्रति समर्पित होकर भी अधिकांश लेखिकाएँ स्वयं आधुनिका बनना पसन्द नहीं करती हैं। कम से कम फैशन के प्रति तो इनका रुझान ही नही है। जीवन मे परम्परागत सादगी को ही अपनाए रखने के लिए सचेष्ट हैं। शशिप्रभा शास्त्री को कृत्रिम प्रसाधनो से शरीर को सजाना पसन्द नही। 'खुद की देह को बेतुके ढंग से सच्चे-झूठे मोतियों से सजाने जैसी अपनी रात दिन की जिन्दगी मे भी मैं इतनी ही सादी हो गयी हूँ।'[73] दीप्ति खण्डेलवाल भी बाहरी सजावट की अपेक्षा आन्तरिक सज्जा को सम्मानित करते हुए कहती हैं, 'उनकी बाहरी सज्जा साधारण होती है किन्तु भीतर की सज्जा को वह पल पल सवारती सहेजती रहती है।'[74]

मन्नू भण्डारी लेखन की ही भाँति जीवन में भी सादगी को अपनाए रखने की हिमायती हैं। 'उनके दैनिक जीवन में कहीं कोई दुराव, पोज और बनावट नही। जो कुछ वे नही हैं उसे दिखाने की कतई कोई चेष्टा नही करती हैं। वे नारी हैं - मान नारी और यह नारीत्व एक ओर भारतीय परम्पराओ तथा दूसरी ओर आधुनिक परिवेश दोनो को बडे सहज ढग से आत्मसात किए हुए है।'[75] उषा प्रियम्वदा विदेश मे रहकर भी भारतीय सादगी और सस्कारो से यथावत जुडी हुई हैं। घनश्याम मधुप के शब्दो मे—'इस सबके बाद भी उषा के सस्कार पूरी तरह भारतीय हैं।'[76] (कृष्णा सोबती मितव्ययिता के आदर्श का अनुपालन करते हुए कहती हैं 'अपने लिए कम चीजें खरीदती हूँ। यहाँ वहाँ का छोटा-मोटा रग-बिरगा सामान इकट्ठा करते जाना मुझे नापसन्द है। जमकर इस्तेमाल होने वाला ठोस समान ही मेरी आँखो पर चढता है।'[77])

जातीयता

धर्म की ही भाँति जातीय सकीर्णताओ का भी विरोधी भाव इनके चिन्तन का आधार है। विचार के धरातल पर ये लेखिकाएँ इनसे ऊपर उठ चुकी हैं और इसकी चर्चा तक करना आवश्यक नही मानती। इस कोटि की बीमार बना देने वाली भावुकता को ये पसन्द नही करती और अपने वैचारिक बदलावो की समता म इस तरह की सकीर्णताओ को किसी तरह का महत्त्व नही देती। शशिप्रभा शास्त्री कहती है — 'बीमार बना देने वाली भावुकता से मुझे चिढ है। अपने इस बदलाव मे सामने जाति-पाँति की प्रथा तोडने-जोडने जैसी बातें अब बहुत बेकार लगती हैं। प्रेम और श्रद्धा के सामने सब छोटा लगता है।'[78]

नारी चिंतन

एक नारी के रूप मे लेखिकाओ ने स्वय मे स्त्री की कठिनाईयो को प्रत्यक्ष अनुभव

किया है। नारी पर होने वाले अत्याचारों, स्वावलंबिता के लिए संघर्षरत नारी के प्रति इनकी विशेष धारणाएँ हैं। इसके मूल में पुरुष के आचरण को ही इन्होंने मुख्यत. अनुभव किया है। इस चिन्ताधारा ने इनके उपन्यासों को व उसमें पुरुष के आचरण को रूपायित करने का कार्य किया है। अत नारी के प्रति दृष्टिकोण को भी यहाँ जान लेना आवश्यक है।

भारत म आज भी पुरुषों से कम समझकर देखा जाता है। शिक्षित हो अथवा अनपढ सामान्यत नारी या तो सजावटी गुडिया समझी जाती है या बच्चे पैदा करने की मशीन। पुरुष की भाँति उसे न तो विचाराभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता है न राय देने व आत्म निर्णय का अधिकार ही प्राप्त है। चन्द्रकिरन सौनरेक्सा की धारणा है कि 'सब मिलाकर आज इस बीसवीं सदी में भी हमारे भारतीय समाज में नारी पुरुष क समान नहीं। उससे कुछ नीचे स्तर की मानी जाती है।'[79]

नारी की ऐसी अवमानना ने इन लेखिकाओं को इस बात के लिए सम्प्रेरित किया है कि वे और कुछ लिखें या न लिखें नारी के प्रति अवश्य लिखें। रजनी पनिकर कहती हैं — 'नारियों पर होते अत्याचार देखकर मुझे दु ख होता। उसी समय (बचपन) मेरे मन में एक गाँठ पड गयी कि मैं भी नारियों की परिस्थितियों के बारे म कुछ लिखूं। और जब मैंने लिखना शुरू किया तो वे सारी परिस्थितिया, वे सारे परिदृश्य और करुण मूर्तियाँ बार बार मेरे मन को झकझोर जातीं।'[80]

नारी को उपन्यासों का अनिवार्य विषय बनाए जाने के विषय म अपने विचारों को व्यक्त करते हुए मन्नू भण्डारी कहती है 'अब तक कहानियों और उपन्यासों की नायिका नारियाँ अधिकतर किसी न किसी पुरुष के व्यक्तित्व पर केन्द्रित होकर उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति से प्रतिक्रियान्वित होकर या कहा जाये कि पुरुष की 'विशफुल थिंकिंग' के अनुरूप श्रद्धामयी, करुणामयी, आज्ञापालिनी, त्याग और तपस्या की मूर्ति गढी जाती रही। यह अस्तित्व पुरुष के आधार पर ही खड़ा किया जाता था। नारी का वह चित्रण उसकी वास्तविक समग्रता को व्यक्त करने में असमर्थ था। किन्तु आज के कथाकार ने इस मनगढन्त मूर्ति को खण्डित कर उसके वास्तविक यथार्थ मे चित्रित किया है। आज की कहानी मे नारी के बहुमुखी प्रेम सम्बन्धों की चर्चा है, नैतिकता और अश्लीलता के परिवर्तित बोध अंकित हैं और नारी अपनी समग्रता और विविधता में चित्रित है।'[81] यह चित्रण स्त्री-पुरुष सम्बन्धों से लेकर नारी स्वातन्त्र्य की दुहाई देने तक की स्थितियों को उजागर करने के रूप मे फैला दिखाई देता है।

नौकरी पेशा नारी

सामयिक जीवन मे परिलक्षित मुख्य परिवर्तन नारी का स्वावलम्बिता के लिए

नौकरी आदि करना है। इन 'वर्किंग वूमेन' को अनेक रूपो मे पुरुषो के असहयोग-पूर्ण व्यवहारो से निरन्तर जूझना पडता है। लेखिकाओ ने ऐसी नारियो की समस्याओ को भी अपने नारी चिन्तन का आधार बनाया है। रजनी पनिकर ने तो मानो मिशनरी भाव से नौकरी पेशा नारी की कठिनाइयो को प्रस्तावित करने का प्रयास किया है। उनका विश्वास है कि 'हमारे समाज मे पुरुष अभी तक इतने प्रगतिशील नही हुए हैं कि अपनी बुर्जुआ आदतो को छोड दें और नौकरी करने वाली पत्नी का हाथ बटायें।'[82] इनको इस बात की भी शिकायत है कि 'वर्किंग वूमेन' का स्वरूप साहित्य मे उपयुक्त ढग से चित्रित नही हुआ है। समान योग्यता के आधार पर नौकरी पाते हुए भी नारी को पुरुष सहकर्मियों की अपेक्षा अधिक परिश्रम और सावधानी बरतनी पडती है। 'क्योकि अयोग्य या काम मे जरा सी भी ढीली नारी को उसके पुरुष साथी खूब उल्लू बनाते है। वह घर के भीतर भी और बाहर भी पुरुष की दया की पात्र है। प्राय देखा गया है कि नारियां अपने काम के प्रति अधिक दायित्व महसूस करती हैं। उन्हे भी उसी तरह सघर्ष और ईर्ष्या का शिकार होना पडता है जैसे पुरुषो को। फिर भी हमारे साहित्यकार उनका चित्रण सही रूप मे क्यो नही कर पाते ?'[83]

वर्किंग वूमेन का उसका वास्तविक श्रेय प्राप्त हो इसके लिए लेखिकाएँ विशेष प्रयत्नशील दिखाई देती हैं। ऐसा न होते देखकर रजनी पनिकर अत्यत खेदपूर्वक कहती हैं 'इतने वर्षों बाद भी देखती हू कि अपनी आजीविका कमाने वाली नारी का सघर्ष ज्यो का त्यों बना हुआ है। पुरुषो की प्रवृत्तिया वैसी ही है। नारी को कार्य क्षेत्र मे आज भी उतनी ही दिक्कत उठानी पडती है जितनी पहले उठानी पडती थी।'[84] उसे पुरुषो का सहयोग न घर मे प्राप्त होता है न व्यवसाय मे।

चन्द्रकिरन सौनरेक्सा कहती है—'नौकरीपेशा स्त्री के सदर्भ मे भी यह बात लागू होती है। उसे पति के पुरुषोचित अहम् को सतुष्ट करने के लिए घर मे जहा तक सभव हो झुककर पूर्ण समर्पिता गृहलक्ष्मी के सभी कर्तव्य पूरे करने होते हैं और कार्यालय मे भी जहाँ नारी होने के नाते वह एक लोभनीय वस्तु भी है, अपना सतुलन बनाना पडता है।'[85] इस प्रकार ये लेखिकाए समस्याक्रान्त नारी की पीडा को अनुभव करती हैं और उसकी पीडाओ को दूर करने के लिए मानो अपने लेखन को माध्यम बनाकर प्रयुक्त करती दिखाई देती हैं।

पुरुषो के प्रति धारणाएँ

पुरुषो के प्रति लेखिकाओ की दृष्टि का भी इस शोध प्रबन्ध के लिए अन्यतम महत्व है। इनके आधार पर ही इनके उपन्यासो के पुरुष पात्र निर्मित हुए हैं। चन्द्रकिरन सोनरेक्सा कहती हैं—'नर और नारी जीवन मे एक-दूसरे के पूरक होते है। दोनो

की सुख-सुविधा परस्पर सन्तुलन पर आश्रित है। परिवार और समाज की उन्नति तभी सभव है जब समाज के दोनो अग यानी पुरुष व स्त्री परस्पर प्रतिद्वन्द्वी न हो अथवा अपने को स्वामी या सेवक समझने के स्थान पर एक दूसरे के साथ सहायक और साथी समझते हो। यह बात दूसरी है कि कोई काम दैनंदिन जीवन के लिए देश या समाज के लिए अधिक लाभदायक हो तो उसका महत्त्व कुछ अधिक हो और उसके कर्ता का महत्त्व भी समय की परिधि मे बढ़ा चढ़ा हो परन्तु यह महत्त्व पुरुष अथवा नारी होने के नाते नहीं है। बुद्धि की दृष्टि से नर नारी मे कोई अन्तर नही है। दोनो मे ही बुद्धिमान एव बुद्धिहीन जन्मते हैं और शारीरिक दृष्टि से नारी यदि थोड़ी दुर्बल भी हो तो आज के यत्र युग में मात्र दैहिक बल या पहलवानी अपने आप म कोई महानता नही उसे आप एक कला मान सकते है।'[86]

नर व नारी दोनों को समान मानने के कारण चन्द्रकिरन सौनरेक्सा पुरुषो के द्वारा स्त्रियो के शोषण का व स्त्रियो द्वारा पुरुषो के विरोध का प्रतिकार करती हैं। उन्ही के शब्दों म-"नारी स्वातन्त्र्य के नाम पर पुरुषो का विरोध अथवा समाज की सुरक्षा के नाम पर नारी का शोषण दोनो ही बातें मानव समाज की उन्नति म बाधक हैं।'[87] इस कोटि का आदर्शवाद समाज मे यथार्थ नही बनाया जा सकता है। सचाई यह है कि नारी को सदैव सदेह की दृष्टि से देखा जाकर उसको पुरुषो के द्वारा अपने से कम करके ही आका जाता है। दूसरी ओर नारिया यह महसूस करने लगी हैं कि चूँकि वे पुरुषो से किसी भी दशा म कम नही हैं अत सुविधाओ के भोग का अधिकार सिर्फ पुरुषो के पास ही आरक्षित क्यो रहे? ये लेखिकाएँ इस प्रकार के चिन्तन को दूषित चिंतन मानती हैं। इसके लिए चन्द्रकिरन सौनरेक्सा ही कहती हैं - 'नारी देह पर बलात उसकी इच्छा के विरुद्ध अधिकार प्राप्त करके भी, उसी नारी को अपवित्र मानने की प्रवृत्ति इसी बात की द्योतक है कि अभी तक नारी का दरजा पुरुष से काफी नीचा है और भारतीय नारी को मानव समाज म एक मानव के नाते जीने का अधिकार प्राप्त करने के लिए अभी और भी सघर्ष करना पड़ेगा। उसे धर्म व समाज की प्राचीन परिभाषा को बदलकर अपने को उस मानवी रूप मे प्रतिष्ठित करना है जो मानव की सहयोगी, साथी, पूरक हो न कि गृहलक्ष्मी, देवी या पांव की जूती।'[88]

ये लेखिकाएँ यह महसूस करती है कि पुरुषो की दृष्टि म नारी और पुरुष की मैत्री एक ही ढग की होती है। नारी और पुरुष म कोई सम्बन्ध नही होता, केवल यौन सम्बन्ध होता है।[89] पुरुषों के एतद् विषयक चिन्तन के विरुद्ध आवाज उठाना ये अपना कर्तव्य मानती हैं।

अत्यत तल्खी भरे शब्दों मे इन्दु जैन कहती हैं - 'पुरुष शायद यह कभी बर्दाश्त नहीं

कर सकता कि स्त्री आत्मनिर्भर हो जाए। वह टमाटर के गुच्छ की भांति औरत को पड़ोसी बेल की तरह लिपटाए रखना चाहता है। उसे कब सहन है कि वह बेल एक छोटा पौध बन जाए और खुद ज़मीन में रस सोखकर मोतिया की तरह महकने लगे या टमाटर की तरह पकने लगे।'[90]

अस्तु, पुरुष के प्रति प्रतिद्वंद्विता की भावना इनके चिन्तन का आधार है। पुरुष वर्ग। के रूप में तो असहयोगी है ही सामाजिक दृष्टि से भी उसकी दम्भपूर्ण वृत्तियाँ नारी की कोमल अनुभूतियों के विपरीत ही है। यही इन लेखिकाओं के पुरुष चिन्तन की पृष्ठभूमि है।

रचना प्रक्रिया का स्वरूप

रचना प्रक्रिया की विशिष्टता भी लेखिकाओं के सर्वान्वित व्यक्तित्व का उद्घाटन करती है। इनकी मान्यता है कि बाहर की विस्तृत दुनिया के साथ ही साथ लेखक का भीतर अपना आकाश होता है, एक अलग संसार होता है। कई बार बाहर जो कुछ घटित हो रहा है वह इतना पीड़ाकर होता है कि वह भीतर पैठकर लेखन के माध्यम से फूट पड़ता है। यह दर्दीली स्थिति कोई प्रसंग हो सकती है, कोई क्षण हो सकता है या कोई अनूठी घटना हो। किन्तु इतना निश्चित है कि एक सच्चा लेखक भीतर और बाहर की इन दो सर्वथा भिन्न दुनियाओं में जीता मरता है। और दोनों में जो भी हलचल होती है वही उसका भोगा हुआ यथार्थ बनकर प्रकट होती है।

(कृष्णा सोबती का विचार है कि 'जो कुछ जीया जा रहा हो, लेखक के आसपास घट रहा हो, वह अपने आप में लेखक के लेखन से कहीं महत्त्वपूर्ण होता है। जो अपने बाहर के 'साधारण' को नजर-अन्दाज कर अपने अन्दर के असाधारण को आत्म चिन्तन के द्वारा अपने ही मन के बन्द कपाटों में 'वेजीटेट' होने देते हैं वह जिन्दगी की केवल एकतरफा तस्वीर ही प्रस्तुत कर सकता है। अधिक नहीं।'[91]

खण्डशः और जीवन के अधूरे साक्षात्कार से अपनी लेखनी को यथा सम्भव बचाए रखने और उसमें समग्रता और सम्पूर्णता को परिभाषित करने के सम्बन्ध में कृष्णा सोबती का कहना है कि 'कई बार लेखक के लिए 'घट' रहे के बाहर रहना उसके अन्दर रहने से अधिक 'इन्वाल्विंग' होता है। असल बात दो सीमाओं के मध्य से 'अपने अन्दर' फिर 'अपने बाहर' झांकने की है जो अपने से बाहर है और जो अपने अन्दर है इन दोनों के बीच में ही वह सीमान्त है जहाँ जीवन और साहित्य की मर्यादाएँ एक दूसरे को छूती हैं, एक दूसरे को चुनौती देती हैं, टकराती हैं, कुछ तोड़ती हैं फिर कुछ नया पैदा करती हैं जो एक साथ जीवन और साहित्य को मान्य होता है।'[92]

रचना की अन्तर्प्रक्रियाओ को लेखिकाओ ने लेखन के स्तर पर भी गहराई से लिया है। दीप्ति खण्डेलवाल अपने लेखन के बारे मे इस सत्य को स्वीकार करती हैं कि 'खडित स्तरो पर चलती, बाहर से भीतर की ओर की माना दीप्ति का अति त्रासद भोगा हुआ यथार्थ रहा है। स्थूल स्तर पर वह निरन्तर हार रही थी सूक्ष्म स्तर पर निरन्तर मर रही थी उसका यथार्थ इतना विद्रूप था कि चेतना के स्तर पर सुन्दर एक विद्रूप बनकर रह गया। फिर इसी हार, इसी मृत्यु, इसी विद्रूप के बीच उसके लेखन ने जन्म लिया। जैसे उसे लडखडाते पैरो पर खडे होने के लिए एक अपनी जमीन मिल गयी जैसे उसे सारे अस्वीकारो के बीच एक स्वीकार मिल गया।'[93]

मन्नू भण्डारी तो बचपन से ही हर छोटी-बडी बात की तीव्र प्रतिक्रिया प्रकट करती रही हैं। यह प्रवृत्ति ही उनकी लेखनी को एक सुनिश्चित आधार प्रदान कर सकी है। वे कहती हैं 'प्रेरणा कोई ऐसी ठोस वस्तु तो नही जिसके पाने की तिथि, स्थान आदि का ब्यौरा प्रस्तुत किया जा सके। जहा तक मैं समझती हू, वह क्रमशः अपनी भीतरी और बाहरी स्थितियो के प्रति तीव्र ढग से रिएक्ट करना है। बचपन से ही हर छोटी-बडी बात की तीखी प्रतिक्रिया मेरे भीतर होती रही है जिसके लिए उस समय कहा जाता था कि मन्नू बहुत गुस्सैल है, बात बात पर भनभना उठती है। घर के साहित्यिक राजनैतिक वातावरण ने इन्ही प्रतिक्रियाओ को एक सही और सर्जनात्मक दिशा दे दी।'[94]

शशिप्रभा शास्त्री इसे स्वीकार करती हैं कि उन्होने जो कुछ जीया है लगभग वही उनके लेखन मे प्रकट हुआ है। इसका कारण स्पष्ट करते हुए वे कहती हैं 'हर सामान्य व्यक्ति की तरह मैं भी कई स्तरो पर जीती मरती हूँ। दुनिया मे जितने भी रिश्ते होते हैं, जितने भी सबध हर रिश्ते की गरिमा और गहराई को मैंने बहुत करीब से पहचाना है, उसमें सांस ली है, उसमे डूबी तिरी हूँ और प्रयत्न करती रही हूँ कि अपने लेखन में सब कुछ उसी रूप म रखकर बहुत कुछ उसी रूप म रख सकू।'[95]

हर सृजनधर्मी कलाकार क लिए इस कोटि की अनुभूति को एक अनिवार्यता बतलात हुए 'मोम के मोती' उपन्यास की पृष्ठभूमि मे रजनी पनिकर कहती है— 'यह उपन्यास लिखते समय मुझे महसूस हुआ कि जिन अनुभवो से कोई लेखक या लेखिका वास्तविक रूप से प्रभावित होती है वे अनुभव और इन अनुभवो के सदर्भ म आए पात्र मन की कच्ची मिट्टी मे सृजन प्रक्रिया का पूर्वरूप बनकर बीज की तरह रम जाते है।'[96]

यही बीज अनुकूल परिस्थितियो म जीवन क अन्य अनुभवो के खाद्य से पौष्टिकता को प्राप्त करके विकसित होता रहता है। लेखन की बहुविधता म अपनी सत्ता को

पूरी तरह विलुप्त कर देने पर भी लेखक की आत्मा को सन्तोष नही हो पाता और वह उसमे अपूर्णता ही देखता रहता है। शिवानी ऐसे ही विचारो को प्रकट करते हुए कहती हैं 'जीवन की समग्रता मे कहानी की एकात्मकता मेरे लिए सदैव एक अनोखे आनन्द की अनुभूति बन उठती है, किन्तु अपने पात्रो की सृष्टि कर उनमे भय-विस्मय, हर्ष-विषाद सबको अपने अनुभूत जगत् से रसाप्लावित करने पर भी मुझे कभी सन्तोष नही होता बराबर यही लगता रहता है कि कही चूक गई हूँ ।'[97]

इस प्रकार नैसर्गिक सम्वेदनाओ से अपने को प्रतिबद्ध मानने वाली ये लेखिकाएँ *लेखन की रचना प्रेरणा के रूप मे बाहर और भीतर की दो समानान्तर जिन्दगियो* की प्रतिक्रियाओ को प्रदर्शित करती हैं।

यथार्थ का निरूपण

उपन्यास जीवन के यथार्थ का चित्रण है। कल्पना के सहारे खड़ा किया गया कथानक भी पाठको को तब तक ग्राह्य नही होता जब तक कि वह यथार्थ की तरह प्रतीत न हो। यह यथार्थ उपन्यास को मानव जीवन के इतना निकट ला देता है कि फिर वह कोरी कल्पना प्रसूत कहानी प्रतीत न होकर जीवन की वास्तविक अभिव्यक्ति लगने लगता है। ये लेखिकाए भी यथार्थ चित्रण के प्रति अपने मौलिक विचार रखती हैं।

कृष्णा सोबती कहती हैं 'जिस यथार्थ मे मानवीय सवेदना की गूँज नही, जिस कल्पना मे ठोस यथार्थ का रग नही ऐसा 'पीलिया साहित्य' अपनी व्यापारिक सफलता के बावजूद साहित्य के गम्भीर विवेचन का हकदार कभी नहीं होगा। जिस बासती साहित्य से मात्र पाठको का मनोरजन होता है, या केवल आरोपित निराशा हाथ लगती है अथवा प्यार की असफल (फर्जी) रात के कसैलेपन का बदजायका ही मिलता है। ऐसे साहित्य से गम्भीर अपेक्षाएँ किसी को नही।[98]

ममता कालिया यथार्थ के आत्मसात् किए जाने के कारण साहित्य मे उभर आए परिवर्तनो को सांकेतित करती हैं। वे यह स्थापित करती हैं कि 'अब कहानी का वह रूप मर गया है जिसमे एक अच्छी भूमिका होती थी, चरित्र होते थे, घात प्रतिघात गढे जाते थे, एक सल्यूशन होता था, एक अच्छा अन्त होता था।'[99]

यथार्थ चित्रण मे इन लेखिकाओ के साथ एक विडम्बनापूर्ण स्थिति यह है कि ऐसा करते समय ये पात्रो के साथ इतना एकीकृत हो जाती है कि इनका कथानक इनकी अनुभूतियो का छायाचित्र मात्र हो जाता है वह फिर ठोस सच्चा यथार्थ नही रह पाता। इसे स्वीकारते हुए दीप्ति खण्डेलवाल कहती हैं—'सवेदनाओ के धरातल पर

लडी वह अपने पात्रो के साथ जीती मरती होती है। यथार्थ को हर कोण से चित्रित करती होती है किन्तु उन क्षणो मे वह लेखिका नही स्वय पात्र होती है, चित्रकार नही स्वय चित्र होती है।'[100]

मन्नू भण्डारी भी इस कमजोरी को स्वीकार करती हैं। उन्ही के शब्दो मे 'यह मैं आज भी नही जानती कि पात्रो के साथ अपने को यो एकाकार कर देने की वृत्ति लेखन मे साधक है या बाधक—वह बनाती है या बिगाडती है, पर इस एकात्मकता को इस बार मैंने अनुभव किया और बडी गहराई से किया।'[101] मन्नू भण्डारी के लेखन की इस कमी का सकेत राजेन्द्र यादव ने भी दिया है 'मेरे और मन्नू के लेखन में यही मौलिक अन्तर है। वह कथा के पात्रो के साथ इतनी अधिक एकाकार हो जाती है कि उनका दुर्भाग्य उसे अपना दुर्भाग्य लगता है।'[102]

शिवानी लेखन के स्तर पर यथार्थ को नही आदर्श की पोषक रही हैं। ये अपने पाठको को देवद्रुमो की बयार, कोशी का क्षीण कलेवर, कुमाऊँ का अलभ्य सूर्योदय, पहाडी वधुओ का सलज्ज हास्य दिखलाना चाहती हैं। और इस प्रकार कहानी लेखन को सहज आनन्दानुभूति का हृदय की भडास, को निकालने का एक सुन्दर तरीका मात्र मानती हैं। उन्ही के शब्दो मे 'कहानी लिखने का एक आनन्द यह भी है कि हृदय की भडास, क्षोभ या विवशता कहानी के निर्मल जल प्रवाह के साथ बह, चित्त को बना जाते हैं निष्कलुष, शान्त एव क्षमाशील।'[103] इसलिए इनके सामने लेखन की यह समस्या नही है कि किसी समस्या से कैसे निपटा जाय वरन् अपने अनुभवो को लिख देना मात्र ही इनकी समस्या है। इसी से पनपती है किस्सागोई की प्रवृत्ति जो इनके लेखन को लोकप्रियता तो दिला देती है पर उन्हे सामयिक यथार्थ से परे खीच ले जाती है। शिवानी के लेखन म यथार्थ को आत्मसात् करने की इस कमजोरी के बारे मे दुष्यन्त कुमार कहते हैं—'शिवानी लोकप्रियता की लीक पर है उनकी ट्रेजेडी यह है कि उनके पास सम्पन्न अनुभव है चीजो को बाहर से देखने की साफ दृष्टि है, किन्तु यथार्थ की भूमि पर प्रयोग करने और रिस्क उठाने की सामर्थ्य उनमे नही है।'[104]

उषा प्रियम्वदा ने शिवानी के लेखन के विपरीत नारी की बदली हुई मान्यताओ, परिस्थितियो को कथा विषय बनाया है। 'रुकोगी नही राधिका' की नायिका मानो लेखिका की ही दृष्टि को प्रस्तावित करते हुए कहती है 'जो आप चाहते हैं वही हमेशा क्यो हो? क्या मेरी इच्छा कुछ भी नही है? मैं आपकी बेटी हूँ यह ठीक है पर अब मैं बडी हो चुकी हूँ और मैं जो चाहूँगी वही करूँगी।'[105] इसी कारण उषा न यथार्थ के प्रति जो आस्था प्रदर्शित की है उसके बारे मे घनश्याम मधुप का कहना है—'जीवन के यथार्थ और अनुभूत सत्या को अभिव्यक्त करने मे इन्होने जिस साहस का परिचय दिया है वह सहज नही है।'[106]

चन्द्रकिरन सौनरेक्सा भी यथार्थ चित्रण की समर्थिका हैं। इनको इस बात का सन्तोष है कि 'मेरा कोई पात्र काल्पनिक नही है, वे सभी वास्तविक हैं।'[107] कृष्णा अग्निहोत्री नारी की सस्कारबद्धता को महसूस करते हुए भी यथार्थ चित्रण की हिमायती हैं। स्तरीय लेखिकाओ के द्वारा जीवन के विविध क्षेत्रो के अकन के प्रति अपने सन्तोष को व्यक्त करते हुए वे कहती हैं—'मेरी समझ मे तो रोमाण्टिक यूटोपिया ऐसा कुछ आजकल का चलन ही हो गया है। और सभी इससे ग्रस्त हैं फिर केवल लेखिकाओ को ही इससे ग्रस्त क्या कहा जाय?'[108] किन्तु मालती जोशी अपने लेखन की सीमाओ को स्वीकारते हुए कहती हैं मेरा लेखन क्षेत्र सीमित है दाम्पत्य, पता नही आप इसे प्रेम कहानियो के दायरे मे मानते हैं या नही। मेरी कहानियाँ 'बॉय मीट्स गर्ल' से शुरू होकर विवाह पर समाप्त नही होती। मेरी कहानियो की दुनिया घर आँगन म ही सिमट कर रह गई है। भीडभाड से बचकर अपनी इस छोटी सी दुनिया मे व्यस्त हूँ।'[109]

यथार्थ और कल्पना

यथार्थ के प्रति आग्रह रखकर भी क्या लेखिकाएँ सचमुच उसे अभिव्यक्त कर भी पाती हैं? इस प्रश्न पर भी विचार किया जाना आवश्यक है। नारी होने की प्राकृतिक सीमाओ के कारण अथवा पुरुष प्रधान समाज व्यवस्था मे जिस एकागी ढग से यह स्वीकारा जाता है कि मात्र पुरुष चितन ही सही और अनुकरणीय है, क्या इनकी लेखनी अप्रभावित रहती है? बेबाक ढग से यथार्थ (या नग्न यथार्थ) चित्रित करने मे क्या इन्हे किसी प्रकार की कठिनाई नही होती? इन प्रश्नो के सदर्भ मे लेखिकाओ के चिंतन को समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है।

शिवानी स्पष्ट शब्दो मे इसे स्वीकारती हैं कि 'मानव स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि बडी ईमानदारी से प्रस्तुत किए जा रहे अपने निष्कपट आत्म निवेदन मे भी वह किसी ग्वाले के जन्मजात चातुर्य से, दूध मे पानी मिलाने की गुजाइश पहले ही रख लेता है।'[110] कल्पना के सम्मिश्रण की स्वीकारोक्ति की ओट मे मानो ये लेखिकाएँ यो यथार्थ की वास्तविकताओ मे अपनी स्वतन्त्रता को प्रस्तावित करती हैं।

चन्द्रकिरन सौनरेक्सा कहती हैं—'रही बात वास्तविकता से यथार्थ पैदा करने की तो जीवन मे पृथक पृथक् स्थानो पर, पृथक् पृथक् परिस्थितिया मे जीते जागते पात्रो को, एक उपन्यास मे गूँथने के लिए घटनाओ का हेर-फेर कुछ नही कल्पना की चाशनी भी देनी पडती है।'[111] कल्पना का उपयोग इनको इसीलिए ग्राह्य और स्वीकार्य है जब तक वह यथार्थ को बाधित न करे।

भोगा हुआ यथार्थ

आज के रचनाकार ईमानदार लेखन के लिए भोगा हुआ यथार्थ के चित्रण को

अनिवार्यता मानते हैं। लेखिकाओं के लिए किन्तु यह सर्वाधिक उलझनमयी स्थिति है। नारी होने के नाते वे भोगा हुआ यथार्थ को अभिव्यक्त करने से घर-बाहर सर्वत्र विरोध का हेतु बन जाती हैं। लेखन में यथार्थ की अनिवार्यता को स्पष्ट करते हुए निरुपमा सेवती कहती हैं — 'समर्पित लेखन की एक शर्त यह भी है कि अपने या पराये किसी अनुभव को छिपाया न जाये। सच बेशक कलात्मकता से ही रचना में आए, लेकिन उसे सामने लाने को विवश होना पड़े।'[112]

लेकिन ऐसा प्रयास एक लेखिका के लिए कितनी मुश्किलें खड़ी कर देता है इसे स्पष्ट करते हुए मृदुला गर्ग कहती हैं — 'किन्तु अब भी कोई लेखिका बहुत सचाई से किसी अतर्द्वन्द्व को लिखती है तो प्रतिक्रिया (अधिकतर पुरुषों की) यह होती है कि यह सचाई नहीं केवल सनको है।'[113]

ऊपरी तौर पर सारी उन्नति के बावजूद भारतीय समाज में भीतर ही भीतर पुरातन जड़ता और संस्कारबद्धता यथावत् उपस्थित है। इस कारण लेखिकाओं के लिए उपस्थित कठिनाइयों के बारे में कृष्णा अग्निहोत्री कहती हैं — 'समाज, पाठक और लेखक अच्छी खासी दूरी है उनमें। ऐसी स्थिति में हमारा समाज हमारी भावनाओं को क्या समझेगा? ऊपर से सिरदर्द यह कि पारिवारिक सही यथार्थ लिखो तो घर वाले रुष्ट। पति-पत्नी की कहानी लिखो तो पर वाले रुष्ट।'[114]

इसी कारण भोगा हुआ यथार्थ की अभिव्यक्ति के संकट को शिवानी अपने शब्दों में इस प्रकार प्रकट करती है 'मैं तो सोचती हूँ किसी भी लेखक के अपने पारिवारिक परिवेश के विषय में लिखना कठिन ही नहीं, एक प्रकार से असम्भव ही है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह पक्का वाह्यमुखी ही क्यों न हो, अपने पारिवारिक परिवेश के पट, नेशनल म्यूजियम के द्वारों की भाँति जनता जनार्दन के लिए नहीं खोल सकता।'[115]

उपर्युक्त बाधाओं के रहते हुए भी आज की लेखिकाएँ मन्नू भण्डारी के इन शब्दों में यह दावा करती हैं 'वास्तविकता जिस रूप में हमारे सामने आती है, हम अपनी पूरी संवेदना के साथ उसी रूप में पाठक तक उसे पहुंचा देना चाहते हैं।'[116] ऐसी दशा में लेखक के लिए वे सारे अनुभव, भले ही दूसरों के द्वारा ही भोगे गए हों, उसके स्वानुभव बन जाते हैं। इसके लिए मन्नू भण्डारी ही कहती हैं— 'इतना जरूर कहूँगी कि दूसरों का अनुभव भी रचना के स्तर तक आते आते कहीं लेखक का अपना अनुभव हो जाता है। बात असल में यह है कि लेखकीय अनुभूति और सामाजिक अनुभूति का मिलन बिन्दु कहाँ होता है, यह रचना प्रक्रिया का ऐसा टेढ़ा मसला है कि इसका विश्लेषण सभव नहीं। पर इतना निश्चित है कि दूसरों की अनुभूतियाँ सम्वेदना की आँच में एक एक कर जब इतनी अपनी हो जाती है कि 'स्व' और 'पर' का भेद ही मिट जाता है, सृजन तभी सम्भव हो पाता।'[117]

वैयक्तिक और सामाजिक अनुभवो के इस आन्तरिक साम्य के कारण भोगा हुआ यथार्थ जैसी बात को केवल व्यक्ति से बाँध दिया जाना अधिक उपयुक्त नही कहा जा सकता है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए दीप्ति खण्डेलवाल कहती हैं 'मानवीय संवेदनाओ के प्रति व्यापक धरातल पर खडी वह कहती है—'लेखक केवल इस अर्थ मे एक असामान्य प्राणी होता है कि वह मानसिक धरातल पर विभिन्न कोणो से, अनेक रूपो मे जी सकता है। ये रूप, ये कोण, उसके अपने व्यक्तिगत जीवन के ही हो ऐसा कहाँ आवश्यक है? हर भोगा हुआ यथार्थ स्थूल स्तर पर उसका हो, न हो संवेदना के स्तर पर उसका अपना होता है। मृत्यु को जानने के लिए मरना जरूरी नही होता।'[118]

कृष्णा सोबती कहती हैं 'मैं किसी प्रेरणा या बाह्य दबाव से नही लिखती मैं अपने समूचे होने मे, रचकर, बैठकर जीने की तरह लिखती हू। उसी वक्त लिखती हूँ जब लिख डालने के लिए कोई चारा न रह जाये।'[119] शशिप्रभा शास्त्री भी जो कुछ उन्होने जीया है वही नही तो लगभग वही लिखने का दावा करते हुए कहती हैं 'सहे-भोगे देखे सुने को आब्जेक्टिव ढग से प्रस्तुत कर देना ही हर लेखक का धर्म होता है मैं इसका अपवाद नही हूँ। झूठमूठ बनाकर लिखना बडा कष्टकर होता है।'[120]

इस प्रकार ये लेखिकाएँ भोगा हुआ यथार्थ के बारे मे स्पष्ट विचार रखती हैं। इनके विचार इस धारणा को पुष्ट करते है कि लेखक, चाहे वह नारी ही क्यो न हो चेतना के स्तर पर पहले घटनाओ, स्थितियो का भोग करता है तभी उसके द्वारा कुछ श्रेष्ठ लिखा जा सकता है।

यथार्थ चित्रण और 'बोल्ड लेखन'

'बोल्ड लेखन' की बात भी यथार्थ की अभिव्यक्ति के कारण नारियो के लेखन मे जुडी हुई है। बोल्ड होकर लिखना उसकी प्रसिद्धि से प्रत्यक्ष जुडा हुआ है क्योकि इस कोटि के लेखन की अपेक्षाएँ शील से आबद्ध नारी से नही की जा सकती है। लेखिकाओ ने जहाँ भी नारी की सीमाओ का उल्लघन किया है वही उनको एक साथ सराहा या दुरकारा गया है। नारी का अपनी लक्ष्मण रेखाओ को पार कर पाना आसान नहीं है। यही कारण है कि इस सम्बन्ध मे लेखिकाओ के दो वर्ग हैं।

पहले वर्ग की लेखिकाएँ बोल्ड लेखन को पसन्द नही करती हैं। नारी की मर्यादाओ मे रहने की हिमायत करते हुए शिवानी स्वय पाठको की एतद् विषयक दुर्बलता को प्रस्तुत करते हुए कहती हैं 'आज का पाठक भी कुछ अश मे, उसी सधे पियक्कड सा बन गया है जो विदशी आसव को तो चुटकियो मे पहचान लेता है पर सादे पानी का स्वाद भूल चुका है। कामू' सार्त्र' का अपनी श्वास प्रश्वास के साथ जय जय

घोप करने वाले प्रेमचन्द, शरत यहाँ तक कि रवीन्द्रनाथ का स्वाद भी भूल चुके हैं या भूलना चाहते हैं।'[121]

दूसरी ओर लेखिकाओं का वह वर्ग भी है जो 'बोल्डनेस' को सप्रयास अपनाती हैं। कृष्णा अग्निहोत्री कहती हैं 'मुझे तो निडरता से लिखने में मजा आता है। लोग कोसें, गाली दें या कुछ भी कह पर जो महसूस करती हूँ उसे ईमानदारी से अभिव्यक्त कर देती हूँ।'[122] लक्ष्मण रेखाओं के उल्लंघन के बारे में दीप्ति खण्डेलवाल कहती हैं 'मुझे 'बोल्ड' लेखन के लिए सराहा भी गया है आलोचित भी किया गया है। स्त्री होने के कारण कदाचित मुझे उन लक्ष्मण रेखाओं का उल्लंघन निषिद्ध था जो हमारी मान्यताएँ रहती आई हैं। लेकिन मैंने लक्ष्मण रेखाओं को लांघा है, इसलिए कि स्त्री होने के साथ मैं एक मानवी भी हूँ। मानवीय चेतना अपनी पूरी तीव्रता एवं परिपूर्णता के साथ मेरे वक्ष में उसी तरह धड़कती है जैसे किसी पुरुष के वक्ष में।'[123]

बोल्डनैस की अनिवार्यता किन्तु कई बार लेखिकाओं को भ्रमित भी कर देती है। इस कारण उन्हें प्रायः सामाजिक प्रताडनाएँ भी झेलनी पड़ती हैं। इस अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर निरुपमा सेवती इन शब्दों में व्यक्त करती हैं 'तब पता चला कि लेखिका अगर कोई बोल्ड चीज लिखेगी, तो फब्तियां और प्रश्नों की बौछार झेलने का जोखिम जरूर सिर पर टंगा रहेगा।'[124]

ऐसे अवांछित प्रसंगों से घबरा कर तथा मिथ्या यश के लिए अपनाई गई बोल्डनैस की वास्तविकता जान लेने पर शशिप्रभा शास्त्री कहती हैं 'अब मुझे कुछ भी बोल्ड नहीं लगता सब कुछ साधारण ही लगता है।[125]

बोल्ड लेखन के संदर्भ में यह भी विचारणीय है कि सभी क्षेत्रों में इन्होंने निडरता का प्रदर्शन नहीं किया है। सिर्फ यौन सम्बन्धों के खुले चित्रण को ही उन्होंने बोल्ड लेखन का नाम दे दिया है। जीवन के सभी क्षेत्रों में ऐसा नहीं किया जाने से बोल्डनैस भी इनके लिए संकुचित होकर रह गई है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विचार विश्लेषण के आधार पर लेखिकाओं के समन्वित व्यक्तित्व को रूपायित किया जा सकता है। यद्यपि लेखिकाओं के अपने स्वतंत्र विचार, पूर्व धारणाएँ, संस्कार, मान्यताएँ पूरी तरह से एक नहीं हैं तथापि नारी होने के नाते इनके चिन्तन की दिशा एक ही है और वह है पीड़ित नारी की पीड़ा की मुखर अभिव्यक्ति। स्वाभाविक है कि इनका समन्वित व्यक्तित्व उसी आधारभूत चिन्ता-धारा से परिचालित है। यहाँ इनके उस व्यक्तित्व का अभिज्ञान इन बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है—

1 अधिकांश लेखिकाओं का बाल्यकाल एवं प्रारम्भिक जीवन सम्पन्न अथवा उच्च मध्यवर्गीय परिवेश में व्यतीत हुआ है। इस कारण इन्हें प्रत्यक्ष अर्थाभाव के विशद संस्कार प्रायः प्राप्त नहीं हो सके हैं।

2 आज की सभी लेखिकाएँ उच्च शिक्षा प्राप्त हैं इस कारण स्थितियों के अंतर्विरोधों, समस्याओं के मूल कारणों को देख, समझ और अपने ढंग से विश्लेषित करने में समर्थ हैं। इनका लेखन इनकी शैक्षणिक योग्यताओं का प्रत्यक्ष सम्बन्ध प्राप्त किए हुए है।

3 अधिकांश लेखिकाएँ आर्थिक स्वावलम्बिता को प्राप्त हैं। इस कारण एक ओर आत्मपोषी स्वतन्त्र व्यक्तित्व का पोषण कर रही हैं दूसरी ओर घर और बाहर दोनों क्षेत्रों की कठिनाइयों में नारी जीवन के सत्य का वास्तविक अनुभव रखती हैं। आर्थिक बातों के लिए किसी पर निर्भर न होने में परमुखापेक्षी नारी चिन्तना की संकीर्णता से मुक्त है।

4 लेखन के स्तर पर समृद्धता भी इनके व्यक्तित्व की अन्य विशेषता है। इतर विधाओं में प्रतिभा के प्रदर्शन करते हुए भी मुख्यतः इनकी लेखनी कथा साहित्य लेखन में ही विशेष प्रवीणता अर्जित हुए है। यह इनकी इस योग्यता को प्रमाणित करता है कि लेखिकाएँ व्यक्ति और जीवन (जो कि उपन्यासों के आधारभूत वर्ण्य विषय हैं) के चित्रण में पूर्ण समर्थ हैं।

5 इनकी जीवन दृष्टि का मुख्य आधार विद्रोह भावना है। उस सामाजिक चिंतना के प्रति प्रबल विद्रोह का भाव इनमें अत्यंत मुखर है जो नारी के प्रति असहिष्णु और निर्मम है जबकि पुरुषों के प्रति सदय रहकर सुविधाओं का सर्जन करती रहती है। यह विद्रोह इनके चिंतन और लेखन दोनों में स्पष्ट परिलक्षित है।

6 प्रत्यक्ष परिलक्षित विपुल प्रमाणों के कारण विवाह की सनातन प्रतिष्ठापना को ये अब अर्थहीन मानती हैं। ये विवाह को आवश्यक तो मानती हैं किन्तु असमायोजन की दशा में तलाक की सुविधा भी चाहती हैं। आज भी विवाह को लेकर नारी को स्वतन्त्रता न प्राप्त होने का इन्हें क्षोभ भी है। ये अन्तर्जातीय विवाह को न केवल अनिवार्य मानती हैं वरन् इसके द्वारा ही विवाह सम्बन्धी सारी कठिनाइयों का समाधान भी पाती हैं। कुछ लेखिकाओं ने स्वयं भी प्रेम विवाह कर अपने आत्म निर्णय को प्रमाणित किया है।

7 ऊपरी तौर पर तलाक की समर्थिका होकर भी ये उसके दुष्परिणामों से आतंकित भी हैं। तलाक शुदा नारी की सामाजिक लाछनाओं और समझौता करने की विवशताओं को भी ये अपने चिंतन का मुख्य आधार बनाए हुए हैं।

8 प्रेम के बने बनाये फ्रेम को तोडने के लिए उद्यत दिखाई देती हैं। फिर भी नारी की प्रेमजनित दुर्बलताओ से सम्पूर्णत मुक्त नही हो पाई है।

9 सेक्स के चिंतन को लेकर इन्होंने सनातन भारतीय नारी के संस्कारो को तोडा है। यौन सम्बन्धो का उन्मुक्त चित्रण करने मे इन्होंने संकोच नही किया है। पत्नी के विवाह पूर्व के और विवाहेतर यौन सम्बन्धो को ये अवैध नही मानती है। इस सम्बन्ध मे इन्हे पुरुषो से यह शिकायत है कि वे स्वयं तो उन्मुक्त यौन सम्बन्धो के लिए लालायित रहते हैं किन्तु अपनी पत्नी को सनातन पतिव्रत धर्म का अनुपालित करते देखना चाहते है।

10 आज के वैज्ञानिक युग मे भी प्राचीन, रूढ़िबद्ध नैतिक मूल्यों के पोषण का ये विरोध करती हैं। इसी कारण नवबोध के प्रकाश के प्रति अपने प्रबल विश्वास को प्रदर्शित करने मे सकोच नही करती हैं। परिवर्तित नैतिकता की इनकी कसौटी यह है कि कोई भी व्यक्ति अपनी कथनी और करनी म कितना साम्य रखता है। बातो मे नैतिकता की दुहाई देकर भी अनैतिक आचरण करने वाले व्यक्ति से इन्हे तीव्र घृणा है। यद्यपि इस सम्बन्ध मे यह भी विचार रखती है कि ऐसा चिंतन देश की वर्तमान अराजक दशा मे कोरा आदर्शवाद है तथापि यह विश्वास अपने मे बनाए हुए हैं कि आधुनिक बनने के लिए नारी मे जितनी सामर्थ्य है उतनी पुरुष मे नही है। इस कारण पुरुषो की अपेक्षा नारियाँ खुद को बदलने की अपेक्षाकृत अधिक क्षमताएँ रखती हैं।

11 लेखिका के रूप मे परिवार के प्रति चिंतन ठीक वही है जो सामान्य जीवन मे पुरुषो का दिखाई देता है। अर्थात् परिवार को ये उलझनो का केन्द्र मानती है। इन सारे झंझटो मे रहकर लेखन कार्य कर पाना दूभर महसूसती है। पारिवारिक जीवन मे पति की असहयोग पूर्ण भूमिका को ही इन समस्याओ का मूल कारण मानती है। ये महसूस करती हैं कि दायित्वहीन आचरण के कारण ही पुरुष नारी के लिए गृहस्थी के झंझटों को बढाकर उन्हे कठिनाइयो मे डालते रहते है। अपवाद रूप से कुछ लेखिकाएँ पति की सहयोगिनी भूमिका को देखकर परिवार के प्रति ऐसे विचार नही रखती हैं। जबकि कुछ लेखिकाएँ इस सीमा तक पति की पारिवारिक भूमिका से असन्तुष्ट हैं कि उनके कारण अपने लेखक व्यक्तित्व की पर्याप्त हानि होते देखना इन्हे असह्य हो जाता है। कुछ लेखिकाएँ यह महसूस करती हैं कि उनको पारिवारिक दायित्वो का निर्वाह इतने निर्मम भाव से अपेक्षित है कि इस कारण उनका अपना लेखक व्यक्तित्व निरन्तर बाधित रहता है। इस कारण वे तनाव से इन्कार भी नही करती है।

12 धर्म व जातीय सकीर्णताओ के प्रति भी इनके चिंतन मे बदली हुई मान्यताएँ दिखाई देती है। ईश्वर के प्रति प्रबल आस्था रखने वाली लेखिकाएँ भी हैं तो धर्म के रूढिग्रस्त स्वरूप को नकारने वाले चिंतन की पक्षधर भी हैं। फिर भी नारी की सघर्षशीलता के उपोषण का भाव इनको धर्म और समाज की सनातन परिभाषाओ को बदलने के लिए प्रेरित करता दिखलाई देता है।

13 फैशन को ये पसन्द नही करती है जीवन मे मूलत सादगी पसद है। आधुनिकता के रूप म इन्होने अपनी नायिकाओ की जो परिकल्पना की है वह वैचारिक धरातल पर आधुनिक होना है केवल फैशन के नाम पर आधुनिक होना नही है। यह चिंतन इनके प्रत्यक्ष व्यक्तित्व का भी अनिवार्य अग है।

14 इनका नारी चिंतन नारी पर होने अत्याचारो पर केन्द्रित है। इनकी यह मान्यता है कि अब वह समय आ गया है कि पुरुष केन्द्रित सोचो-आचरणो का छोड कर नारी को उनका अनुवर्ती न बनाते हुए उसे उसकी समग्रता और विविधता म देखा जाना चाहिए। नौकरी पेशा नारी की कठिनाइयो के प्रति भी ऐसी ही चिन्ता धारा को लेकर ये समर्पित हैं। अपनी लेखनी को सशक्त माध्यम बनाकर नारी की जुझारू चेतना को अमिट सम्बल बनाने के लिए सचेष्ट हैं।

15 पुरुषो के दायित्वहीन आचरण से इन्हे अनेक शिकायतें है। नारी की समता म उन्हे प्राप्त सुविधाओ को लेकर इनम तीव्र गुस्सा है। इसी कारण पुरुषों के प्रति एक प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता की भावना इनके चिन्तन म परिलक्षित है। पुरुषो के आत्म पूर्ण आचरणो एव सकीर्ण विचारो के विरुद्ध आवाज उठाना अपना कर्तव्य मानती हैं। इस भाँति इनका चिन्तन रूढ सामाजिकता और पुरुषो की विशिष्ट सुविधा भोगिता के विरुद्ध दोहरी लडाई लडने की ओर अग्रसर दिखाई देता है।

16 रचना कर्म को ये अत्यत गम्भीरता स लेती है और बाहर के साधारण की अपेक्षा भीतर के असाधारण के अकन की पक्षधर है। अपनी आदर्श मण्डित लखनी के बावजूद यथार्थ के चित्रण की इच्छाएँ पालती हैं। इनका लेखन एक प्रकार की आत्मतल्लीनता की बानगी देता है इस कारण ये अपने पात्रो मे निजता का विसर्जन तक कर देती हैं। भोगे हुए यथार्थ के चित्रण म नारी की कठिनाइयो को महसूस करते हुए भी साहसपूर्वक उसकी अभिव्यक्ति म विशेष अभिरुचि रखती हैं। यौन चित्रण को छोडकर इतर जीवन प्रसगो म 'बोल्ड' न होकर भी 'बोल्डनैस' की हिमायती है। यद्यपि इस बात को लेकर स्वय लेखिकाओ मे ही पर्याप्त मतभेद है। नारी की लक्ष्मण रेखाओ को उलाघना इनके सोच का चिर काम्य आदर्श है।

(कुल मिलाकर इनके विचारो से जिस लेखिका के एक व्यक्तित्व की छवि उभर कर

सामने आती है वह उस पक्षी की स्थिति से मिलती जुलती है जो दीर्घकाल तक पिंजरे में बंद रहा हो और पहली बार आजाद किया गया हो। इस कारण इनमें खुले आकाश में मुक्त सांस लेने की खुशी भी है तो उस पिंजरे के प्रति मोह भी है जिसमें वह इतनी लम्बी अवधि तक बन्दी रहा था।)

सन्दर्भ

1. हिन्दी के स्वच्छन्दतावादी उपन्यास–कमल कुमारी चौहरी–पृ 392
2 गर्दिश के दिन–कृष्णा सोबती, सारिका अक्टूबर, 1973–पृ. 41
3 तिलानी-चौदह फेरे (भूमिका)–पृ 5
4 वही–पृ 5
5 आधुनिक युग की कविताएं–डा उमरा माथुर–पृ 225
6 वही–पृ 384
7. एक पुरुष एक नारी–पृ 80
8 हिन्दी लेखिकाओं की प्रतिनिधि कहानियां सम्पादक योगेन्द्र कुमार लल्ला, श्रीकृष्ण–पृ 111
9 मेरी रचना प्रक्रिया–ज्ञानोदय-अक्टूबर 1968–पृ.99
10 मेरी सृजन प्रक्रिया–ज्ञानोदय–नवम्बर, 1968 पृ 55
11 एकाकी पथ काटे में भट–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 4 मई, 1969 पृ 39
12 सेक्स और विवाह क्या ये अलग अलग चीजें हैं ?–साप्ता हिन्दु, 24 सितम्बर, 1971
13 पृ 22 पर द्रष्टव्य
14 सेक्स और विवाह क्या ये अलग अलग चीजें है ?–परिचर्चा-साप्ता हिन्दु, 24 सितम्बर 1971
15 वही
16 वही
17 दिनमान-6 जुलाई, 1975
18 अन्तर्जातीय विवाह प्रश्नों की परिधि में–परिचर्चा–साप्ता हिन्दु, 3 सितम्बर 1972
19 वही
20 वही
21 वही
22 सेक्स और विवाह क्या ये अलग-अलग चीजें है ? परिचर्चा-साप्ता. हिन्दु. 24 सितम्बर 1971
23 दिनमान 6–जुलाई, 1975
24. अपना साक्षात्कार कादम्बिनी अगस्त 1975 पृ 134
25 गर्दिश के दिन (आत्म रचना)–सारिका फरवरी 1976
26 एक कोई दूसरा (उषा प्रियम्वदा का कहानी संग्रह) की समीक्षा–ज्ञानोदय–अक्टूबर 1967
27 क्या लेखिकाओं के लेखन का दायरा सीमित है ?–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 11 मई 1975 पृ 39
28 सेक्स और विवाह क्या ये अलग अलग चीज है ?–साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 24 सितम्बर 1971

29. सेक्स और विवाह क्या ये अलग-अलग चीजें हैं ?—साप्ता. हिन्दु, 24 सितम्बर, 1971
30. मेरी सृजन प्रक्रिया-ज्ञानोदय दिसम्बर, 1968 पृ. 67
31. शिवानी के कहानी संग्रह 'अपराधिनी' की समीक्षा से उद्धृत-समीक्षा-जुलाई 1971-पृ 20
32 आलोचना (35-36)—जुलाई से दिसम्बर, 1975-पृ 45
33. क्या लेखिकाओं का लेखन दायरा सीमित है ?—साप्ताहिक हिन्दुस्तान-11 मई 1975 पृ 39
34 गर्दिश के दिन (आत्म रचना)—सारिका—अक्टूबर, 1973 42
35. वही
36. क्यों और क्यों नहीं—कादम्बिनी—नवम्बर 1974 पृ. 72
37. गर्दिश के दिन (आत्म रचना)—सारिका-फरवरी 1976 पृ 56
38 कथा समारोह का विवरण-ज्ञानोदय फरवरी—1966 पृ 185
39 आत्म साक्षात्कार कादम्बिनी-अगस्त 1975 पृ 136
40 क्यों और क्यों नहीं ?-कादम्बिनी—नवम्बर 1974 पृ 72
41. मेरी सृजन प्रक्रिया-ज्ञानोदय, नवम्बर 1968 पृ 55
42. वही
43 वही
44 क्यों और क्यों नहीं ?—कादम्बिनी—नवम्बर 1974 पृ 72
45 वही
46 प्रश्नों के सात घेरे और आठ लेखिकाएँ (परिचर्चा प्रभु जोशी) साप्ता. हिन्दु -अगस्त 1973
47. उसके हिस्से की धूप-पृ 188
48 वही पृ 189
49 वही
50 एक इन्च मुस्कान-अपना अपना वक्तव्य में मन्नू भण्डारी का वक्तव्य पृ 348
51 मेरी रचना प्रक्रिया-ज्ञानोदय दिसम्बर 1968 पृ 87
52 वही
53. मेरी रचना प्रक्रिया-ज्ञानोदय-अक्टूबर 1968 पृ 39
54 एक नारी अनेक सवाल (परिचर्चा)-साप्ताहिक हिन्दुस्तान- 17 दिसम्बर 1972
55 सन्नाटा शहर में या साहित्य में (चौरास का साहित्य वातावरण एवं सरोकार-राम प्रकाश त्रिपाठी-साप्ताहिक हिन्दुस्तान-28 जून 1975 में लेखिका के विचार
56 अनगिनी कहानियों की कहानी (मेरे पारिवारिक परिवेश)-साप्ताहिक हिन्दुस्तान-3 अगस्त 1969 पृ 39
57 गर्दिश के दिन (आत्मरचना) सारिका-फरवरी 1976 पृ 54
58 नारी लेखन और प्रकाशन-साप्ताहिक हिन्दुस्तान-15 जनवरी 1967 पृ. 39
59 प्रश्नों के सात घेरे और आठ लेखिकाएँ (परिचर्चा प्रभु जोशी)—साप्ता हिन्दु 1 अगस्त 1973
60 अपना अपना वक्तव्य-एक इन्च मुस्कान पृ 339-40
61 वही पृ 333
62 वही पृ 347 (मन्नू भण्डारी का अपना वक्तव्य)
63 प्रश्नों के सात घेरे और आठ लेखिकाएँ (परिचर्चा प्रभु जोशी) साप्ता हिन्दु, 1 अगस्त 1973
64 वही

65 क्या लेखिकाओं का लेखन दायरा सीमित है ? (परिचर्चा-नीलम कुलश्रेष्ठ)-साप्ता हि दु-
1 मार्च 1975 पृ 39
66 अपना अपना वक्तव्य-एक इन्च मुस्कान-पृ 350
67 आत्म साक्षात्कार-कादम्बिनी-अगस्त, 1975 पृ 137
68 वही
69 वही पृ 139
70. क्यों और क्यों नहीं ?-कादम्बिनी-नवम्बर 1974 पृ 72
71 अन्तर्जातीय विवाह प्रश्ना की परिधि में (परिचर्चा)-साप्ता हिन्दु, 3 सितम्बर 1972
72 दिनमान 6 जुलाई 1975 पृ 39
73 आत्म साक्षात्कार-कादम्बिनी-अगस्त 1975 पृ 137
74 गर्दिश के दिन-सारिका-फरवरी 1976 पृ 57
75 एक पुरुष एक नारी-पृ 79
76 हिन्दी लघु उपन्यास-पृ 178
77 गर्दिश के दिन-सारिका-अक्तूबर 1973
78 आत्म साक्षात्कार-कादम्बिनी अगस्त1975 पृ 139
79 दिनमान 6-जुलाई 1975
80 मेरी रचना प्रक्रिया-ज्ञानोदय-अक्तूबर 1968 पृ 101
81 कथा समारोह (विवरण)-ज्ञानोदय-फरवरी 1966 पृ 185
82 साहित्य मे स्वतन्त्र आजीविका अर्जक नारी-ज्ञानोदय-फरवरी 1968
83 वही
84 मेरी रचना प्रक्रिया-ज्ञानोदय-अक्तूबर 1968 पृ 101
85 दिनमान-6 जुलाई 1975 पृ 38
86 वही पृ 38
87 वही प 39
88 वही
89 रजनी पनिकर (मेरी रचना प्रक्रिया)-ज्ञानोदय-अक्तूबर 1968 पृ 100
90 नारी मुक्ति आन्दोलन एक लेखिका की दृष्टि में-साप्ताहिक हिन्दुस्तान-11 मार्च 1973
91 मेरी रचना प्रक्रिया-ज्ञानोदय-नवम्बर 1968
92 वही
93, गर्दिश के दिन-सारिका फरवरी 1976 प. 55
94 क्यों और क्यों नहीं ?-कादम्बिनी-नवम्बर 1974 पृ. 69
95 आत्म साक्षात्कार-कादम्बिनी-अगस्त 1975
96 मेरी रचना प्रक्रिया ज्ञानोदय-अक्तूबर 1968
97 अर्धांगिनी (कहानी संग्रह) की भूमिका से उद्धृत-पृ. 8
98 मेरी रचना प्रक्रिया ज्ञानोदय-नवम्बर 1968 पृ 55
99 कथा समारोह का विवरण-ज्ञानोदय फरवरी 1966
100 गर्दिश के दिन-सारिका-फरवरी 1976
101, एक इन्च मुस्कान अपना अपना वक्तव्य-पृ 350

102 एक इञ्च मुस्कान–अपना अपना वक्तव्य पृ 340

103 मेरी सृजन प्रक्रिया–ज्ञानोदय दिसम्बर 1968

104 पैंसठ के उपन्यास ज्ञानोदय अगस्त 1966

105 दरोगी नहीं राधिका–पृ 61

106 हिन्दी लघु उपन्यास–पृ 177

107 दिनमान 6 जुलाई 1975 पृ 36

108 प्रश्नों के सात फेरे और आठ लेखिकाएं साप्ता हिन्दु, 1 अप्रैल 1973

109 वही

110 अजन्मी कहानियों की कहानी (मेरा पारिवारिक परिवेश)–साप्ता हिन्दु 3 अगस्त 1969

111 दिनमान 6 जुलाई 1975

112 बतौर नारी अपनी विधा मे कितनी स्वतन्त्र हू धर्मयुग 3 अगस्त 1975

113 प्रश्नों के सात फेरे और आठ लेखिकाएं साप्ता हिन्दु 1 अप्रैल 1973

114 क्या लेखिकाओ का लेखन दायरा सीमित है ?–साप्ता हिन्दु 11 मई 1975

115 अजन्मी कहानियो की कहानी साप्ता हिन्दु 3 अगस्त 1969 पृ 39

116 क्यो और क्यो नही ? -कादम्बिनी-नवम्बर 1974

117 वही

118 गर्दिश के दिन-सारिका–फरवरी 1976

119 गर्दिश के दिन सारिका–अक्तूबर 1975 पृ 42

120 आत्म साक्षात्कार कादम्बिनी अगस्त 1975 पृ 140

121 मेरी सृजन प्रक्रिया ज्ञानोदय दिसम्बर 1968 पृ 67

122 क्या लेखिकाओ का लेखन दायरा सीमित है ?–साप्ता हिन्दु 11 मई 1975

123 वही

124 बतौर नारी मैं अपनी विधा म कितनी स्वतन्त्र हू धर्मयुग 3 अगस्त 1975

125 आत्म–साक्षात्कार–कादम्बिनी अगस्त 1975

पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से चित्रित पुरुष-पात्र

परिवार मनुष्य की अनिवार्य सामाजिक आवश्यकता है। परिवार में ही वह संस्कारों, शिष्टाचारों का प्रारम्भिक पाठ पढ़ता है। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में परिवार का फैलाव सिमिट कर पति-पत्नी एवं संतति में ही परिसीमित हो गया है। यही कारण है कि आज के परिवार में पिता एवं पति की ही भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गई है। महिलाओं के इन उपन्यासों में भी इन्हीं की भूमिका का विस्तारपूर्वक वर्णित किया गया है। भाई, चाचा, दादा, मामा, नाना, बहनोई आदि की भूमिका पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से, अपवादों को छोड़कर, अब नारी के जीवन में उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं रही है। इन उपन्यासों में भी अतएव पिता एवं पति को छोड़कर अन्य पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से उपस्थित पुरुष पात्रों का चित्रण विस्तारपूर्वक नहीं हुआ है।

परिवार में पुरुषों के अनेक रूप

परिवार में ही मनुष्य संसार की सर्व प्रथम छवि पाता है उसके मध्य रहते हुए शिष्टता एवं संस्कारों का प्रारम्भिक पाठ पढ़ता है। वर्तमान जीवन पद्धति में संयुक्त परिवार का ह्रास हो गया है और परिवार की इकाई अब पति पत्नी और बच्चों तक ही सीमित हो गई है। यही कारण है कि इन उपन्यासों में भी पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर पति एवं पिता का ही वर्णन सर्वाधिक हुआ है। पारिवारिक दृष्टि से अन्य सम्बन्धियों का चित्रण अधिक विस्तार से नहीं हुआ है। प्रसंगानुसार फिर भी कुछ पुरुष पात्र इन उपन्यासों में उपस्थित हुए हैं। उन सबके आचरणगत अनेक रूप यहाँ विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

पिता के रूप में पुरुष

उपन्यासों में पिता के अनेक रूप दृष्टिगत होते हैं। उसका पहला रूप संतानों की हित कामना करने वाले एवं पारिवारिक उत्तरदायित्व को सहर्ष वहन करने वाले पिता के रूप को हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है। ऐसे पिता का व्यक्तित्व परिवार के सदस्यों पर भव्यता से छाया हुआ दृष्टिगत होता है। इस दृष्टि से 'रुकोगी नहीं राधिका' में राधिका का पिता, 'नरक दर नरक' में उषा का पिता 'सोनाली दी' के पापा आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

राधिका पर उसके पिता के व्यक्तित्व की गहरी छाप है। पिता के औदार्ययुक्त व्यक्तित्व से वह इतनी गहराई से जुड़ी हुई है कि स्थितियों में तनिक परिवर्तन आते ही वह पिता के प्रति विद्रोह कर देती है। विधुर जीवन की यातना से मुक्ति के लिए जब पापा दूसरा विवाह कर लेते हैं तो वह उन्हें माफ नहीं कर पाती। अपने से अधिक उम्र के विदेशी पुरुष डैन के साथ विदेश चली जाती है। पिता के व्यक्तित्व के प्रभाववश में निर्मित राधिका की मानसिकता के सम्बन्ध में डैन कहता है कि 'तुम प्रत्यक्ष में

'पिता' अपनी पुत्री से कहता है 'बेटी तेरे बिना मैं तो बिल्कुल अपाहिज हो गया। अपाहिज तो पहले ही था, अब तो बिल्कुल टूट गया।'[7] 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' में सुषमा के पिता की दशा भी ऐसी ही है। सीमित पेंशन के कारण वे परिवार का भार वहन नहीं कर पाते, पुत्री पर अवलम्बित होने को विवश होते हैं। पुत्री से कहते हैं मैं तो तुम्हारे लिए कुछ भी न कर सका।[8] 'मायापुरी' में सतीश पिता व 'कृष्णकली' उपन्यास के रेवतीशरण भी इसी कोटि के पिता कहे जा सकते हैं।

पिता का तीसरा रूप परम्परानुगतता, जातीयता, धार्मिकता आदि के समर्थक पिता का है। मित्रो मरजानी का गुरुदास परम्पराओं का समर्थक है और पारिवारिक मर्यादा को सबसे अधिक महत्व देता है। 'यह कलजुग है, कलजुग! आँख का पानी उतर गया तो फिर क्या घर घराने की इज्जत और क्या लोक मरजाद।'[9] 'श्मशान चम्पा' के रामदत्त शास्त्री, 'रेत की मछली' में नायिका कुंतल के पिता 'उत्सर्ग' में नायक के पिता आदि जातीयता को एवं भारतीय परम्पराओं को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। अपनी मान्यताओं पर दृढ़ता से टिके रहने के अलावा इनमें अपने बच्चों पर अपनी मान्यताओं को बलात् आरोपित करने की प्रवृत्ति भी है। जहाँ कहीं इनकी इच्छाओं का उल्लंघन होता है ये हठवादिता के आधार पर बच्चों को उन्हें स्वीकार करने के लिए विवश करते हैं।

दूसरिया 'रेत की मछली', 'सोनाली दी' 'सूनी नदी का पुल' उपन्यासों के पिता अपनी पुत्रियों को विवाह के सम्बन्ध में उनके आत्म निर्णय का विरोध करते हैं। पुत्रियों को दण्डित करने, घर में बन्द करने या निन्दित करने में संकोच नहीं करते। बच्चों के प्रति प्रेम का अतिरेक ही उन्हें ऐसा करने के लिए विवश करता है।

पिता का चौथा रूप उसका अत्यन्त घृणित रूप कहा जा सकता है। अपने और अपने परिवार के भरण पोषण की सुविधा के लिए माना ऐसे पिता पुत्रियों को बेच देते हैं। 'मुझे माफ करना' में नायिका का पिता पैसा के कारण, अधेड़ तथा एकाधिक पत्नियों के पति पुरुष के साथ, अपनी नवयौवना पुत्री का विवाह कर देता है। 'व सोच रहे थे कि उनकी बेटी का शापग्रस्त मन शीघ्र ही धन कुबेर की उस स्वर्ण नगरी में पहुँच भाग्य की ठोकर से मुक्त होकर यक्षपुरी का राजा बन जाएगा, और ये निर्मूल भय निर्वासित हो जाएंगे। खुशी के मारे उसकी नाड़ियाँ फटने लगीं, और सात पीढ़ियों की नियति, आँख खुलने पर स्वप्न की तरह बदल जाएगी।[10] नायिका के पिता का लोभी मन कल्पना की आँखों से, परिन्दे की तरह उड़कर उस सान की सलाखों वाले बन्द दरवाजे पर पहुँच कर वहीं मंडरा रहा था। वे मणि मुक्ताओं से भरे हुए, अगाध समुद्र के ऊपर, तारा खचित आकाश में विचरण करते और मुट्ठियाँ भर-भर कर धन से खेलते।'[11] 'पतझड़ की आवाज' में नायिका का पिता

पुत्री को नौकरी करने के लिए विवश करता है किन्तु उसकी असुविधाओ की ओर कुछ भी ध्यान नही देता। 'बेघर' मे भी सजीवनी का पिता पुत्री के विवाह की जिम्मेदारी को कमाऊ पुत्र पर थोप देता है। पुत्री की कमाई पर घर के सारे खर्च चलने की चिन्ता नही करता।

पिता के इन रूपो से परे, अन्य उपन्यासो मे पिता का सामान्य रूप प्रकट हुआ है। ऐसे पिता परिवार की सुख-सुविधाओ मे सचेष्ट रहने, पुत्री के लिए सुयोग्य वर ढूँढने, समुचित दहेज की व्यवस्था करने, पुत्रियो की शिक्षा आदि की चिन्ता करने वाले पिता के स्वरूप को प्रकट करते हैं। *'कृष्णकली'* के पाण्डेजी, *'मायापुरी'* के तिवारी जी, *'बैजा'* के शास्त्री जी, *'श्मशानचम्पा'* के रामदत्त जी इत्यादि इसी कोटि के आचरणकर्त्ता पिता कहे जा सकते हैं।

इस प्रकार इन उपन्यासो मे पारिवारिक परिवेश मे प्रकट होने वाले पिता के अनेक रूप दृष्टिगत होते है। कही उसका गरिमामय उदात्त रूप दृष्टिगत होता है तो कही उसका निकृष्ट रूप। कही वह पुत्रियो की हित कामना मे सचेष्ट है तो कही उन पर अंकुश लाता हुआ दृष्टिगत होता है।

पुत्र के रूप मे पुरुष

इन उपन्यासो मे पुत्र के रूप म पुरुष पात्र अधिक विस्तार नहीं पा सके हैं। फिर भी पुत्र रूप मे पुरुष की दो भूमिकाएँ दिखाई देती है। उसका पहला रूप आदर्शपुत्र की छवि को प्रस्तुत करता है जो आज्ञाकारी है और पारिवारिक जीवन मे अपने दायित्वो का निर्वाह भली भाँति करता है। पुत्र का दूसरा रूप निरा दायित्वहीन आचरण करने वाले पुरुष की छवि को प्रस्तुत करता है। ऐसा पुत्र कही कही अपने दम्भ को भी प्रदर्शित करता हुआ देखा जा सकता है। 'वह तीसरा' का सदीप अपने गरीब पिता की अवमानना करते हुए घमण्ड म कहता है 'माई फादर वाज ए फेलियोर, आई एम सक्सेज।'

भाई के रूप मे पुरुष

पुत्र रूप मे चित्रित पुरुष-पात्र ही परिवार मे भाई की भूमिका को उजागर करते हैं। 'रुकोगी नही राधिका' का भाई पैसे वाला होते हुए भी राधिका को सिर्फ उसी सीमा तक साथ रखना चाहता है, जिस सीमा तक वह उसके आदेशो का पालन करती रहती है। ज्यो ही राधिका अपने अह को सम्मान देती है वह उससे किनाराकशी कर लेता है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' म सुषमा के भाई पूरी तरह बहिन पर अवलम्बित हैं। 'पानी की दीवार' का केशव आधुनिक रुचियो का भाई है जो बहिन आदि के साथ क्लब, पार्टियो, पिकनिक आदि मे जाने की अभिलाषा रखता है। 'सदर क साथी' मे नायिका का भाई अपनी जिम्मेदारियो का पूरा पूरा निर्वाह

करता है। 'सूखी नदी का पुल' का मोहन वहिन के पराए पुरुष के साथ भाग जाने पर उसे कभी माफ नही करता। वहिन के इस आचरण से नारियों पर से उसका विश्वास हट जाता है और वह आजीवन अविवाहित ही रहता है। 'मित्रो मरजानी' मे जहाँ छोटा भाई गुलजारीलाल पत्नी के कहने से साझे के व्यापार मे धोखा देता है वही बडे भाई बनवारीलाल और सरदारीलाल उसके इस आचरण से प्राप्त घाटे को चुपचाप झेल जाते हैं और अपने औदात्य को प्रकट करते हैं। दूसरी ओर 'बेघर' मे रमा के भाई पिता से इसलिए असन्तुष्ट हो जाते हैं कि उन्होंने जरूरत से ज्यादा दहेज देकर मुसीबत मोल ली है।

इस प्रकार भाई के रूप परिवार मे इस सम्बन्ध की दृष्टि से उपस्थित पुरुष के आचरण को प्रकट करते है। भाई की भूमिका मे उपस्थित पुरुष को लेखिकाओ ने शिष्टाचारी अहकारी, पलायनवादी, उत्तरदायित्वो का वहन करने वाला इत्यादि रूपो म चित्रित कर अपनी दृष्टि को प्रकट किया है।

श्वसुर के रूप में पुरुष

श्वसुर रूप मे चित्रित पुरुष पात्रों मे अनेकरूपता का नितान्त अभाव है। अधिकाश श्वसुर साधन सम्पन्न है और पुत्री की सुविधा के लिए दामाद का हितचितन अपना कर्त्तव्य समझते हैं। 'कृष्णकली' के पाण्डेजी, 'मायापुरी' के तिवारी जी अपने दामाद की नियुक्तियो म अपने साधनो का समुचित उपयोग करते हैं। दामाद की पारिवारिक कठिनाईयो का हल करने म उनकी सहायता करते है।

पुत्रवधुओं के प्रति भी सामान्यत श्वसुर लोगो मे हित चितन का भाव है। 'रतिविलाप' म नायिका का श्वसुर पुत्र के पागल होकर मर जाने पर पुत्रवधू के प्रति अपने को दोषी मानता है। 'मत रो अनु तेरे आसू मैं देख नही पाता। मुझे और अपराधी मत बना बेटी। मैं जितनी जल्दी हो सकेगा तुझे इस घुटन भरे दूषित वातावरण से बाहर ले चलूँगा।'[12] 'मित्रो मरजानी' का गुरुदास परम्परा प्रेमी है। घर की बहुओ को पर्दे म रहते हुए उनके शिष्ट आचरण को देखना चाहता है। मित्रो को उस मर्यादा का उल्लघन करते देख क्षुब्ध हो जाता है। 'यह कलजुग है, कलजुग। आँख का पानी उतर गया तो फिर क्या घर-घराने की इज्जत और क्या लोक मरजाद?'[13] और उसे ऐसा करने क लिए विवश करता है। तो सुहागवन्ती को ऐसा करने देख गद्गद हो जाता है। 'सुहागवन्ती बेटी, तेरी सयानप का क्या मूल्य? तेरे सास ससुर ने तुझे पाने क लिए जरूर पिछले जन्म मे कोई अच्छा कर्म किया होगा।'[14]

इस प्रकार श्वसुर के रूप मे चित्रित पुरुष सामान्यत पिता के ही गरिमामय रूप को प्रकट करते है अपनी पुत्रियो का हित साधन और बहुओ के प्रति औदात्य का भाव इनकी विशिष्ट दशा का उद्घाटन करता है।

दामाद के रूप में पुरुष

दामाद के रूप में भी चित्रित पुरुषों की संख्या सीमित है। 'कृष्णकली' का दामोदर नौकरी से निकाल दिए जाने पर ससुराल में ही टिक जाता है। सालियों और सालों से अश्लील मजाक करता है। घर के सदस्यों के प्रति छींटाकशी करना, उद्दण्ड आचरण करना, किराएदार कृष्णकली के प्रति लोलुप दृष्टि प्रकट करना इसके स्वभाव के अंग हैं। इसी प्रकार प्रवीर का अन्य बहनोई भी ससुराल में विशेष लिबर्टी लेना चाहता है। 'ससुराल आये हैं हम लोग, यहाँ ऐश-आराम नहीं करेंगे तब भला कहाँ करेंगे ?[15]

दामाद के रूप में चित्रित पुरुषों ने सामान्यतः अपनी यौन एवं अर्थ सम्बन्धी कमजोरियों का ही प्रदर्शन किया है। 'ज्वालामुखी के गर्भ में', 'अनामा' उपन्यास के दामाद अपनी सालियों को यौन तुष्टि का साधन बनाते हैं। 'वह तीसरा' का सदीप श्वसुर से बहुत कुछ पाकर भी यह सोचता है कि उसे 'हनीमून' के लिए पर्याप्त पैसे नहीं दिए गए।

इस प्रकार दामाद के रूप में चित्रित पुरुष पात्रों के जितने रूप प्रकट हुए हैं वे उनकी दुर्बलता को एवं सकुचित मनोवृत्ति को प्रकट करते हैं। लेखिकाओं ने उनके आचरण का समर्थन नहीं किया है। किन्तु, प्रवीर जैसे दामाद भी इन उपन्यासों में चित्रित हुए हैं जिनमें न यौन दुर्बलता है न धन की प्यास। ऐसे दामादों का चित्रण कम हुआ है।

बहनोई के रूप में पुरुष

दामाद की ही भाँति बहनोई के रूप में उन्हीं पुरुष-पात्रों का सामान्य आचरण सदोष ही है। ऐसे पात्र पुरुष वर्ग की सामान्य दुर्बलताओं का ही उद्घाटन करते हैं। दूसरी ओर 'सागरपाखी' के स्वरूप आदर्श बहनोई है। स्वरूप विदेश में रहने वाली साली के आने पर अत्यन्त प्रसन्न होता है। उसके बच्चा में रम जाना है। उनकी समुचित आवभगत करता है। उसकी साली सुविधा अपने बहनोई के ऐसे आचरण से बहुत प्रभावित होती है। उनके प्रति अपने बहिन के आचरण से रुष्ट भी हो जाती है।[16] 'मुझे माफ करना' का सेठ यद्यपि अनेक विसंगतियों से युक्त है किन्तु अपनी साली नीना को पुत्री की तरह स्नेह देता है। 'बालो बेटी तुम्हें क्या चाहिए, मुझ से संकोच मत करो।'[17]

इस प्रकार बहनोई के दो रूप लेखिकाओं ने चित्रित किए हैं। इनका पहला रूप यौन दुर्बलताओं और अर्थलिप्सा की भावना को प्रकट करता है, यह लेखिकाओं की निन्दा का भाजन बना है। दूसरे रूप में चित्रित बहनोई आदर्श आचरणकर्ता हैं और उपन्यासों में सम्मान जनक ढंग से चित्रित किए गए हैं।

पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से चित्रित अन्य पुरुष

इन उपन्यासो मे कथानको के अंतर्गत पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि से अन्य पुरुष-पात्र भी चित्रित हुए है। यद्यपि इनका चित्रण गौण रूप मे ही हुआ है, ये कथानक को दूर तक प्रभावित भी नही करते, तथापि इनका चित्रण महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है। सम्बन्धो का निर्वाह एव परिवार मे पुरुष की भूमिका की सही जानकारी के लिए इनका भी अवलोकन करना अनिवार्य है।

मौसा के रूप मे चित्रित 'ज्वालामुखी के गर्भ मे' के मौसाजी प्रतिनिधि पुरुष-पात्र कहे जा सकते हैं। एक साधारण क्लर्क होने से पत्नी और पुत्र की आकाक्षाओ की पूर्ति नही कर पाते। 'घर मे बतलाने जैसी कोई बडी बात नही थी चिडिया मेढक कितना ही फूल जाय, बैल तो बनने से रहा। दफ्तर का बाबू हूँ प्रमोशन हो गया, तो बहुत से बहुत ओ एस बनूगा, और क्या ?'[18] रात-दिन भगवद्भजन मे व्यस्त रहते हैं और परिवार के बीच रहते हुए भी निर्लिप्त रहते है। नायिका के साथ इनकी पूरी सहानुभूति है और उसके साथ मित्रवत्-व्यवहार करते हैं।

'बात एक औरत की' मे चित्रित दादाजी और चाचा अपने ही घर की बच्चियो को केवल स्त्री रूप मे देखते हैं और नीच आचरण की पराकाष्ठा का प्रदर्शन करते हैं। वृद्ध दादाजी की कामातुरता उनका चरित्रहनन करती है, 'दादा अच्छे नही, कहानी सुनाते समय मुझे जबर्दस्ती गोदी मे बैठा लेते हैं। यह ठीक नही।'[19] अन्तकाल म उन्हे अपने किए के लिए क्षमा मागनी पडती है। उपन्यास का युवा चाचा रिश्ते की भतीजी के सौंदर्य का लोभी है। चोरी-छुपे उसे छोडने मे सकोच नही करते। 'क्या आप किसी स भी जबर्दस्ती प्रेम करने लगते हैं और चाचा होकर, भतीजी के लिए ऐसा वैसा सोचते कुत्सित नही होते।'[20] 'जुडे हुए पृष्ठ' के चाचाजी भी अपनी विधवा भतीजी को अपनी वासना का शिकार बनाने मे सकोच नही करते। 'मेरे वैधव्य दु ख स दुखी होकर सहानुभूति और सहारा देने वाले ये चाचाजी मुझे भतीजी कम खूबसूरत उनका गला भर आया जाने दो पुरुष का सयम बडा कमजोर होता है।'[21] 'कृष्णकली' मे रजनीकान्त भी अनाथ नवयुवतियो को अपनी स्कूल मे अध्यापिका नियुक्त करते हैं। उनके काका बनकर अभिभावक होने का नाटक करते हैं फिर उन्हे अपनी वासना का शिकार बनाते हैं। 'आहा रे काका बाबू मैं भी देखती हूँ कितने दिन भतीजी बनकर रहती हो, तुम जैसी बीसियो भतीजियाँ इसी कमरे मे शिकार हुई हैं।'[22]

'डार से बिछुरी' मे भानजी के प्रति मामाओ के निरकुश आचरण का चित्रण हुआ है। इनकी बहिन जब घर से भाग जाती है तब ये उस अपमान का बदला अपनी भानजी पर अत्याचार करके चुकाते हैं। लेखिकाओ के उपन्यासो मे दूसरी ओर

मामा का भोलाभाला और भानजी के प्रति स्नेहमय आचरणकर्ता के रूप में भी चित्रण हुआ है। 'मायापुरी' में शोभा के मामाजी भोले-भाले इन्सान के रूप में चित्रित हैं और अपनी भानजी की सहायता की यथासम्भव चेष्टा करते रहते हैं। आर्थिक दृष्टि से विपन्न होकर भी मरणासन्न भानजी को शरण देकर उसकी सहायता का प्रयास करते हैं। 'कृष्णकली' में वाणीराय के मामा अपनी गरीबी के कारण अनाथ भानजी के भरण-पोषण का भार नहीं उठा पाते। यही स्थिति 'एकोगी नहीं राधिका' में राधिका की भी है। राधिका से अतिशय प्रेम के कारण प्रवास से लौटने पर राधिका द्वारा सूचना न दिए जाने पर भी स्टेशन जाते हैं उसे घर ले आते हैं। आर्थिक दृष्टि से गरीब होते हुए भी अत्यन्त उत्साह से उसकी आवभगत करते हैं।

'प्रिया' उपन्यास में नाना के गरिमामय रूप का चित्रण हुआ है। जिन्दगी की सारी बाजी हार जाने पर भी वे पुत्री और नातिन के लिए जिन्दा रहते हैं और शारीरिक क्षमताओं के बावजूद चेष्टा कर उन्हें निरापद बनाने की असफल चेष्टा करते हैं।

'मित्रो मरजानी' में देवरों का आचरण अधिक खुलकर सामने आया है। मित्रो का पति सरदारीलाल अपनी भाभी का पूर्ण आदर करता है। भाभी के मन में भी उसके प्रति पर्याप्त पूज्य भाव है। 'सरदारी देवर देवता पुरुष है देवरानी।'[23] जबकि छोटा देवर गुलजारीलाल भाभी से अभद्रता से पेश आता है। भाभी के सामने अपनी पत्नी का पक्ष लेने में संकोच नहीं करता। 'वीरान रास्ते और झरने' का देवर अपने वृद्ध भाई की नववधू भाभी को ही यौन तृप्ति का शिकार बनाता है। बाध्य होकर जब उसे भाभी से ही शादी करनी पड़ती है तब वह उसे पीटता है, कमरे में बन्द रखता है। उसके बच्चों को अकारण दण्डित करता है।

इस प्रकार इन उपन्यासों में पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से अन्य पुरुष-पात्र भी चित्रित हुए हैं। इन सभी पुरुषों के दो रूप देखे जा सकते हैं। पहले प्रकार के वे पुरुष हैं जो गम्भीर व उत्तरदायित्व बोध से परिपूर्ण हैं। दूसरे वे पुरुष हैं जिनका आचरण स्वार्थवृत्ति, यौन दुर्बलता, पलायनवादिता से ओतप्रोत है। लेखिकाओं का झुकाव जहाँ पहले वर्ग के पुरुषों का समर्थन और गुणगान करने की ओर है तो दूसरे वर्ग के पुरुष उनकी निन्दा, अवमानना के भाजन बने हैं।

सारांश

पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से व सभी पुरुष पात्र रूप में इन उपन्यासों में देखे जा सकते हैं जो सचमुच किसी भी परिवार में हुआ करते हैं। पिता की महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण लेखिकाओं ने भी सामान्यतः उन्हीं को परिवार में प्राथमिकता प्रदान की है। परिवार में दृष्टिगत होने वाले अन्य सम्बन्धी भी प्रस्तुत हुए हैं। उनके आचरणगत अनेक रूप इन उपन्यासों में चित्रित हुए हैं। पिता के अनेक रूपों में

उनका गम्भीर, प्रभावशाली रूप, जो अपने बच्चों पर पूरी तरह छाया रहता है अधिक विस्तार से वर्णित हुआ है। पिता के अन्य रूपों में विवश पिता, परम्परानुगत विचारों के समर्थक पिता, उत्तरदायित्वों से पलायन करने वाले अथवा पुत्रियों को बेच देने वाले पिता एवं परिवार के सदस्यों की सुख-सुविधा के लिए सचेष्ट पिता दृष्टिगत होते हैं। इनके द्वारा महिलाओं द्वारा देखे-परखे पिता के विविध रूपों को देखा जा सकता है। पुत्र रूप में चित्रित पुरुषों में या तो, माता-पिता की आज्ञा मानने वाले, उनकी भावनाओं को सम्मान देने वाले पुत्रों का चित्रण हुआ है अथवा स्वेच्छाचारी, स्वार्थी पुत्रों का हुआ है। पुत्र रूप में चित्रित पुरुष ही भाई की भूमिका का निर्वाह करते हुए दो रूपों में दृष्टिगत होते हैं। श्वसुर रूप में चित्रित पुरुष मुख्यतः पुत्रियों की हित कामनार्थ दामाद को अधिकाधिक सुविधाएँ प्रदान करते वाले श्वसुर हैं। इसी प्रकार पुत्रवधुओं के प्रति उदारमना श्वसुर भी दिखाई देते हैं। परम्परानुगत विचारों वाले ऐसे श्वसुर पुत्रवधुओं से परिवार की मर्यादा के निर्वाह की अपेक्षा करते हैं। दामाद रूप में चित्रित पुरुषों के दुर्बल पक्ष का ही सामान्यतः चित्रण हुआ है। ससुराल में अशिष्टता का प्रदर्शन करना अपना अधिकार समझते हैं। ऐसे पुरुषों ने अपनी यौन दुर्बलताओं को भी प्रकट किया है। बहनोई रूप में भी पुरुषों का आचरण निर्दोष नहीं है। स्वरूप जैसे आदर्श बहनोई भी चित्रित हुए हैं। पारिवारिक सम्बन्धों के निर्वाह की दृष्टि में अन्य पुरुषों का चित्रण गौण रूप से ही हुआ है। सामान्यतः इनके दो रूप हैं—पहले रूप में इनका आचरण सहज है और आदर्श मण्डित कहा जा सकता है। किन्तु, इनका दूसरा रूप वासनान्ध पुरुष की छवि को प्रस्तुत करता है। चाचा, दादा, देवर, आदि रूप में चित्रित पुरुष यौन दुर्बलताओं का उद्घाटन अधिक करते हैं। ऐसे पुरुषों में उच्छृंखलता, उत्तरदायित्वहीनता स्वार्थवृत्ति दृष्टिगत होती है।

इस प्रकार परिवार में पुरुष की भूमिका स्त्री के साथ उनके सम्बन्ध के निर्वाह की दृष्टि से निर्मित हुई है। लेखिकाओं ने पुरुष के आचरण को परिवार की महिलाओं के प्रति उनके आचरण के आधार पर चित्रित किया है। उसके आधार पर परिवार में पुरुष के आचरण को मुख्यतः दो वर्गों में बटा हुआ देखा जा सकता है। उनके पहले वर्ग के अंतर्गत आदर्श व्यवहार करने वाले पुरुष आते हैं तो दूसरे वर्ग के अंतर्गत उन पुरुषों का चित्रण देखा जा सकता है जिनका दुर्बल पक्ष अधिक प्रकट हुआ है। परिवार में पुरुष के इस दुर्बल पक्ष को विस्तारपूर्वक चित्रित कर लेखिकाओं ने पुरुषों के आचरण के प्रति अप्रत्यक्षतः अपने विचारों को प्रकट किया है।

दाम्पत्य सम्बन्धों के आधार पर चित्रित पुरुष-पात्र

परिवार में यौन सम्बन्धों के आधार पर भी पुरुष की भूमिका को अनेक रूपों में प्रकट हुआ देखा जा सकता है। पत्नी के साथ बहुविध सम्बन्धों का निर्वाह करने वाले

पतियों के विविध रूप इन उपन्यासों में प्रकट हुए हैं। उनके ये रूप एक-दूसरे से सर्वथा असम्पृक्त हैं। कहीं वह स्वामीवत् आचरणकर्त्ता के रूप में प्रस्तुत हुआ है तो कहीं असन्तुष्ट पति के रूप में। कहीं उसका दुराचारी रूप प्रकट हुआ है तो कहीं वह अपने सहज रूप में उपस्थित हुआ है।

वासनान्ध पति

पति का पहला रूप वासनान्ध पति के स्वरूप को प्रकट करता है। 'बात एक औरत की' का सजय, 'रेत की मछली' का शोभन, 'अनारो' का नंदलाल इत्यादि इसी कोटि के पति हैं। सजय पुलिस विभाग में उच्च पदाधिकारी है और अनेक कुण्ठाओं से ग्रस्त है। पत्नी की इच्छाओं, आकांक्षाओं की ओर ध्यान नहीं देता, रात में भूखे भेड़िये सा उस पर टूट पड़ता है। सम्पर्क में आने वाली प्रत्येक स्त्री से यौन सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करता है। 'तुम्हें तो यह सब सहने की आदत होनी चाहिए। पुरुष तो एकपत्नीव्रत होता ही नहीं। किसी की पोल खुल जाती है किसी की नहीं।'[24]

शोभन भी वासनान्ध पति है। प्रेम विवाह करके भी वह पत्नी के प्रति सहज नहीं है। पत्नी की आँखों के सामने प्रेमिका से सम्बन्ध बनाए रखता है। इन उपन्यासों में सजय और शोभन दोनों का दोहरा आचरण भी प्रकट हुआ है। समाज के सामने वे पत्नी से प्रेम का दिखावा करते हैं, किन्तु घर पर उसे पीटने, उस पर अत्याचार करने में सकोच नहीं करते।

नंदलाल भी अन्य स्त्री से यौन सम्बन्ध रखता है। 'ससुरी तेरी डेढ़ पसली की काठी और इतरा रही है गुलबदन की तरह। उसका बदन देखा है कैसा गदराया है? रसभरी है, रसभरी।'[25] 'कृष्णकली' का रजनीकांत भी पत्नी के समक्ष इतर स्त्रियों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। 'पूनरेनू, पुजारिनी, अभया, कृष्णा, वेनू कितनी सौतों ने सताया है मेरी मालकिन को।'[26] यौनतुष्टि के लिए लालायित रहने वाले ये पति अपने आचरण से पत्नियों के लिए पीड़ाकर स्थितियों का निर्माण करने वाले सिद्ध होते हैं।

अहंकारी पति

दूसरी कोटि के पति वे हैं जो अपने अहं को पत्नी पर थोपने में सचेष्ट रहते हैं। 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर, 'उसके हिस्से की धूप' का मधुकर, 'मित्रो मरजानी' का सरदारी लाल, 'वह तीसरा' का सदीप इसी कोटि के पति हैं। जोगेन्दर हरदम अपनी ही चलती देखना चाहता है। शिक्षिता पत्नी जब उसकी अनेक दुर्बलताओं को प्रकट करती है तो वह उस पर अपने अहं को आरोपित करना चाहता है। 'देखो मुझसे हर समय ऐंठकर मत बात करो। मैं कभी तुम्हारे लिए सॉफ्ट महसूस भी करता

चाहूँ तो तुम मोहलत नही देती।'[27] दूसरे की पत्नी से प्रेम विवाह करने वाला मधुकर पत्नी पर अपने अह को आरोपित होते हुए देखना चाहता है। इतना अहकारी है कि पत्नी के हर कर्म की नुक्ताचीनी करता है और उसे अनुगता मात्र देखना चाहता है। सारी की सारी औरतो की खोपडी उल्टी मानता है और 'वीमेनलिब' का घोर विरोधी है। 'मैं न तो 'वीमनलिब' मे विश्वास करता हूँ और न 'फ्रीलव' मे।'[28] 'मुझे माफ करना' का नायक वृद्ध होते हुए भी अनेक विवाह करता है, किन्तु पत्नियो से सीता सावित्री के आदर्शो का पालन करने की अपेक्षा करता है। 'एक आदर्श गृहिणी बनो ताकि सीता और सावित्री की तरह तुम्हारा उदाहरण दिया जा सके।'[29] 'दूरियाँ' का हरि भी नायिका पर अपने अह को आरोपित करने मे सचेष्ट रहता है। 'आपका बंटी' का अजय भी पत्नी पर अपने अह को थोपने की चेष्टा करता है जिसकी अति का परिणाम तलाक होता है। 'तुम जानती हो, अजय बहुत इगोइस्ट भी है और बहुत पजेसिव भी। अपने आपको पूरी तरह समाप्त करके ही तुम उसे पा सकी तो पा सको, अपने को बचाए रखकर तो उसे खोना पडेगा।'[30] पति के रूप म पुरुष के अहकार को सुन्दर ढग स प्रस्तुत करन वाला उपन्यास 'वह तीसरा' है। पत्नी की आकाक्षाओ को कुचलते रहना नायक सदीप का स्वभाव है। हर समय हर हालत म सदीप अपने अह को रजिता पर थोपता रहता है। 'ओह रजिता! ना आरग्युमेट्स प्लीज। आई हट आरग्युमेटस।'[31] 'नयना' का अग्रेज कलेक्टर पीयर्सन भी गवर्नर की पुत्री के स्वाभिमान को रखने वाली पत्नी पर अपन को थोपने की चेष्टा करता है।[32]

अत्याचारी पति

पति का अहकारी रूप विकसित होकर पत्नी पर अत्याचार करन की प्रेरणा देता है जिसके कारण पुरुष पत्नी को पीटन, गालियाँ देने म भी सकोच नहीं करता। 'मित्रो मरजानी' का सरदारीलाल, 'बात एक औरत की' का सजय, 'मोहल्ले की बूआ' का महेश, 'रेत की मछली' का शोभन, 'अनारो' का नन्दलाल सभी पत्नी को पीटने मे सकोच नही करते। ऐसा करन वाले पति शिक्षित भी है। फिर भी मात्र अह की तुष्टि के लिए वे पत्नी पर अत्याचार करने लगते है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

(i) बनु के घर लौटते ही सजय न उसे पलग पर गिरा दिया और इस तरह मारा कि खून से उसकी सफेद साडी लाल हो गई। जब हाथ पर मार सहने म हाथ टूट गया तब सजय का मारना बद हुआ।[33]

(ii) अब कहाँ चली गई हरामजादी? अब आइयो मेरे घर म, तेरी हड्डी पसली न तोड दूँ तो मेरा नाम महेश नहीं।[34]

(iii) जीना हराम कर दिया है। जान लेकर छोडूँगा।[35]

पत्नी पर सदैव शंका करने वाले पति भी इन उपन्यासों में दिखाई देते हैं।

'मैरवी' में राजेश्वरी के शकालु पति के भी अत्याचारों का उल्लेख हुआ है। उस शकालु स्वभाव के व्यक्ति ने अपनी ओर से पत्नी किलेबन्दी करना आवश्यक समझा। दूकान पर जाता तो सुन्दरी पत्नी को ताले में बंद कर जाता। ठीक एक वर्ष पश्चात् चंदन हुई फिरभी वह मं बद रखी गई। सुन्दरी पत्नी द्वारा ईमान-दारी से प्रस्तुत की गई सन्तान को भी वह निर्मल चित्त से ग्रहण नहीं कर पाया। उससे एक ही प्रश्न बार बार पूछता 'बयोजी, यह मेरी ही पुत्री है ना? कहीं पानी तो नहीं मिलाया दूध म।[36]

शोभन जैसे अत्याचारी पति, पत्नी पर अत्याचार भी करते हैं और समाज के समक्ष उसे चुप रहने के लिए अनुनय-विनय भी करते हैं। पत्नी कुन्तल को जब वह पीटता है तो इसी बीच उसके पिताजी आ जाते हैं। वह तुरन्त अपना रूप बदल कर पत्नी से उनके समक्ष सहज ढंग से आने की भीख मांगने लगता है। 'मुझे माफ कर दो कुन्तल, मैं पागल हो गया था। प्लीज कुन्तल! देखो अब मेरी लाज तुम्हारे हाथों में है। तुम्हारे पिताजी आए हैं। उन्हें मालूम न हो यहाँ क्या हुआ था। बस, जल्दी से बाथरूम जाओ और हाथ मुँह धोकर कपड़े बदल लो।'[37] इस प्रकार पति के अहंकारी रूप की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में हुई है। पुरुषों की दुर्बलता का यह पक्ष निश्चय ही, लेखिकाओं की मान्यताओं को विस्तार में वर्णित करता है।

अनुकूल पति

पत्नी के साथ सहज ढंग से पेश आने वाले या मित्रवत् आचरण करने वाले पतियों की अभिव्यक्ति भी इन उपन्यासों में हुई है। 'पानी की दीवार' का दिलीप, 'टूटा हुआ इन्द्र धनुष' का प्रभात, 'मित्रो मरजानी' का बनवारीलाल, 'सूरजमुखी अँधेरे के' का केशी, 'मकर के साथी' का सुकान्त, 'मायापुरी' का अविनाश इसी कोटि के पति हैं।

दिलीप स्वयं तो सादगी पसंद है किन्तु पत्नी को फैशन के प्रति आकर्षित देखकर न उसका विरोध करता है और न बाधक ही बनता है। प्रभात अपनी पत्नी की इच्छाओं को सम्मानित करता है। उसके प्रेमी से भी खुलकर मिलता है। पत्नी के अंतर्मन के अज्ञात रहस्यों के प्रति शंकालु बन उसको कुरेदना इसका स्वभाव नहीं है। 'रहा प्रभात, तो इतना शोभना का विश्वास था कि वह इतना सज्जन है कि पत्नी के अन्तर्मन की निजी, अंतरंग, छिपी पगडंडियों पर कभी अनधिकार प्रवेश नहीं करेगा। उसकी जिज्ञासा कभी शोभना की अन्तरात्मा को कुरेदेगी, रौंदेगी नहीं।'[38] बनवारीलाल अनुरक्त और सहिष्णु पति है और इसी आचरण के प्रतिदान में वह पत्नी का भी भरपूर प्यार प्राप्त करता है। केशी भी पत्नी रीमा में पूरी तरह

अनुरक्त है। छोटी मोटी बातों से होने वाली टकराहट इनके आपसी तालमेल के कारण बेअसर रहती है। सुकान्त भी पत्नी के प्रति एकनिष्ठ प्रेम रखने वाला पति है। अविनाश अपनी पत्नी मजरी के प्रेम में पूरी तरह अनुरक्त है और 'जो आज्ञा सरकार! मैंने तो आपकी सेवा का व्रत लिया है।'[39] कहकर अपने प्रेम को प्रकट करता है। इस प्रकार अनुकूल पतियों की एकनिष्ठता, सहिष्णुता, प्रेम, सहजता को लेखिकाओं ने प्रशंसा के साथ चित्रित किया है। पति का यह रूप उनके वैचारिक समर्थन को प्राप्त कर प्रस्तुत हुआ है।

विवश पति

नारी कृत उपन्यासों में पुरुष पर नारी के अह को प्रत्यारोपित करने के प्रयास भी हुए हैं। एतद् विषयक लेखिकाओं के चिंतन की सक्षम अभिव्यक्ति इनके उपन्यासों में चित्रित विवश पति करते हैं। पति का यह रूप पत्नी के समक्ष अपनी बेबसी, निरुपायता और लाचारी को प्रकट करता है। पति के अहकार के स्थान पर ऐसे पतियों पर पत्नी का अहकार हावी है जिसे पुरुष को विवश भाव से झेलना पड़ा है। 'बपर' का परमजीत, 'लेडीज क्लब' के मिस्टर पुरी, 'सागर पाखी' का स्वरूप, 'ज्वालामुखी के गर्भ में' के मोगाजी, 'काली लड़की' के कमल बाबू, 'सूखी नदी का पुल' के रायसाहब और 'नावें' का विजयेश विवश पति के रूप को सुन्दर अभिव्यक्ति देते हैं। परमजीत वस्तुतः सजीवनी से प्रेम करता है। सस्कारों के हावी हो जाने पर वह उससे छिटक कर रमा से विवाह करता है और उसकी सकीर्ण मनोवृत्ति के कारण अपने को कसाई के हाथों बन्दी बकरे की स्थिति में निरुपाय पाता है। परमजीत को लगा वह किसी कसाई के हाथों में पड गया है और मिमियाने के अलावा कुछ नहीं कर सकता।'[40] 'लेडीज क्लब' के मिस्टर पुरी पत्नी की शान शौकत की जिन्दगी के प्रति आकर्षण एवं उसकी प्रदर्शनप्रियता की रुचि की पूर्ति के लिए कर्ज लेकर शानदार पार्टी करने को विवश होते हैं। क्योंकि उनकी पत्नी के लिए 'यह सामाजिक परिवेश कायम रखना उसके जीवन की सबसे बड़ी चुनौती थी और शान बान के इस झूठे प्रदर्शन पर वह किसी को होम कर सकती थी चाहे वह पुरी साहब हों, चाहे उनकी पुत्रियाँ हों या फिर वह स्वयं ही।'[41] स्वरूप भी अनेक कारणों से पत्नी के समक्ष अपने को पराजित महसूस करता है। 'सुलोचना के समग्र व्यक्तित्व के सामने उनकी हस्ती बिल्कुल छोटी पड़ गई थी—ठिगनी सी, बावन अगुल की। सुलोचना के साथ उनकी स्थिति हास्यास्पद होती थी। सुलोचना को उनकी आवश्यकता नहीं थी और वह अब सुलोचना के आश्रित हो चुके थे।'[42] देश की स्वतंत्रता के पूर्व का जनसेवक, स्वतंत्रता के बाद की स्थितियों में पत्नी पर पूरी तरह आश्रित होकर उसकी डॉट-फटकार और तिरस्कार को झेलने के लिए विवश हो जाता है।

'काली लडकी' के कमल बाबू पत्नी के समक्ष इतने पराजित हो जाते है कि पुरुष होकर भी फूट-फूट कर रोने लगते है। 'वह मुझे बहुत तंग करती है और घर पहुँचते ही खाने को दौडती है।'[43] 'ज्वालामुखी के गर्भ में' के मौसाजी भी पत्नी के अहं के समक्ष सदैव अवमर्दित होते रहते है, इसलिए घर मे वे भजन पूजन मे ही व्यस्त रहते हैं और अपनी अस्मिता की तुष्टी घर से बाहर करते है। 'ऐसा होना असम्भव भी तो नही है! मनुष्य ही तो है आखिर वे। कही तो उनके अहं की तुष्टी होनी चाहिए। पत्नी द्वारा निरन्तर लाछित और अपमानित व्यक्तित्व को कही तो सिर उठाने का अवसर मिलना चाहिए। नही तो कोई जीयेगा कैसे।'[44] रायसाहब योगेशचन्द्र यद्यपि निरकुंश वृत्ति के हैं। पत्नी और परिवार पर सदैव अपने को थोपते रहते है किन्तु पत्नी द्वारा तटस्थता और वैराग्य भाव अपना लेने पर शून्यतायुक्त एकाकीपन से भर कर 'जब तुम नही तो सकून भी नही'[45] जैसी बेसहारा अवस्था मे पहुँच जाते है।

'नावें' का विजयेश विवश पति का चरम रूप कहा जा सकता है। आदर्शवादिता के कारण यह एक पुत्री की माँ मालती से विवाह करता है। विवाह के साथ ही पति और पिता की दोहरी भूमिकाएँ निभाता है लेकिन पत्नी की निष्ठुरता और आत्म-केन्द्रित वृत्ति के कारण इसे एक विवश पति मात्र बनकर रह जाना पडता है। हतदर्प विजयेश कुण्ठित हो जाता है और सोचता है 'अच्छी तवालत मोल ले ली है मैंने भी। बच्चे घर-घर होते है पर आदमी को इस तरह दूध की मक्खी बनाकर कही नही निकाल फेंक दिया जाता।'[46] पत्नी के समक्ष यह इतना निरुपाय हो जाता है कि घर से भाग जाने को ही अपना मोक्ष समझता है। 'शाम को घर जाने पर थोडा सा सामान अटैची मे रखेगा और निकल जायेगा। नहीं नही मालती से कुछ भी कहने सुनने की बात व्यर्थ है। वह भी देख ले मर्द का गुस्सा कितना तेज होता है। अगली बातें सोचेगा बाद मे यहाँ से गला छुडा लेने के बाद।'[47] अत विवश पति पर लेखिकाओं ने पत्नी के अहं को प्रत्यारोपित करने का प्रयास किया है। नारी रूप मे लेखिकाओं द्वारा किए गए ऐसे प्रयास परिवार मे पुरुष के अहं को चुनौती देते हुए दृष्टिगत होते है।

सारांश

पुरुष के पति रूप मे ही नारियाँ सर्वाधिक जुडी हुई रहती है। उसका आचरण, पत्नी के साथ समायोजन नारी के लिए विविध सुविधाजनक-असुविधाजनक स्थितियाँ की सृष्टि करता है। परन्तु लेखिकाओं ने पति के रूप को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है। पति के अनेक रूपो मे से पत्नी के साथ सहज समायोजन करने वाले पुरुष प्रशंसा के साथ चित्रित हुए हैं। ऐसे पतियो के प्रति लेखिकाओं का श्रद्धा भाव प्रकट हुआ है। किन्तु पति के दुर्बल पक्ष को चित्रित करने वाले पुरुषो का चित्रण अधिक विस्तार से हुआ है। वासनान्ध, अहंकारी, अत्याचारी पति लेखिकाओं की भर्त्सना के पात्र बन

है क्योंकि इनका आचरण नारी के लिए पीडाकर स्थितियो की सृष्टि करता है। आधुनिक नारी अब उतनी विवश या निरुपाय नही रही है। योग्यताओ के रहन के कारण वह अनुगता मात्र बनी रहना नही चाहती। अपने अह को पुरुष के समकक्ष देखना चाहती है। लेखिकाओ ने नारी के उसी अह की रक्षार्थ पति के विवश रूप को भी चित्रित किया है। ऐसे पतियो पर नारी के अह को प्रत्यारोपित करने का प्रयास हुआ है।

विधुर

पति के अनेक रूपो के अतिरिक्त यौन सम्बन्धो की दृष्टि से चित्रित विधुर की स्थिति भी महत्त्वपूर्ण है। पत्नी के साथ रहते हुए उसके साथ समायोजित करने वाला पुरुष पति के अनेक रूपो को उद्घाटित करता है, किन्तु पत्नी के अभाव मे उसका जीवन सहज नही रह पाता। अत विधुर के पारिवारिक आचरण को देखना भी आवश्यक है।

इन उपन्यासो मे विधुर रूप मे चित्रित पुरुष पात्रो मे से अधिकाश ने पुनर्विवाह करने मे स्वरुचि प्रकट की है। 'कोगी नही राधिका' के पापा 'सोनाली दी' के पापा 'पाषाणयुग' के पापा, 'प्रिया' के बाबा प्रमुख विधुर पात्र हैं। राधिका के पिता लिखने पढने मे रुचि लेने वाले व्यक्ति है। राधिका की माँ की मृत्यु के बाद तो उसका सारा समय ही स्वाध्याय मे लगने लगा। वर्षों तक जीवन का क्रम इसी प्रकार चलता रहा। लेकिन अपने एकाकीपन से वे इतने ऊब जाते है कि पुनर्विवाह कर लेते हैं। 'पापा केवल पिता, लेखक, वकील बनकर ही सन्तुष्ट नही थे यह उनके सामने स्पष्ट था। वे जीवन मे परिपूर्णता चाहते थे। एक युवा शरीर का साथ, और इसी बात से राधिका का मन घोर वितृष्णा से भर गया।[48] 'सोनाली दी' उपन्यास के पापा भी भी विधुर जीवन के एकाकीपन मे ऊब कर पुनर्विवाह के लिए तत्पर दिखायी देते हैं। सोनाली से कहते है मेरी परीक्षा बार बार क्यो लेती हो? यह घर अब तुम्हारे बिना मुझ से नही चलाया जाएगा। तुमने किस सुचारु रूप से चला दिया है।'[49] 'पाषाणयुग' के 'पापा' भी पत्नी की मृत्यु के तीन वर्ष के भीतर भीतर पुनर्विवाह कर लेते है। 'सूखी नदी का पुल' के रायसाहब भी पुनर्विवाह कर लेते हैं।

ये सभी विधुर वयस्क कन्याओ के पिता है अपने से उम्र मे कही छोटी (सामान्यत स्वय की पुत्री की उम्र की) नवयुवती के साथ पुनर्विवाह करते है। ऐसी नवयुवती पत्नी के साथ ठीक से एडजस्ट नही कर पाते। उस पर अपना अह का थोपते रहने मे सचेष्ट रहते हैं। पत्नी की अवस्थानुरूप इच्छाओ को विशेष सम्मान नही देते। उस पर अकारण सन्देह करने की प्रवृत्ति कुछ पुरुषो मे दिखाई देती है।

इन विधुरो की पुत्रियाँ भी पिता के पुनर्विवाह को पसन्द नही करती है। अपनी ही

उम्र की नवयुवती को माँ के रूप में स्वीकार नहीं पाती हैं। कहीं कहीं इनका विरोध उग्र रूप में भी चित्रित है। ऐसी अवस्था में उनके पिता भी प्राय पुत्री का पक्ष लेकर दूसरी पत्नी के प्रति अत्याचार करते हैं। इस कारण 'रुकोगी नहीं राधिका' में राधिका की विमाता पति के ऐसे आचरण से दुखी होकर आत्महत्या कर लेती है। जबकि 'पाषाणयुग' में विमाता मूक होकर सारे अपमान व कष्ट झेलती चली जाती है। 'सूखी नदी का पुल' में विमाता ऐसे पति के अत्याचारों को सहन न कर पाने के कारण पूरी तरह आत्म केन्द्रित हो जाती है। पति से उदासीन सी होकर कठोर संयम का व्रत सा ले लेती है।

'सानालो दी' ही एक मात्र ऐसा उपन्यास है जिसमें पुत्री रानू अपने विधुर पिता के पुनर्विवाह के लिए उत्सुक दिखलाई पड़ती है। यहाँ पिता का आचरण भी दूसरे विवाह के बाद पत्नी के प्रति अनुकूलता का भाव रखता है।

विधुरों का दूसरा रूप ऐसे पुरुषों की कामान्धता को प्रस्तुत करता है। यद्यपि ये विधुर पुनर्विवाह नहीं करते हैं लेकिन नवयुवतियों को छलने में और उन्हें अपनी वासना का शिकार बनाने में ही सचेष्ट दिखाई देते हैं। ये लोग अभिभावक होने के भाव का प्रदर्शन करते हुए अनाथ नवयुवतियों का मन जीत लेते हैं। उनका विश्वास प्राप्त कर लेते हैं किन्तु अवसर आने पर भूखे भेड़िये से उन पर झपट उन्हें अपनी वासना का शिकार बनाते हैं। 'कृष्णकली' का रजनीकान्त मिश्रा, 'रथ्या' का मृत्युस्वामी इसी कोटि के विधुर हैं। 'पहले पहल चतुर रजनीकान्त ने अपनी शरण में आयी उस अनाथा किशोरी के साथ अपना व्यवहार ऐसा उदासीन एवं तटस्थ रखा कि बाली को स्वयं ही उनको अपनी छोटी आवश्यकताओं से अवगत कराने के लिए इधर उधर भटकना पड़ा। तब वह क्या जानती थी कि वह कुटिल व्यक्ति अपनी उदासीनता से ही उसका विश्वास जीतना चाहता है।'[50] 'पर चतुर गिद्ध क्या एकदम ही शिकार पर झपटता है? उसी छली पक्षी की भांति निर्मम आवाज में गोल गोल चक्कर काटते जब रजनीकान्त अपने शिकार पर झपटे, तो वह समझ भी नहीं पायी।'[51] 'रथ्या' का मृत्युस्वामी भी पत्नी की मृत्यु हो जाने के बाद पुत्री की तरह पालिता बसंती को अपनी वासना का शिकार बनाता है। 'उसी रात मुझे बेटी-बेटी कहने वाला वह काल भुजंग सा मेरा रक्षक मेरा भक्षक बन गया।'[52]

इस प्रकार विधुर पुरुष का आचरण लेखिकाओं के विशिष्ट दृष्टिकोण का प्रस्तुत करता है जिसमें विधुरों के अहं केन्द्रित या वासनान्ध रूप की ही अधिकतर अभिव्यक्ति हुई है। अपवाद के रूप में 'प्रिया' के बाबा ही ऐसे पुरुष हैं जो पत्नी की मृत्यु के उपरान्त पुनर्विवाह नहीं करते। पत्नी के साहचर्य की विगत स्मृतियों में ही खोए हुए, प्रतिक्षण उसे ही स्मरण करते हुए अपने जीवन के एकाकीपन को भरने की चेष्टा करते रहते हैं।

प्रेम सम्बन्धों के आधार पर चित्रित पुरुष-पात्र

प्रेम वह कोमल तन्तु है जो स्त्री और पुरुष को परस्पर निकट लाता है । नारी मन प्रेम की कोमल अनुभूतियों मे रेशमी तारो की सृष्टि करता है । प्रेम का सही प्रतिदान मिलने पर जहाँ नारी का हृदय पुरुष के चरणों मे अर्घ्यदान देने लगता है लेकिन 'प्रेम मे धोखा मिलने पर हर नारी चाहे वह किसी भी युग की हो, किसी देश की, चाह वह नारी-स्वतन्त्रता की सबसे बडी नेता हो, एक ही प्रतिक्रिया से पीडित होती है । वह सारी पुरुष जाति से घृणा करती है और हर पुरुष को नीच मानती है ।'[53] महिलाओ न प्रेमाश्रित कथानक वाले अनेक उपन्यास लिखे है । अन्य उपन्यासो म भी प्रेम का चित्रण हुआ है । इनम प्रेमियो के अनेक रूपो का उद्घाटन हुआ है जिनका चिन्तन एव आचरण भिन्न भिन्न प्रकार का है ।

आदर्श प्रेमी

वास्तविक जीवन की ही भाँति प्रेम के सच्चे सम्बन्ध का निर्वाह करने वाले आदर्श प्रेमियो के दर्शन इन उपन्यासो मे अधिक नही होते । 'पचपन खम्भे लाल दीवारे' का नील, 'सूखीनदी का पुल' का डॉ वाली, प्रिया' का मनसिज, तारे' का अजय आदि आदर्श प्रेमी है ।

सुषमा स प्रेम करते हुए भी नील उस पर अपन प्रेम भाव का बलात् थाप नही देता है । उस चुनाव की स्वतन्त्रता प्रदान करता है । किन्तु एक बार प्रेम भाव का स्वीकारी करण हो जाने पर सुषमा से उसका समुचित प्रतिदान भी चाहता है । 'मै तो इतना स्वार्थी हो गया हूँ कि प्यार नही तो करुणा ही सही, जो भी मिले, बताइए क्या मुझे दुत्कारती रहती है ।'[54] उसे इस बात का दु ख है कि वह सुषमा के जीवन का पूरी तरह एक अग नही बन सका । 'मुझे अक्सर लगता है सुषमा कि तुम्हारे जीवन का मैं पूरी तरह से छू नही पाया हूँ । मैं तुम्हार अस्तित्व की केवल परिधि ही छू सका हूँ ।'[55] जब उसे ज्ञात होता है कि सुषमा के सकोच का कारण उसके पारिवारिक उत्तरदायित्व है, तो वह सहर्ष उन्हे अपने कन्धे पर झेलने के लिए तैयार हो जाता है । 'वे जिम्मेदारिया मेरी भी होगी । तुम्हारे भाई-बहना, सबके लिए सब कुछ वैसे ही होगा जैसे होता आया है ।'[56]

डा वाली भी आदर्श प्रेमी है । मित्र की बहिन स सगाई हो जाने पर वह अत्यत प्रसन्न होता है । किन्तु जब वह किसी अन्य से विवाह कर लेती है तो वह आजीवन अविवाहित रहता है । 'दुकेले होने स ही तो मन का मीत मिल नही जाया करता, तारा ।'[57] प्रौढावस्था मे सर्वथा बदली हुई अवस्था मे जब प्रेमिका से उसकी पुन भेंट होती है तो वह उसके प्रति किसी प्रकार की कटुता नही पालता, उसके प्रति विष वमन नही करता, वरन् उसी के यहा अस्पताल मे अपनी सेवाएँ प्रदान करता है । प्रेमिका को पूरी तरह

क्षमा कर देता है। 'न-न तारा, गलत मत समझो। तुमने जो किया था उस समय तो मुझे धक्का लगा था किंतु अब कुछ नहीं।'[58] मनसिज भी आदर्श प्रेमी है। वह प्रिया से प्रेम करता है। उसे पाने के लिए लालायित है। सच्चे प्रेम के कारण मनसिज, प्रिया को हर हालत में प्राप्त करना चाहता है। 'मिस प्रिया एक बात याद रखिये, मनसिज चौधरी गाँधीजी के सत्याग्रह में विश्वास नहीं रखता, सुभाष बोस की सशक्त क्रांति में विश्वास रखता है। आपने मनसिज चौधरी का दिल चुराया है सजा में वह आपको उमर कैद दे सकता है' देगा भी।'[59] अरुण के द्वारा छले जाने पर भी उसे अंगीकार करना चाहता है, क्योंकि अतीत को छोड़ वह जो कुछ सामने है उसकी वास्तविकता को स्वीकारने का पक्षधर है। 'पास्ट इज पास्ट, जो बीत गया सो बीत गया। जिन्दगी पीछे मुड़कर देखने का नाम नहीं, आगे देखने का नाम है, एण्ड आई बिलीव इन द फिलासॅफी ऑफ द मोमेण्ट्स, सामने खड़े ये क्षण, यह धूप, यह तुम या मैं, यही सब तो सच है जिन्दगी के। तुम आगे पीछे देखने में उलझी रहोगी तो एक कदम भी चल नहीं पाओगी। फिर वक्त किसी के लिए नहीं ठहरता, टाईम एण्ड टाईड वेट फार नन, प्रिया! कम ऑन डियर लेट अस मार्च विद द टाईम, समय के साथ कदम मिलाती चलो, मैं साथ देने का वादा करता हूँ।'[60] अजय भी आदर्श है प्रेमी। पिता की हठवादिता इसे दहेज स्वीकार करने के लिए विवश नहीं कर पाती। नीलिमा से सच्चा प्रेम करता है और उसे पाने के लिए घर-परिवार सभी को छोड़ देता है।

इस प्रकार आदर्श प्रेमी प्रेम के प्रति समर्पित रहते हैं। उनमें स्वार्थवृत्ति का अभाव होता है। लेखिकाओं ने प्रेमियों के इस रूप के प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट की है।

असफल एवं निराश प्रेमी

प्रेम के क्षेत्र में सभी सफलकाम नहीं हो पाते। वर्तमान सामाजिक स्थितियों में प्रेमी के लिए सफल होना सहज नहीं है। 'इन्नी' का राज, 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' का नील, 'श्मशान चम्पा' का सतीश, 'रथ्या' का विमलानन्द इत्यादि इसी कोटि के पुरुष-पात्र कहे जा सकते हैं।

प्रेमी के आदर्श रूप को अभिव्यक्ति देने वाला नील असफल प्रेमी है। सुषमा का हृदय जीत लेने पर भी वह उसे प्राप्त नहीं कर पाता। सुषमा अपनी जड़ता नहीं तोड़ पाती और वह निराश होकर विदेश चला जाता है। राज नायिका इन्नी से प्रेम करते हुए भी अन्य से विवाह करने को बाध्य होता है किन्तु जीवन भर प्रेमिका की कामना की निदारुण भट्टी में जलता रहता है। 'मैं तुझे प्यार करता हूँ एकाग्र एकांत रूप से। यह अग्नि उसका साक्षी है। तेरा अंतर्यामी- घट घट व्यापी साक्षी है। तभी तो मेरे शब्द तुझे छूते हैं।'[61] विमलानन्द पिता के क्रूर अनुशासन के कारण प्रेम में सफल नहीं हो पाता। सतीश मन की कायरता के कारण अपनी प्रेमिका शोभा को प्राप्त नहीं कर पाता। 'क्षमा तो मुझे मांगनी थी शोभा। मैं ही कायर था, उसी का फल भाग

रहा हूँ। मेरी आँखों में देखो शोभा, तुम क्या सोचती हो कि मैं तुम्हें भूल गया हूँ। [62] यही स्थिति 'रुकोगी नहीं राधिका' में अक्षय की भी है। अपनी संकोचजनित जड़ता के कारण राधिका के समक्ष वह हृदय की बात नहीं रख पाता और विफलकाम होता है।

इस प्रकार इन उपन्यासों में विफल प्रेमियों की एक लम्बी पंक्ति है। इनकी विफलता का कारण मुख्यतः उनकी दब्बू वृत्ति है। अपनी बात को ठीक समय पर ठीक ढंग से न कह पाने के कारण ये असफल हो जाते हैं। महिलाओं ने ऐसे प्रेमियों के माध्यम से पुरुषों की कायरता का उद्घाटन किया है। आदर्श प्रेमी होने पर भी दुर्बल मनोवृत्ति के कारण ये पात्र लेखिकाओं की सहानुभूति प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं। नील जैसे आदर्शी प्रेमी आदर्शवादिता के अतिरेक के कारण विफलकाम होते हैं। प्रेमिका के लिए त्याग का आदर्श तो स्थापित करते हैं किन्तु लेखिकाओं की गहरी सहानुभूति प्राप्त नहीं कर पाते।

धोखेबाज एवं भ्रमरवृत्ति के प्रेमी

इन उपन्यासों में उन प्रेमियों के प्रति लेखिकाओं का विरोध भाव अधिक प्रकट हुआ है जो प्रेम के नाम पर छल करते हैं। प्रेम सम्बन्ध का पूरी तरह निर्वाह नहीं करते और अपने अहं के कारण नारी को पीड़ा देते हैं। 'बेघर' का परमजीत, 'प्रिया' के यशवन्तजी एवं अरुण, 'दूरियाँ' का मदन, 'कृष्णकली' का विद्युतरंजन, 'पतझड़ की आवाज' का विजय इसी प्रकार के छली प्रेमी हैं। संजीवनी से प्रेम करने वाला परमजीत उससे दैहिक सम्बन्ध स्थापित कर उसे सिर्फ इसलिए छोड़ जाता है कि वह उसके लिए अपने को पहला पुरुष नहीं पाता। संजीवनी को अपनी सफाई में कुछ भी कहने का अवसर नहीं देता। इस प्रकार प्रेम के कारण सम्बन्ध स्थापित करने वाला परमजीत उसके साथ छल करता है और अन्यत्र विवाह कर लेता है। परमजीत से पूर्व विपिन भी संजीवनी के साथ छल से बलात्कार करता है और मारीशस जाकर बस जाता है। 'प्रिया' में माँ एवं पुत्री दोनों को प्रेमियों द्वारा धोखा दिया जाता है। समाज सेवक यशवन्तजी सौदामिनी से प्रेम का नाटक करते हैं किन्तु बच्ची की माँ बनने पर रखैल से अधिक सुविधाजनक स्थिति में रखने को तैयार नहीं होते। 'मैं तुम्हारी संगिनी बनकर रह सकती थी रखैल बनकर नहीं। और तुमने मेरे साथ भारी धोखा किया था, अक्षम्य अन्याय। तुमने मुझे बरबाद करके छोड़ दिया।' [63] फिर अपनी पुत्री के ही बड़े होने पर उसके यौवन के मूल्य पर अपनी फैक्टरी के लिए सुविधाएँ प्राप्त करते हैं। इस प्रकार यशवन्तजी अपनी पुत्री को अरुण के हाथों समर्पित कर सुविधाएँ प्राप्त करते हैं। अरुण भी प्रिया से प्रेम का नाटक कर उसे धोखा देता है। पुरुष की नीचता का प्रदर्शन करते हुए यशवन्तजी स्वार्थसिद्धि हो जाने पर प्रिया को उसकी माँ के पास लौटा जाते हैं। 'मुझे अफसोस है, अरुण

देंगे—और सुनो, तुम्हारी तनख्वाह साढे चार सौ ही तो है न। मान लो मैं अपना घर छोड, परिवार छोड तुम्हारे पास आ जाऊँ। तो क्या गुजर हो सकेगी ? जानती हो मैं आर्टिस्ट आदमी हूँ। बेहद सेंसिटिव हूँ। मैं जिन्दगी को खामखाह की उलझनो से नही भर सकता वरना बहुत जल्दी उलझ जाऊँगा।'[67]

इस प्रकार प्रेम के नाम पर धोखा देने वाले इन प्रेमियो को अनेक उपन्यासो मे देखा जा सकता है। इनमे विवाहित एव अविवाहित दोनो प्रकार के पुरुष है। ये सभी यौन तुष्टि के लिए प्रेम सम्बन्ध स्थापित करते हैं। यौन सम्बन्धों के परिणामस्वरूप जब प्रेमिका माँ बनने की स्थिति मे पहुँच जाती है अथवा अपने अधिकारो की माँग करती है तो ये भाग खडे होते है। नारी को काम सतुष्टि का साधन मात्र समझते है। उसकी भावनाओ को सम्मान नही देते। नारी के साथ छल करने मे सकोच नही करते 'पतझड की आवाजें' की अनुभा प्रेम के नाम पर छल करते वाले विजय को सम्बोधित कर मानो नारी की ओर से सारे छली प्रेमियो से कहती है तुम जिन्दगी म पचीस इश्क करो पर ईमानदारी तो बरतो। अपने से ही बेईमानी करते जाना तुम्हे निचरा देगा।'[68] परमजीत, यश, इँन जैसे प्रेमी अपने निर्णय को उपयुक्त मानते हैं। यशवन्त, सोमजी, विद्युत्‌रजन जैसे प्रेमी अपनी प्रेमिका का रखैन से अधिक सुविधाएँ देने के पक्षधर नही हैं।

साराश

अस्तु, नारी के साथ प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने वाले पुरुष- प्रेमियो के अनेक रूप इन उपन्यासो म चित्रित हुए हैं। उनम से आदर्श प्रेमियो को सश्रद्ध समर्थन प्राप्त हुआ है तो छल करने वाले, नारी को फुसला कर यौन बुभुक्षा की पूर्ति करने वाले, प्रेम सम्बन्ध का पूर्णत निर्वाह न करने वाले प्रेमियो के आचरण पर प्रश्नचिह्न लगाए गए हैं। भ्रमरवृत्ति के प्रेमी सख्या मे अधिक हैं जो पुरुष के आचरण की दुर्बलताओ का उद्घाटन करते हैं। निराश प्रेमियो का चित्रण पुरुषो की कायरता को प्रकट करने के लिए किया गया है। अपनी बात को न कह सकने वाले ये दब्बू प्रेमी महिलाओ के समक्ष अपनी हीनता का प्रदर्शन कर उनके समर्थन को प्राप्त नही कर पाते।

शैक्षणिक योग्यता की दृष्टि से चित्रित पुरुष-पात्र

शैक्षणिक योग्यता की दृष्टि से पुरुष-आचरण के अनेक रूप स्वत निर्मित हो जाते हैं। शिक्षिता एव अशिक्षिता के चिंतन मे पर्याप्त असमानता होती है। इसी कारण उनका आचरण भी भिन्न भिन्न प्रकार का होता है। इन उपन्यासो म शिक्षित पुरुषो का चित्रण अधिक हुआ है। विदेश मे शिक्षा प्राप्त पुरुषो की सख्या भी अधिक है। शैक्षणिक उपाधियो के सदर्भ म उनके जीवन-दर्शन के भिन्न भिन्न रूप, बौद्धिक चेतना, अहभाव आदि भी विस्तार से वर्णित हुए हैं।

शिक्षा के प्रति विचार

उपन्यासो मे चित्रित प्राय सभी पुरुष-पात्र शिक्षित हैं। वे शिक्षितो की ही भाति आचरण भी करते हैं। 'मोम के मोती' का राजन, 'डसते दिनो की धूप' का मधुकर, 'वेघर' का परमजीत और 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर शिक्षा के प्रति विशिष्ट मान्यताएँ रखते हैं। राजन अध्ययन को जीवन की अनिवार्य आवश्यकता मानता है 'पढना प्रकाश है माया, मैं चाहता हूँ तुम इससे वचित न रहो।'[69] लेकिन उससे भी अधिक तरजीह अनुभव की शिक्षा को देता है। 'तुमने टैगोर नहीं पढा, परन्तु जीवन तो पढा है। जीवन का पढना ही सबसे बडी शिक्षा है।'[70] मधुकर पढाई के नाम पर किताबें रटकर परीक्षा उत्तीर्ण करने को सच्ची शिक्षा नही मानता और अपने छात्रो को युनिवर्सिटियो के काल्पनिक जगत को छोडकर यथार्थ जगत मे प्रवेश करने के लिए उकसाता है। 'किताबें रटने और लैक्चर चाटने से वे जीवन का मुकाबला नही कर सकते।'[71]

दूसरी ओर शिक्षित होते हुए भी शिक्षा के प्रति अरुचि रखने वाले, पढने की प्रवृत्ति को नापसन्द करने वाले पुरुष भी देखे जा सकते हैं। 'वेघर' का परमजीत इस प्रकार का ही पुरुष है जो शिक्षा को मात्र फैशन समझता है और पढने के शौक को पौरुषमय शौक नही समझता। 'पढना उसे कभी पौरुषमय शौक नहीं लगा। उसने इस बात पर घमण्ड ही किया था।'[72]

'नरक दर नरक' म शिक्षित रूप म सामाजिक एव राष्ट्रीय समस्याओ से जूझने वाले शिक्षित बेरोजगार पुरुषो की चेतना का स्फुरण हुआ है। शिक्षा का व्यापक प्रसार लाखो लोगों को बेरोजगार बना देता है। इस दृष्टि से उच्च शिक्षा के व्यापक फैलाव के दुष्परिणामो को जोगेन्दर, वैजनाथ, आतिश आदि पात्र प्रस्तुत करते है। 'हमारी युनिवर्सिटियो मे निकल हुए कितने लाख विद्यार्थी बेरोजगार हैं, इसकी तुम्हे खबर है ?'[73]

विदेशी शिक्षा प्राप्त पुरुष

विदेश म पढे ग अनेक पुरुष-पात्रो का चित्रण इन उपन्यासो म हुआ है। किन्तु अधिकाश के आचरण मे इससे कोई भी परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता है। इनके लिए विदेशी शिक्षा एक आवरण मात्र है। लेखिकाओ ने विदेशी शिक्षा प्राप्त करने का सकेत देकर अपने पात्रो को गौरव भर प्रदान करने की चेष्टा की है। 'मायापुरी' का सतीश, 'सूखी नदी का पुल' का भुवेश 'सफर के साथी' का सुकान्त इसी कोटि के पात्र हैं। सतीश एव सुकान्त का आचरण विदेश मे शिक्षा प्राप्त करके लौटने पर भी अपरिवर्तित रहता है जबकि भुवेश विदेश मे शिक्षा प्राप्त करके भी भारतीयता और भारतीय सस्कारो को पसन्द करता है। विदेशी महिला से विवाह करता है

लेकिन पत्नी को भारतीय लिबास में रखता है। स्वदेश आने पर माता-पिता के चरण स्पर्श कर उन्हें प्रणाम् करने की प्रेरणा देता है। स्वयं भी ऐसा ही करता है।

विदेश में शिक्षा प्राप्त करने गए उन पुरुष-पात्रों का चित्रण भी हुआ है जो वहां जाकर पूरी तरह से अपनी भारतीयता की पहचान ही खो देते हैं। 'रुकोगी नहीं राधिका' का प्रवीण इसी कोटि का पुरुष है। फाईन आर्ट्स में डिप्लोमा करने विदेश जाता है और भारतीयता को पूरी तरह भूल जाता है। अंग्रेजी में ही बातचीत करता है, हिन्दी बोलने में उसे शर्म महसूस होती है। गर्वपूर्वक यह स्वीकारता है कि उसके बच्चे हिन्दी नहीं जानते हैं। 'हमारे बच्चों को तो अंग्रेजी छोड़कर कोई भी भाषा नहीं आती।'[73]

विदेश में शिक्षा प्राप्त कर स्वदेश लौटने पर यहाँ की अव्यवस्था से दुःखी, किन्तु भारतीयता के मोह के कारण इसे न छोड़ने वाले पुरुष भी इन उपन्यासों में दिखाई देते हैं। 'रुकोगी नहीं राधिका' का मनीश यहाँ की दुरावस्था से शीघ्र ही ऊब जाता है। यहाँ की निराशाजनक स्थितियों से घबराकर भारत या विदेश में स्थायी रूप से बसने के प्रश्न पर अनिर्णीत दशा में झूलता रहता है। इसी उपन्यास का दिवाकर फिजिक्स में डाक्टरेट की उपाधि लेकर विदेश से लौटता है किन्तु अपनी योग्यता के अनुरूप यहाँ कोई अवसर नहीं पाकर दुःखी हो जाता है। फिर भी स्वदेश के मोह के कारण यहीं रहना चाहता है।

इस प्रकार शिक्षा द्वारा अर्जित योग्यताओं से पुरुष आचरण के विविध रूप दृष्टिगत होते हैं। चेतना के धरातल पर उनकी इन योग्यताओं का स्फुरण अपने अपने ढंग से हुआ है। कुछ पात्रों में वैयक्तिक अहं की दृढ़ता के कारण तो अन्य कुछ में दुर्बल व्यक्तित्व संघटन के कारण उनका निजी व्यक्तित्व शिक्षित हो जाने पर भी अपरिवर्तित रहा है। शेष शिक्षित पात्रों में योग्यतानुरूप बौद्धिक चेतना एवं आचरण की विशिष्टता के दर्शन होते हैं।

शिक्षित पात्रों में बौद्धिक चेतना का स्वरूप

शिक्षित पुरुषों में बौद्धिक चेतना का प्राधान्य समाज में सर्वत्र दिखलाई पड़ता है। इसकी उपस्थिति के कारण ही पुरुष वर्ग जीवन के नाना विषयों पर विचार करते हैं एवं स्थितियों से जूझते हुए अपनी अस्मिता की रक्षा की चेष्टा करते हैं। तदनुरूप आचरण करते हैं। पुरुषों की बौद्धिकता शिक्षा, संस्कार और व्यक्तित्व से परिवेष्टित होकर उद्भासित होती रही है। इन उपन्यासों के पुरुषों में भी यह प्रवृत्ति पूरी तरह विद्यमान है।

'सूरजमुखी अंधेरे के' के केशी बुद्धि के धरातल पर सही और गलत सोचने को परिभाषित करते हुए कहते हैं 'जितना गलत सोचना गलत है, उतना ही सही को कम सही

समझना भी।'[75] जीवन की विषम संघर्षशील स्थितियों में तेज़ी लड़ाई को मन में लड़ते रहने की अपेक्षा अपने से बाहर रखकर लड़ना हमेशा अच्छा समझते हैं। 'हमेशा अपने अन्दर लड़ते रहने का कोई फायदा नहीं। लड़ाई को अपने से बाहर रखकर लड़ना हमेशा अच्छा है।'[76] 'पानी की दीवार' का दिलीप पेट की भूख से भी अधिक मन की भूख को तरजीह देता है। 'जीवन में पेट की भूख सहन हो सकती है, किन्तु मन की भूख नहीं।'[77] बौद्धिक धरातल पर काल्पनिक हवाई आदर्शों का विरोध करने का भाव 'नावें' के विजयेश में दृष्टिगत होता है। सुधारवादी आदर्श को यथार्थ के क्रूर थपेड़ों से टूटने की नियति को यह जीवन की अनिवार्यता मानता है। 'यहाँ भी बड़े सुधारवादी नकुआ बने फिरते थे। कैसा सुधार हुआ है। आदर्शों की भट्ठी खुद गई, अब उस पर बैठे हुए गुलगुले तले जाइये।'[78]

शिक्षित पात्रों का दूसरा वर्ग उन पुरुषों का है जो बुद्धिजीवियों में व्यर्थ की दिमागी कसरत करने की प्रवृत्ति का विरोधी है। शिक्षितों में व्याप्त चिन्तन एवं आचरण की असमानता को नापसन्द करता है। 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन इसी कोटि का पात्र है। वह भारतीय बुद्धिजीवियों के चिन्तन को त्रुटित और विडम्बनापूर्ण पाता है। चिन्तन पर अमल करने की अपेक्षा परोपदेश देने की आदत का यह घोर विरोधी है। 'है यहाँ कोई बुद्धिजीवी, जो किसी ठोस चीज़ का मवालन कर रहा है? अलबत्ता सुझाव हर मिनिट दस को दस गुना ज़रूर दे रहा होगा।'[79]

इस प्रकार युगसत्य को आत्मसात् करने वाले इन शिक्षित पुरुषों की बौद्धिक जागरूकता विविध दिशोन्मुखी दृष्टिगत होती है। इन प्रबुद्ध चेता पात्रों की संख्या लेकिन सीमित है। अधिकांश पात्र प्रेम, यौनतुष्टि या आत्मतुष्टि के भावों की पूर्ति के लिए ही प्रयत्नशील दिखाई देते हैं।

अशिक्षित पुरुष

शिक्षित पात्रों की समता में अशिक्षित पुरुष पात्रों का उल्लेख इन उपन्यासों में अधिक नहीं हुआ है। 'भैरवी' का गैंपा, 'अनारो' का नन्दलाल, 'अपना घर' का इसहाक, 'नयना' का बादल, 'श्मशान चम्पा' का केदारसिंह, 'सागर पार्थी' का नौकर, इत्यादि इसी कोटि के पात्र हैं। गैंपा श्मशान में चाण्डाल का काम करता है और वहीं तक छोटी-मोटी चाय की दुकान चलाता है। मन का साफ़ है और सीधे-सादे अशिक्षित पुरुष की छवि को प्रस्तुत करता है। 'दिमाग का कोठा तो खाली है अभागे का पर दिल का पूरा सिकन्दर है।' 'वैसे है हरामी एक नम्बर का मजाकिया होटल का नाम धरा है श्मशान विहार।'[80] लेकिन अशिक्षित होने से इसहाक अपने व्यवसाय में ठगे जाने की पीड़ा से ग्रस्त है।

नन्दलाल अशिक्षित पात्रों के निकृष्ट आचरण को प्रस्तुत करता है। समस्त दुर्व्यसन

होकर आचरण करने वाले पुरुष-पात्र देखे जा सकते है। भारतीय सस्कारो के पात्र परम्परागत भारतीय आचार-विचारशीलता को प्रस्तुत करते हैं। 'कृष्णकली' का प्रवीर इसी कोटि का पुरुष पात्र है। देश-विदेश घूमकर भी यह पूरा सस्कारी भारतीय है। 'अम्मा ने बडे गर्व से कहा था, मेरा लल्ला, मेरा सस्कारी बेटा है। जब देश-विदेश घूमकर भी उसका जनेऊ उसके साथ रहा तो क्या अपनी देहरी मे लौटकर उसे तोड देगा?'[81]

भारतीय सस्कारो से बंधे हुए ब्राह्मण पात्र भोजन के सम्बन्ध मे विशेष परहेज और विधि-निषेधो का पालन करते है 'श्मशान चम्पा' के लोकमणि पत यात्रा के समय पत्नी के हाथ की बनाई हुई गुड पापडी खाकर गुजारा करते हैं। दिन डूब जाने पर सध्या वदन किए बिना कुछ भी नही खाते है। अपने सस्कारो को स्पष्ट करते हुए कहते है 'नही धुर्मैणी, दिन डूब गया है अब तो मैं बिना सध्या किए कुछ नही खाऊँगा। तुम तो जानती हो, अपनी बामणी को छोड, मैंने आज तक किसी के हाथ का दाल-भात नही खाया। मुसद्दी के रस मे आटा गुंधकर अगर चार पूडी तल दोगी, तो काम चल जाएगा। दूध के गुंधे आटे म भी मेरी श्रद्धा नही रही। जानती तो हो शुद्ध दूध कहाँ मिलता है आजकल! मुसद्दी के रस मे तो किसी मिलावट का डर नही रहता।'[82] अपने को कुलीन ब्राह्मणवश का मानने वाले लोकमणि पत शुद्धाचारी के पक्षधर हैं। एकादशी का व्रत करते है और उस दिन किसी और से छू दिए जाकर भ्रष्ट नही होने देना चाहते। 'बस कर बस कर मुझे मत छूना। आज एकादशी है। भ्रष्ट करोगी क्या मुझे।[83] 'मुझे माफ करना' का सेठ भी सध्या, जनेऊ, अर्पण मे विश्वास करता है। यद्यपि यह सिर्फ प्रदर्शन के लिए अधिक था, आस्थापूर्ण आचरण का सत्य नही था। 'सध्या, जनेऊ, अर्पण आदि पर उनकी श्रद्धा थी, परन्तु मैंन कभी उन्ह कर्मकाण्ड मे रस लेते नही देखा। बैठकर विधिवत् उन कार्यों के लिए जो धैर्य चाहिए, उसका उनम अभाव था। जनेऊ-भर आस्था से पहनते थे।'[84]

जातीयता एव अस्पृश्यता की भावना भी इन पुरुषो मे दृष्टिगत होती है। 'नयना' उपन्यास म हिन्दुओ की अस्पृश्यता की भावना को विस्तारपूर्वक उभारा गया है। मेहतर की लडकी को छूना पाप समझने वाले, उन पर अत्याचार करने वाले, उन्ह अपने से कही नीचा समझने वाले गुसाईं जी, रामभरोसे चौधरी जी आदि पुरुष पात्र छुआछूत के आधार पर अपने आचरण को प्रस्तुत करते है। 'अरे साहब इसे कैसे छू सकते हैं? यह तो मेहतर की लडकी है। नही तो दो धौल लगाकर भगा न देता। बडा गजब हो गया, इसने आपको छू डाला। आपको फिर से स्नान करना पडेगा।'[85]

दूसरी ओर इन उपन्यासो के प्रायः सभी शिक्षित युवा पुरुष पाश्चात्य सभ्यता के पक्षधर हैं। वैसा ही जीवन जीने वाले ये पुरुष भारतीयता की पहचान को लगभग

भुला चुके है। आधुनिक जीवन मूल्यों को स्वीकार करते हुए शराब, जूआ, स्वच्छन्द यौनाचार, क्लब, होटल सभी को आत्मसात् करते हुए जीवन जीते हैं। इनमे भौतिकवादी सुख-सुविधाओं के उपभोग की प्रबल प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। प्राय सभी युवा इसी मान्यता के पोषक हैं और तदनुरूप आचरण करते हैं। चिन्तन के द्वारा अपनी इन मान्यताओं का पोषण भी करते है। 'प्रिया' का मनसिज इस रॉकेट एज मे बैलगाडी पर सफर करना पसन्द नही करता है। कहता है—'एण्ड आई बिलीव इन नो इनहिबिशिन्स आर टैबूज। चाद पर जा उतरने के इस 'रॉकेट एज मे मैं तो बैलगाडी पर सफर नही कर सकता। और मन्दिर मे किसी पत्थर की प्रतिमा के सामने आँखें मूँदने के ढोग से, तुम्हारी जैसी जीती-जागती हाड मास की प्रतिमा की आँखों मे डूब जाना मनसिज की क्लियर-कट फिलॉसफी है।'[86]

क्षेत्रीय संस्कारों के आधार पर चित्रित पुरुष-पात्र

क्षेत्र-विशेष मे रहने वाले व्यक्ति के चिन्तन पर उस क्षेत्र के परिवेश का पूरा प्रभाव परिलक्षित होता है। इन उपन्यासो के पुरुष-पात्रो के चिन्तन मे भी उसकी छवि स्पष्ट ही परिलक्षित होती है। परिवेश की भिन्नता के कारण चित्रित पुरुषो के सोच व आचरण की भिन्नता स्पष्ट दिखाई देती है।

महानगर के पुरुष-पात्र

महानगरो मे रहने वाले पुरुषो के चिन्तन एव आचरण पर वहाँ की सामाजिक एव भौगोलिक स्थितियो का पूरा प्रभाव दृष्टिगत होता है। सर्वाधिक प्रभाव अलग अलग महानगरो के जीवन स्तर के अन्तर का पडा है। 'बेघर' का परमजीत, 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर दोनो ही बम्बई को दिल्ली से बेहतर समझते हैं। परमजीत पुरानी दिल्ली की पुरानी आबादी म पलकर बडा होता है। मित्रो की ही भाँति बम्बई को वह समुद्र, फिल्म और लडकिया स जोडता है। जबकि दिल्ली उस गदगी का शहर नजर आता है। 'उन्होने बम्बई फिल्मा मे देखी थी और उन्ह लगता था बम्बई मे दिल्ली की तरह दूध के लिए लम्बी कतारे नही लगती। वहाँ अँगीठियो म धूएँ नही निकलते, वहाँ सडको पर गायें गोबर नही करती और वहाँ शादी पर लाउडस्पीकर पर गाने परेशान नहीं करते।'[87] लेकिन जब वह नौकरी करने बम्बई जाता है तो सर्वथा भिन्न स्थितियाँ पाकर दु खी होता है। 'शहर का मिजाज इतना रूखा होगा परमजीत ने नहीं सोचा था। उसके सामने कभी यह समस्या आई ही नही कि अगर शहर उसे मजूर न करे तो क्या होगा? अपने शहर मे वह अपने को इस कदर घर पाता था कि उसे कभी कुछ भी अनजाना नही लगता था। पर यह शहर उसके लिए नितान्त अपरिचित था, उसके घरेलूपन व बेफिक्र आरामपसन्दी के लिए चुनौती।'[88] जोगेन्दर नौकरी के अवसरो का अभाव एव जीवन यापन के लिए अनुकूल अवसरो की कमी के बावजूद बम्बई को दिल्ली से अच्छा समझता है। इस

वात के लिए हालांकि उसके पास कोई तर्क नही है। [illegible] पसन्द हो, इन बातो का मेरे पास कोई तर्क नही।'[89] तथापि दिल्ली के पिछडेपन से इसे कोफ्त होती है। 'वह एक डेकेडेण्ट सिटी है। लाख उसके विकास की योजनाएँ बनती रह, वहाँ बसा मे उतनी ही भीड रहेगी। और कनॉटप्लेस मे उतने ही जेबकतरे।'[90]

महानगर म बसन वाला के सामन आवास व आवागमन व भीड भरे माहौल म अपनी स्वतत्र सत्ता बनाए रखने इत्यादि की अनेक समस्याएँ रहती हैं। उनम तालमेल बैठाने की चेष्टा के कारण महानगर के व्यक्ति के जीवन का एक सुनिश्चित ढर्रा बन जाता है। उसम उलटफेर हाते ही उनका सारा जीवन अस्तव्यस्त हो जाता है। इन उपन्यासो के पुरुष-पात्र उन समस्याओ एव तद्विपयक आत्मानुभूतियो को भी सुन्दरता से अभिव्यक्त करते है।

विजयेश की दृष्टि म बडे शहरा म नौकरी मिल सकती है, सिर छुपान की जगह नही। 'बडे शहरो की यही मुसीबत है। यहाँ नौकरी मिल सकती है पर सिर छिपाने को टपरिया मिलना मुश्किल है।'[91] इसी प्रकार यातायात की कठिनाइयाँ, जुलूस, राशन की पक्तियाँ, बस के धक्के, खोखला व्यक्तित्व, भीड म एकाकीपन, मुखौट आदि बातें महानगरीय जीवन जीने वाले लोगो की जीवन नियति बन जाती है। इन उपन्यासो के पुरुष पात्र परमजीत, मधुकर, विजयेश, महिम, इन्द्रजीत आदि उन समस्त जीवन स्थितियो के भोक्ता है और अपन चिन्तन के रूप म कही कही महानगरीय स्थितियो को एव उनके परिप्रेक्ष्य मे निर्मित होने वाली आचार सहिता का साकार रूप प्रदान करते है।

नगरो के पुरुष-पात्र

इन उपन्यासो मे शहरो की स्थितियो का अधिक विस्तार नही मिला है। यही कारण है कि महानगरो की पीडा से ग्रस्त पुरुषो की समता मे शहरो के पुरुष पात्रो का चित्रण कम हुआ है। महानगरो की अपेक्षा शहरो म पाई जाने वाली शान्ति सभी के लिए आकर्षण का कारण बनती है। मधुकर दिल्ली से बैंगलोर जाता है और उसे पसन्द करता है। 'सचमुच पैंतीस साल दिल्ली मे रहकर मैंने बेकार बर्बाद कर डाले। रहने की जगह तो बैंगलूर है।'[92] किन्तु अविकसित महानगरीय जीवन बोध के अभाव म नगरो के लोग महानगरीय जीवन की नकल करने की चेष्टा म अधकचरी सभ्यता म जीवन यापन करते है। शहरो म रहकर एक ओर वे आधुनिकता को पकडने की चेष्टा करते हैं तो दूसरी ओर परम्परित धार्मिक, सामाजिक, आदर्शों का छोड सकना उनके लिए सम्भव नही हो पाता।

बदायूं म सोमजी जब मानती के विरुद्ध अवैध सन्तान को धारण करन का प्रचार

करते है तो वहा उसे पर्याप्त समर्थन मिलता है। विश्वेश इसी आधार पर बडे शहरो के जीवन को पसन्द करता है। 'बडे शहर मे रहना अच्छा रहता है। बदायूँ मे तुम्हे कितनी दिक्कत हुई। बडे शहरो मे बडी बात भी छोटी हो जाती है। किसी को किसी की तरफ ध्यान देने की फुरसत नही रहती।'[93]

'इन्नी' का साहिल हिन्दू लडकी इन्नी से विवाह करता है, किन्तु वह जानता है कि बडे शहर ने तो उनकी शादी को झेल लिया है, लेकिन भोपाल जैसे शहर मे ऐसा होना सम्भव नही था। 'दिल्ली और भूपाल मे वही अतर है, जो अकबर और औरगजेब मे था, या जो कबीर और पैगम्बर मे था। ये लोग हमारी दोस्ती बर्दाश्त कर लेते हैं पर क्या शादी बर्दाश्त करेंगे।'[94] जोगेन्दर इलाहाबाद को शिक्षा, राजनीति की ही भाँति धर्म के व्यापार केन्द्र के रूप मे पाता है। 'शिक्षा और राजनीति ही नही यह शहर धर्म का भी व्यापार केन्द्र था।'[95] इस प्रकार शहर के पुरुष पात्र मिली-जुली अधकचरी जिन्दगी जीते हैं। महानगरो की तेज तर्रार जिन्दगी को आत्मसात् न कर पाने की विवशता को स्वभाव की तेजी से पूरा करने की चेष्टा करते है।

ग्राम्यांचल के पुरुष-पात्र

ग्रामीण प्रदेश के पुरुषो मे अशिक्षा, जमीन के लिए झगडा करने की प्रवृत्ति, पुरातनता का मोह, जातीय स्वाभिमान, गरीबी एव अभावों मे भी सहजता एव भोलापन आदि प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं। लेखिकाओ ने ग्राम्यांचल के पुरुष-पात्रो को अधिक स्थान नही दिया है तथापि इने-गिने पुरुषो के द्वारा उनके उपर्युक्त भावो का प्रकाशन ही होता है। इन्हीं भावो के आधार पर ग्रामीण पुरुषो के आचरण मे अनेक रूप दृष्टिगत होते हैं। जमीन के प्रति मोह एव उसके लिए झगडा करने की प्रवृत्ति 'भीगेपख' के ठाकुर एव चौधरी मे दृष्टिगत होती है। ठाकुर बाप दादो की जमीन को आसानी से देना नही चाहता और उसके लिए झगडा करने को उद्यत है। 'पुरखन की जमीन को एक-एक टुकडा भी मैं खून बहाए बिना काऊ को छुअन नही देऊँगो। सुनी है कि तैं रन वूँ तालाब बनवावेगा, सो तेरे लाडले तेरेई खून म न तैरें तो मैं ठाकुर नईं।'[96] यही विचार ठाकुर और चौधरी के मनमुटाव का कारण बनता है जो क्रमश पुश्तैनी झगडे का रूप ले लेता है।

('डार से बिछुडी' म ग्रामीण पुरुषो का जातीय अह उपन्यास की कथा को मुख्य दिशा प्रदान करता है। वे अपनी बहिन से अत्यधिक प्रेम करते है, लेकिन जब वह शेखो के घर बैठ जाती है तो जातीय स्वाभिमान के कारण वे भाई ही उसके शत्रु हो जाते है। बहिन के प्रति प्रकट रोष को भानजी पर उतारते हैं। भानजी को फूल की तरह रखने वाले मामा उसे पीटने, भूखा रखने, गालियाँ बकने म सकोच नही करते।

'इस मुँह उसका नाम न लूँ बिटिया, उमी की करनी तुझे भरनी थी। तेरे दाना मामू उसे कितना मानते थे, यह लोक-जहान जानता है, पर वह नासहोनी तो घर-भर का मुँह काला कर गई।'[97]

ग्रामीण पुरुषो का तीसरा रूप गरीबी और विवशता के बीच भी सहजता और भोलेपन को प्रकट करता है। 'श्मशान चम्पा' का बेनूपद कलाकार इसी कोटि का पुरुष है। 'उस स्नेही दरिद्र ग्रामीण के मग्ल आतिथ्य ने, चपा की सारी थकान दूर कर दी।'[98] आस्था का सच्चा रूप इसमे प्रत्यक्ष है। व्यवहार म सहज खुलापन और आचरण म शुभ्रता इसे भोले भाले ग्रामीण का प्रतिरूप बना देते है। 'मैरवी' का मैंपा भी ऐसा ही भोलाभाला ग्रामीण है।

ग्राम्याचल के पुरुषो का चौथा रूप 'अनामा' उपन्यास के पुरुषा मे दृष्टिगत होता है। पुरातन के प्रति अत्यधिक मोह एव आधुनिक जीवन स्थितियो से समायोजन न कर पाने की भावना का स्फुरण इनम हुआ है। नायिका के परिवार के पुरुष पात्रो का चिन्तन इसी आधार पर निर्मित हुआ दृष्टिगत होता है। इस प्रकार ग्राम्याचल के पुरुष सख्या मे कम होते हुए भी उस परिवेश म पुरुष के आचरण की भूमिका को सबल ढग से चित्रित करते हैं।

पर्वताचल के पुरुष-पात्र

शिवानी के उपन्यासा म गढवाली लोक-जीवन की विस्तृत अभिव्यक्ति हुई है। इनके उपन्यासो के पुरुष-पात्र पर्वताचल के पुरुषो के स्वरूप को प्रकट करते हैं। इन सभी पात्रो मे सस्कारशीलता और प्राचीन परम्परित मान्यताओ के प्रति दृढ आस्था है। अपना समाज और अपने प्रदेश के प्रति विशेष मोह है और सास्कृतिक परम्पराओ के प्रति दृढ आस्था है। इनसे मुक्त होना इनके लिए सहज नही है। 'समाज और रक्त, का सम्बन्ध विकट होता है शिवदत्त, अभी तुम्हारे पास साधना की प्रचुरता है, तुम्हारा वैभव असीम है पर एक दिन इस राजसी सुख के बीच तुम सहसा अपने देश और अपनी जन्मभूमि के लिए व्याकुल हो उठोगे।'[99] 'चौदह फेरे' का कर्नल विदेशी सभ्यता और चाल ढाल को अपनाकर भी अपनी पुत्री का पहाडी अदब-कायदे मे पूरी तरह अवगत देखना चाहता है। 'एक बार पहाड जाकर पहाडी अदब-कायदे और समाज से बेटी को परिचित कराना होगा। समाज और आत्मीय स्वजनो स नाता क्या सहज मे ही तोडा जा सकता है?'[100] रीति रिवाजा का पालन, सस्कार-शीलता, रहन सहन की विशिष्टता इत्यादि बातें इस क्षेत्र के पुरुष पात्रो के व्यक्तित्व का अनिवार्य अंग बनकर प्रस्फुटित हुई हैं। 'श्मशान चम्पा' के प रामदत्त, 'चौदह फेरे' के दद्दा, 'मायापुरी' के मामा, 'कैंजा' के गदाधर भट्ट, 'कृष्णकली' के रवनीशरण तिवारी इत्यादि प्राय एक ही पुरुष-पात्र के अलग-अलग रूप दिखाई

पड़ते हैं। इनका व्यवहार पर्वतांचल के क्षेत्रीय संस्कारों में पगे हुए पुरुषों को सक्षम अभिव्यक्ति देता है।

विदेश गमन किए हुए पुरुष-पात्र

इन उपन्यासों में विदेश गमन किए हुए पुरुषों की अभिव्यक्ति भी हुई है जिनकी जीवन दृष्टि, आचार-विचार, निजी मान्यताएँ विदेशी सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से कहीं परिवर्तित हुई हैं तो कहीं उन पर किसी प्रकार का असर नहीं हुआ है। इसलिए ऐसे पुरुष पात्रों को दो रूपों में देखा जा सकता है। विदेश जाकर लौटे हुए पुरुष-पात्रों का पहला वर्ग उन पुरुषों का है जिनमें किसी भी प्रकार का कोई परिवर्तन नजर नहीं आता है। विदेश प्रवास से पूर्व और पश्चात् का उनका आचरण एक सा है। 'कृष्णकली' का प्रवीर, 'मायापुरी' का सतीश, 'मुग्धा' का मधुजय, 'अपनाघर' का दानिएल इसी कोटि के पुरुष-पात्र हैं जिन पर विदेशी प्रवास का कोई विशेष प्रभाव परिलक्षित नहीं होता।

विदेश गमन कर लौटे हुए पुरुष-पात्रों का दूसरा वर्ग उन पुरुषों का है जिन पर विदेशी प्रवास का प्रभाव परिलक्षित होता है। सर्वप्रथम उनके समक्ष दो विपरीत संस्कृतियों में अपने आपको खपाने की समस्या आती है। 'रुकोगी नहीं राधिका' का मनीष ऐसे व्यक्ति की मन स्थिति को विश्लेषित करते हुए कहता है कि ऐसी स्थिति में पड़ा हुआ व्यक्ति 'रिवर्स कल्चरल शॉक' से ग्रस्त रहता है। 'जब हम अपना देश छोड़कर बाहर जाते हैं, तो पहले छह महीने हम एक कल्चरल शॉक के दौरान बिताते हैं, जबकि हर कदम पर हमें अपना देश, अपनी संस्कृति ऊँची दिखायी देती है। फिर हम उस देश में रहने के आदी हो जाते हैं। दो साल, ढाई साल, उस नये देश में रहकर उसके रीति-रिवाज के आदी होकर हम अपने देश वापस आते हैं, तो हमें एक धक्का दुबारा लगता है। रिवर्स कल्चरल शॉक।'[101] मनीष यद्यपि इस शॉक को झेलने के लिए पहले से तैयार होकर लौटता है तथापि यहाँ की स्थितियों में अपने को दुबारा एडजस्ट करने में उसे कठिनाई अवश्य महसूस होती है। 'और अब यह उसका अपना देश था, पर कहाँ थे वे लोग, क्या मनीष, प्रवीण, मिस और वह स्वयं, किसी भी प्रकार अपने देश का प्रतिनिधित्व करते थे? राधिका को लगा कि जैसे वे पुतले हैं और एक विशेष प्रकार के आचरण करने के आदी हो गये हैं।'[102] प्रवीण पूरी तरह विदेशी सभ्यता में रंग जाता है और यहाँ के रहन-सहन का ही नहीं भाषा तक को भूल जाता है।

विदेश से लौटे हुए योग्य व्यक्तियों में अपनी योग्यता के अनुरूप सेवा व अवसर इस देश में न मिलने की कुण्ठा भी है। मनीष की यही कुण्ठा है। दिवाकर में यह कुण्ठा क्षोभ के माध्यम से प्रकट हुई है। 'दिवाकर से सावधान रहना राधिका, ये असन्तुष्ट

भारतीय सघ के प्रधान हैं।'[103] योग्यता रखते हुए भी अपने आपको उपहास्यास्पद स्थिति मे पाकर वह विचित्र दशा मे पड़ा हुआ पाता है लेकिन राष्ट्रीयता के मोह के कारण इस देश को छोड़ नही पाता। 'मेरी बीवी कहती है कि हमें अपने देश के लिए त्याग करना चाहिए। हमे अपने देश मे ही रहना चाहिए, अपने बच्चो का भविष्य देखना चाहिए।' पर मैं पूछता हूँ कि मेरे देश मे मेरे लिए क्या है?'[104] इस प्रकार विदेशी प्रवास से लौटे हुए ये पात्र परिवर्तित मन स्थितियो को प्रस्तुत करते हैं और ऐसी स्थिति मे कुण्ठित होने वाले या अपनी पहचान को भूल जाने वाले पुरुष-पात्रो का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं।

विदेशी पुरुष-पात्र

इन उपन्यासो के विदेशी पुरुष-पात्रो के आचरण का स्वरूप भारतीय परिवेश मे पल पात्रो के आचरण से सर्वथा भिन्न है। इनमे 'रुकोगी नही राधिका' का डैन और रोहिनी, 'नयना' का अग्रेज कलेक्टर पीयर्सन, 'कृष्णकली' मे पर्यटक रूप मे आए हुए विदेशी पुरुष-पात्र प्रमुख है। डैन अधेड आयु का है और जीवन की विविध स्थितियो का विश्लेषण सम्बन्धो के सामाजिक सदर्भ से न करके वैयक्तिक धरातल पर करता है। व्यष्टिचेतना को सम्मान देने वाला यह पात्र आत्मविचारो को तर्क के आधार पर प्रस्तुत करता है। पत्नी को छोडकर अलग रहता है और राधिका को अपनाता है। विवाह को एक कॉन्ट्रैक्ट समझता है जिसके द्वारा पति-पत्नी अपनी-अपनी आकाक्षाओ की पूर्ति देखना चाहते हैं। 'राधिका, तुम मुझमे अपना पिता ढूँढ रही थी, वही पिता जिसे त्रास देने के लिए तुम मेरे साथ चली आयी थी। पर मैंने तुम्हारे पिता की जगह स्थापित नही होना चाहा, मैं तो स्वतत्र व्यक्तित्व हूँ। और मैं तुममे अपना यौवन ढूँढ रहा था। पर शायद हम दोनो ही सफल नही हुए।'[105] इसलिए मन न मिलने पर राधिका को अमेरिका मे एकाकी छोड देने म इसे किसी प्रकार का सकोच नही होता है।

इन विदेशी पुरुषो मे सेक्स के सम्बन्ध मे उन्मुक्त व्यवहार करन की प्रवृत्ति है। पत्नी स बिछुड कर डैन, राधिका को अपनाता है पर एक वर्ष के भीतर-भीतर ही उसे छोडकर अन्यत्र चला जाता है। 'नयना' का पीयर्सन पत्नी स दूर रहने पर हरिजन बालिका नयना से यौन सम्बन्ध स्थापित करता है। 'कृष्णकली' के विदेशी पर्यटक सेक्स को जीवन की कोई बाधा नही मानते। इतने उन्मुक्त की स्त्री या पुरुष के अन्तर को नकारते हुए यौन सम्बन्ध स्थापित करते हैं। 'तुमसे कहा न मैंने, हमारे दल म सेक्स इज नो बार। न हममे कोई स्त्री न पुरुष।'[106]

भारतीय सस्कृति एव भारतीयो के रहन-सहन, जीवन दर्शन के सम्बन्ध मे इनकी मान्यताएँ दो रूपो मे प्रकट हुई हैं। पहली मान्यता के अन्तर्गत इनमे उनके प्रति

अरुचि और घृणा का भाव है। ये विदेशी पुरुष अपनी सांस्कृतिक स्थितियों को अच्छा मानते हुए भारतीयता को नकारते हैं। 'रुकोगी नहीं राधिका' के रोडिनी की दृष्टि में भारत एक गरीब देश है, गंदगी का ढेर, जहाँ नैतिकता नाम की कोई चीज नहीं है। 'और भारतीय नैतिकता, आप बुरा न मानिए, सड़क पर चलना मुश्किल।'[107] पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति की तुलना करते हुए कहता है 'हमारी सभ्यता में स्त्री-पुरुष की मैत्री बहुत नैसर्गिक, अकृत्रिम समझी जाती है। यह जीवन साथी चुनने की एक पद्धति है। पर वही काम धन के लिए करना दूसरी कैटेगरी में आ जाता है। और फिर हम लोग अपने आत्मिक ज्ञान को बघारते नहीं। ठीक है हम भौतिकवादी हैं और उसे स्वीकार करते हैं।'[108] पीयर्सन हिन्दुस्तानी लोगों की अस्पृश्यता की प्रवृत्ति से घृणा करता है और इस आधार पर उसके आचरण को हेय समझता है। 'ये हिन्दुस्तानी लोग भी अजीब होते हैं। समझते हैं सारी दुनिया के लोग इनकी मान्यताओं से प्रभावित हैं।'[109]

'रुकोगी नहीं राधिका' का डैन भारतीय परिवेश में स्त्री पुरुष के नैसर्गिक प्रेम के लिए अनुकूल वातावरण के अभाव की प्रवृत्ति का विरोध करता है। राधिका जब अपने पिता के पुनर्विवाह को अजूबे के रूप में लेती है तो यह भारतीय परिवेश की इस कमी का उद्घाटन करता है। 'इसका कारण तुम्हारा व्यक्तित्व और परिवेश है राधिका। माँ के मरने के बाद तुम्हारा पिता के प्रति लगाव बहुत कुछ एब्नार्मल हो गया। यदि भारतीय परिवेश में तुम्हें प्रारम्भ से ही युवा मित्र बनाने की सुविधा होती तो ऐसा न होता। तब तुम्हें प्रसन्नता होती कि तुम्हारे पिता ने जीवन में फिर सुख पाया।'[110]

दूसरी कोटि के विदेशियों में भारतीय भोजन, रीति-रिवाज, मन्दिरों, संस्कारों के प्रति विशिष्ट आकर्षण का भाव परिलक्षित होता है। विदेशी पुरुषों के इस आकर्षण के भाव को भारत में भ्रमणार्थ आए 'कृष्णाकली' के पर्यटकों के माध्यम से सुन्दरता से प्रस्तुत किया गया है। इनमें योग का आकर्षण है और साधुओं के संसर्ग में चरस, गाँजे का दम भी ये भर लेते हैं। 'ये विदेशी एक से एक लक्षाधिपतियों के सभ्य पुत्र, मानवीय सभ्यता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचकर फिर किस वहशी सभ्यता के आदिम स्रोत को छूने स्वेच्छा से अनजान घाटियों की ओर लुढ़कते जा रहे थे।'[111] भारतीय भोजन का आकर्षण भी इन्हें है। सरदारजी के गन्दे, सस्ते होटल में बड़े-बड़े अल्युमीनियम के पतीलों में घोटे जा रहे सुस्वादु भोजन की सुगन्ध लपटें इन्हें अपनी ओर खींच ले जाती हैं। 'टिपिकल इण्डियन करी एण्ड टिपिकल इण्डियन चेफ' कहकर मुस्कुराती मंडली जम गई।[112] श्मशान में जलती चिताओं को देखना इनके लिए पिकनिक मनाने जैसा रोमांचक व आनन्ददायक है।

इस प्रकार क्षेत्रीय संस्कार के आधार पर पुरुषों के अनेक रूप इन उपन्यासों में चित्रित हुए हैं। उनका आचरण क्षेत्र विशेष के संस्कारों से संचलित दिखाई पड़ता है। महानगर के पात्रों में वहाँ की जीवन स्थितियों के बोध से भी अधिक ऐसे दो महानगरों की तुलना का भाव अधिक है। महानगर की विविध समस्याओं में से आवास एवं मानवीय अस्तित्व की चेतना के बोध का भाव अवश्य इन उपन्यासों में चित्रित हुआ है। अधिकांश पात्रों को दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता से सम्बद्ध करके प्रस्तुत किया गया है। वहाँ की जीवन स्थितियों के भोक्ता के रूप में उनका चित्रण विस्तारपूर्वक नहीं हुआ है। नगरों के पुरुषों की संख्या कम है फिर भी महानगरों की समता में वहाँ की शान्ति तथा संस्कारों के साथ जुड़े रहने का भाव इस दृष्टि से अधिक विस्तार से वर्णित हुआ है। ग्रामीण पुरुषों की संख्या तो और भी कम है। यह लेखिकाओं के सम्पर्क क्षेत्र की सीमा को संकेतित करता है। ऐसे परिवेश में चित्रित पुरुषों में बाप-दादों की जमीन के लिए झगड़ा करना, जातीयता को प्राथमिकता देना, पुरातनता के प्रति मोह एवं गरीबी-असहायता में भी भोलेपन को अपनाए रखना इत्यादि विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। पर्वतांचल के पुरुषों में भारतीय परम्परित संस्कारों के प्रति अन्धश्रद्धा का भाव अधिक है। विदेश गमन किए हुए पुरुषों में से कुछ अपरिवर्तित विचारों के रहते हैं तो कुछ में उनकी विचार धारा इतनी बदल जाती है कि वे भारतीयता की पहिचान ही खो देते हैं। विदेशी पुरुषों में जीवन स्थितियों की भौतिकवादी, यथार्थपरक व्याख्या का भाव, सेक्स के प्रति स्वतंत्र व्यवहार, भारतीय स्थितियों के प्रति घृणा, उपेक्षा अथवा श्रद्धा का भाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार लेखिकाओं के उपन्यासों के पुरुष पात्रों में क्षेत्रीय संस्कारों के आधार पर आचरण एवं चिंतनगत वैभिन्न्य देखा जा सकता है।

सामाजिक वर्गों के आधार पर चित्रित पुरुष-पात्र

वर्ग चेतना को एक विशिष्ट सामाजिक प्रक्रिया का स्वरूप प्रदान करने का प्रयास कार्ल मार्क्स ने किया। इससे उत्पादन में वृद्धि के साथ वैयक्तिक सम्पत्ति की भावना का प्रसार हुआ जिसके परिणाम स्वरूप वर्ग-भावना का विकास हुआ। मार्क्स ने आर्थिक आधारों पर सामाजिक वर्गों को दो रूपों में विभाजित कर प्रस्तुत किया 'बोर्जुआ' (शोषक वर्ग) और 'प्रोलिटोरियेट' (शोषित वर्ग)। शोषक और शोषितों के वर्ग संघर्ष से ही कालान्तर में तीसरे वर्ग, मध्यवर्ग, का उदय हुआ। आधुनिक काल में सामाजिकों को इन्हीं तीन वर्गों में विभाजित कर उनके आचरण को प्रस्तुत किया जाता है। इन उपन्यासों में भी तीनों वर्गों के पुरुष-पात्रों में उनकी वर्ग चेतना के दर्शन होते हैं। फलत सामाजिक वर्गों के आधार पर पुरुषों के तीन रूप इस प्रकार देखे जा सकते हैं।

उच्चवर्ग के पुरुष-पात्र

उच्च या आभिजात्य वर्ग के अनेक पुरुष-पात्र इन उपन्यासों में प्रस्तुत हुए हैं। 'सोनाली दी' में जीवन दास, 'रुकोगी नहीं राधिका' में राधिका के पापा और भाई, 'मुझे माफ करना' का नायक सेठ, 'सूखी नदी का पुल' का रायसाहब, 'काली लड़की' का कमल, 'कृष्णारली' के राजा गजेन्द्र, विद्युतरंजन और पाण्डेजी, 'मायापुरी' के तिवारी जी, 'श्मशान चम्पा' का सेनगुप्ता, 'अमलतास' के महाराजकुमार और हरदेवलाल, 'नष्टनीड़' के मि चौधरी, 'सेडोज क्लब' में धी गडेविया, 'माम के मोती' में सेठजी इत्यादि इसी वर्ग के पात्र कहे जा सकते हैं। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न ये पात्र वैभव और महिमामण्डित जीवन जीते हैं। आचरण की दृष्टि से इनके दो रूप दृष्टिगत होते हैं। उच्चवर्ग के अधिकांश पुरुष पात्र समृद्ध होने हुए भी शोषक नहीं बने हैं और सहज सरल जीवन यापन करते हैं। जीवनदास, राधिका के पापा, मि चौधरी, गडेविया इत्यादि इसी कोटि के पात्र हैं।

दूसरी कोटि के आभिजात्यवर्गीय पात्र वे पुरुष हैं जिनमे धन का अहंकार, शोषण की वृत्ति और प्रदर्शनप्रियता अधिक है। विद्युतरंजन, गजेन्द्र, पाण्डजी, तिवारीजी, सेनगुप्ता, महाराजकुमार, रायसाहब, हरदेवलाल, सेठजी इत्यादि इसी कोटि के पात्र हैं। विद्युतरंजन बगाल की छोटी सी रियासत का राजकुमार है और अपने धन सौंदर्य से सब पर छा जाता है, पर शोषण की वृत्ति को छोड़ नही पाता। राजा गजेन्द्र, महाराजकुमार आदि भी राजाओं के अहंकार का प्रदर्शन करते हैं। सेनगुप्ता, सेठजी बड़े-बड़े उद्योगपति हैं। सुविधाभोगी जीवन यापन करने वाले ये लोग शोषकों के प्रतिरूप बने दृष्टिगत होते हैं। तिवारीजी, पाण्डेजी राजनेताओं के राजसी रूप को प्रस्तुत करते है। इस प्रकार उच्चवर्ग के पुरुष-पात्रों में वर्गगत अहंकार, सुविधाभोगी जीवन यापन की रुचि इत्यादि प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती है।

मध्यवर्ग के पुरुष-पात्र

इन उपन्यासों मे से अधिकांश का कथानक मध्यवर्गीय पात्रों की कहानी प्रस्तुत करता है। अत इनमें मध्यवर्गीय पात्रों का बाहुल्य है। फिर भी मध्यवर्ग की चेतना का प्रत्यक्ष निरूपण इनमे बहुत कम हुआ है। 'सोनाली दी' का इन्द्रजीत इस दृष्टि से प्रतिनिधि पुरुष पात्र कहा जा सकता है। शोषकों के प्रति इसमे विरोध का भाव है। रानू की ओर आकर्षित होते हुए भी उसके वर्गगत सस्कारो का विरोधी है। और यह दम्भ पाले हुए है कि वह श्रमजीवी वर्ग का सदस्य है। 'श्रमजीवी ! मैं शाम को दो घण्टे एक प्रकाशक के यहाँ प्रूफ पढ़ता हूँ तो मुझे भोजन मिलता है। कॉलेज की पढ़ाई चलती है, तुम्हारे पास बैठकर जो कॉफी पी रहा हूँ, इस अमीरी का अधिकारी मैं नही हूँ।'[113] पूँजीवादी वर्ग के प्रति उपेक्षा का भाव भी इसमे है और वह रानू को इसी आधार पर अपमानित भी करता है। 'मैं जानता हूँ तुम मेरे वर्ग की

नहीं हो, तुम्हारा सौंदर्य पूँजीवादी समाज का है।'[114] व्यक्ति के आचरण को बुर्जुआ, सर्वहारा आदि वर्गों में बाँटकर उपस्थित करने की प्रवृत्ति भी इस वर्ग के पात्रों में है। 'नरक दर नरक' का विनय इसी आधार पर जोगेन्दर को 'तुम पेटी बुर्जुआ हो' कहता है।'[115] और 'सोनाली दी' का नील कमल भी इन्द्रजीत को बुर्जुआ घोषित करता है। 'इन्द्रदा तुम बुर्जुआ हो। रानू दी को देखकर तो बिल्कुल 'बुर्जुआ' बन जाते हो। तुम वास्तव में जो हो वही बन जाते हो।[116]

ऐसी मध्यवर्गीय चेतना के साथ ही पात्रों में इस वर्ग की विशेषताएँ भी हैं जो उनके आचरण को अनेकरूपता प्रदान करती हैं। मध्यवर्ग के पात्रों का पहला रूप, जो अधिक विस्तार से वर्णित हुआ है, व्यवस्था एवं स्थितियों के प्रति असन्तोष एवं तीव्र आक्रोश के रूप में प्रस्तुत हुआ है। 'उसके हिस्से की धूप' का मधुकर, 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर एवं उसके मित्र बैजनाथ, साहिल इत्यादि इसी कोटि के पात्र हैं। मधुकर व्यवस्था में जूझकर क्रान्ति का प्रबल का समर्थक है। दलित वर्ग के उत्थान का स्वप्न देखता है 'आखिर कब तक मजदूर अपना शोषण करवाते रहेंगे।'[117] और शोषकों का विरोध करता है। 'श्रमिकों का संचालन हम क्या करेंगे वे तो आपकी मुट्ठी में हैं, और अवसरवादी राजनीतिज्ञ भी आपके ही चट्टे-बट्टे हैं।'[118] जोगेन्दर और उसके मित्र स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारतीय परिवेश में व्याप्त अव्यवस्था के शिकार हैं। असन्तोष और कुण्ठा में जीवन जीते हुए संघर्ष की भूमिका निभाते हैं।

जोगेन्दर के चिन्तन के द्वारा ही पेटी बुर्जुआ और जनवादी लेखकों के परस्पर वैषम्य को उभारा गया है। इस प्रकार पेटी बुर्जुआ चिन्तन की भर्त्सना की गई है।'बस मुझे यही समझा दो तुम जनवादी कैसे हो और मैं बुर्जुआ कैसे ? तुम्हारी बीवी की डिलीवरी भी उसी अस्पताल में होती है जिसमें मेरी बीवी की, तुमने भी जीवन-बीमा की वही भीम साला पॉलिसी ले रखी है जो मैंने, तुम्हारे बच्चे भी उसी स्कूल में पढ़ते हैं जिसमें रायसाहब हरिमोहन सिंह के, तुम्हारे भी घर दीवाली पर लक्ष्मी-पूजन होता है, तुम्हारे घर भी बीमारी में शहर का सबसे अच्छा डाक्टर आता है ! तुम किस बिन्दु में जनता की आवाज बन जाते हो ?'[119]

मध्य वर्ग के पात्रों का दूसरा रूप अपनी योग्यता और प्रतिभा का ढिंढोरा पीटने वाले, अपने को जीनियस समझने वाले, मिथ्याभिमान और अहंभाव को पालने वाले पुरुषों में प्रस्तुत हुआ है। 'बात एक औरत की' का संजय, 'वह तीसरा' का संदीप इसी कोटि के पात्र हैं। संजय मध्यवर्गीय संस्कारों से ग्रस्त आदर्श पात्र कहा जा सकता है। यह अपने को जीनियस समझता है, संस्कारों से घृणा करता है, प्रदर्शन प्रिय है और घोर अहंकारी है। 'संजय में अहं की पराकाष्ठा रही और अहं कभी

उच्चवर्ग के पुरुष-पात्र

उच्च या आभिजात्य वर्ग के अनेक पुरुष-पात्र इन उपन्यासों में प्रस्तुत हुए हैं। 'सोनाली दी' के जीवन दास, 'रुकोगी नहीं राधिका' में राधिका के पापा और भाई, 'मुझे माफ करना' का नायक सेठ, 'सूखी नदी का पुल' का रायसाहब, 'काली लड़की' का कमल, 'कृष्णाकली' के राजा गजेन्द्र, विद्युतरंजन और पाण्डेजी, 'मायापुरी' के तिवारी जी, 'श्मशान चम्पा' का सेनगुप्ता, 'अमलतास' के महाराजकुमार और हरदेवलाल, 'नष्टनीड़' के मि. चौधरी, 'लेडीज क्लब' में श्री गडेविया, 'मोम के मोती' के सेठजी इत्यादि इसी वर्ग के पात्र कहे जा सकते हैं। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न ये पात्र वैभव और महिमामण्डित जीवन जीते हैं। आचरण की दृष्टि से इनके दो रूप दृष्टिगत होते हैं। उच्चवर्ग के अधिकांश पुरुष पात्र समृद्ध होते हुए भी शोषक नहीं बने हैं और सहज सरल जीवन यापन करते हैं। जीवनदास, राधिका के पापा, मि. चौधरी, गडेविया इत्यादि इसी कोटि के पात्र हैं।

दूसरी कोटि के आभिजात्यवर्गीय पात्र वे पुरुष हैं जिनमें धन का अहंकार, शोषण की वृत्ति और प्रदर्शनप्रियता अधिक है। विद्युतरंजन, गजेन्द्र, पाण्डेजी, तिवारीजी, सेनगुप्ता, महाराजकुमार, रायसाहब, हरदेवलाल, सेठजी इत्यादि इसी कोटि के पात्र हैं। विद्युतरंजन बंगाल की छोटी सी रियासत का राजकुमार है और अपने धन सौंदर्य से सब पर छा जाता है, पर शोषण की वृत्ति को छोड़ नहीं पाता। राजा गजेन्द्र, महाराजकुमार आदि भी राजाओं के अहंकार का प्रदर्शन करते हैं। सेनगुप्ता, सेठजी बड़े-बड़े उद्योगपति हैं। सुविधाभोगी जीवन यापन करने वाले ये लोग शोषकों के प्रतिरूप बने दृष्टिगत होते हैं। तिवारीजी, पाण्डेजी राजनेताओं के राजसी रूप को प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार उच्चवर्ग के पुरुष-पात्रों में वर्गगत अहंकार, सुविधाभोगी जीवन यापन की रुचि इत्यादि प्रवृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं।

मध्यवर्ग के पुरुष-पात्र

इन उपन्यासों में से अधिकांश का कथानक मध्यवर्गीय पात्रों की कहानी प्रस्तुत करता है। अतः इनमें मध्यवर्गीय पात्रों का बाहुल्य है। फिर भी मध्यवर्ग की चेतना का प्रत्यक्ष निरूपण इनमें बहुत कम हुआ है। 'सोनाली दी' का इन्द्रजीत इस दृष्टि से प्रतिनिधि पुरुष पात्र कहा जा सकता है। शोषकों के प्रति इसमें विरोध का भाव है। रानू की ओर आकर्षित होते हुए भी उसके वर्गगत संस्कारों का विरोधी है। और यह दम्भ पाले हुए है कि वह श्रमजीवी वर्ग का सदस्य है। 'श्रमजीवी! मैं शाम को दो घण्टे एक प्रकाशक के यहाँ प्रूफ पढ़ता हूँ तो मुझे भोजन मिलता है। कॉलेज की पढ़ाई चलती है, तुम्हारे पास बैठकर जो कॉफी पी रहा हूँ, इस अमीरी का अधिकारी मैं नहीं हूँ।'[113] पूंजीवादी वर्ग के प्रति उपेक्षा का भाव भी इसमें है और वह रानू को इसी आधार पर अपमानित भी करता है। 'मैं जानता हूँ तुम मेरे वर्ग की

नहीं हो, तुम्हारा सौंदर्य पूंजीवादी समाज का है।'[114] व्यक्ति के आचरण को बुर्जुआ, सर्वहारा आदि वर्गों में बाँटकर उपस्थित करने की प्रवृत्ति भी इस वर्ग के पात्रों में है। 'नरक दर नरक' का विनय इसी आधार पर जोगेन्दर को 'तुम पेटी बुर्जुआ हो' कहता है।'[115] और 'सोनाली दी' का नील कमल भी इन्द्रजीत को बुर्जुआ घोषित करता है। 'इन्द्रदा तुम बुर्जुआ हो। रानू दी को देखकर तो बिल्कुल 'बुर्जुआ' बन जाते हो। तुम वास्तव में जो हो वही बन जाते हो।[116]

ऐसी मध्यवर्गीय चेतना के साथ ही पात्रों में इस वर्ग की विशेषताएँ भी हैं जो उनके आचरण को अनेकरूपता प्रदान करती हैं। मध्यवर्ग के पात्रों का पहला रूप, जो अधिक विस्तार से वर्णित हुआ है, व्यवस्था एवं स्थितियों के प्रति असन्तोष एवं तीव्र आक्रोश के रूप में प्रस्तुत हुआ है। 'उसके हिस्से की धूप' का मधुकर, 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर एवं उसके मित्र बैजनाथ, माहिम इत्यादि इसी कोटि के पात्र हैं। मधुकर व्यवस्था से जूझकर क्रान्ति का प्रबल समर्थक है। दलित वर्ग के उत्थान का स्वप्न देखता है 'आखिर कब तक मजदूर अपना शोषण करवाते रहेंगे।'[117] और शोषकों का विरोध करता है। 'श्रमिकों का संचालन हम क्या करेंगे वे तो आपकी मुट्ठी में हैं, और अवसरवादी राजनीतिज्ञ भी आपके ही चट्टे-बट्टे हैं।'[118] जोगेन्दर और उसके मित्र स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारतीय परिवेश में व्याप्त अव्यवस्था के शिकार हैं। असन्तोष और कुण्ठा में जीवन जीते हुए संघर्ष की भूमिका निभाते हैं।

जोगेन्दर के चिन्तन के द्वारा ही पेटी बुर्जुआ और जनवादी लेखकों के परस्पर वैषम्य को उभारा गया है। इस प्रकार पेटी बुर्जुआ चिन्तन की भर्त्सना की गई है। 'बस मुझे यही समझा दो तुम जनवादी कैसे हो और मैं बुर्जुआ कैसे? तुम्हारी बीबी की डिलीवरी भी उसी अस्पताल में होती है जिसमें मेरी बीवी की, तुमने भी जीवन-बीमा की वही बीस साला पॉलिसी ले रखी है जो मैंने, तुम्हारे बच्चे भी उसी स्कूल में पढ़ते हैं जिसमें रायसाहब हरिमोहन सिंह के, तुम्हारे भी घर दीवाली पर लक्ष्मी-पूजन होता है, तुम्हारे घर भी बीमारी में शहर का सबसे अच्छा डाक्टर आता है! तुम किस बिन्दु से जनता की आवाज बन जाते हो?'[119]

मध्य वर्ग के पात्रों का दूसरा रूप अपनी योग्यता और प्रतिभा का ढिंढोरा पीटने वाले अपने को जीनियस समझने वाले, मिथ्याभिमान और अहम्भाव को पालने वाले पुरुषों में प्रस्तुत हुआ है। 'दान एक औरत की' का संजय, 'वह तीसरा' का संदीप इसी कोटि के पात्र हैं। संजय मध्यवर्गीय संस्कारों से ग्रस्त आदर्श पात्र कहा जा सकता है। वह अपने को जीनियस समझता है, संस्कारों से घृणा करता है, दर्शन प्रिय है और घोर अहंकारी है। 'संजय में अहं की पराकाष्ठा रही और वह इसी

गोमा से अनिर्र गहरार घमड और ऊचे होने की भावना तर जा पहुँचा। उसमे एर अजीब सा अपने बारे मे विचार जम गया कि वह असाधारण है, उसमे कोई जीनियस है जो असाधारण कार्य करवाना चाहता है, जबकि उसकी दृष्टि मे उसकी पत्नी बिल्कुल साधारण है और उसे उसके सामने अस्तित्व विहीन रहना ही चाहिए।'[120] सुदीप अहकार के कारण अपने को सर्वथा योग्य और अपने समक्ष पिता तक को कुछ भी नही गिनता है। कहता है 'डेडी वाज ए फेल्योर इन लाईफ। आइ एम सक्सेज।'[121]

सस्कारो के प्रति प्रतिबद्ध होकर नूतन जीवन स्थितियो मे ठीक स समायोजित न कर पाने से कुण्ठित जीवन जीने वाले मध्यवर्ग के पुरुष पात्रो का चित्रण भी इन उपन्यासो म हुआ है। 'कृष्णकली' का प्रवीर, 'बेघर' का परमजीत, 'मायापुरी' का सतीश, 'मित्रो मरजानी' का सरदारीलाल इत्यादि इसी कोटि के मध्यवर्गीय पुरुष पात्र है। प्रवीर अग्रेजी म एम ए है लेकिन सस्कारो पर के कारण चोटी और यज्ञोपवीत धारण किए रहता है। सस्कारो मे बधकर यह उनका उल्लघन नही करता है और किसी को ऐसा करते देख कुण्ठित भी हो जाता है। दूसरी ओर इसमे प्रदर्शनप्रियता भी है। एम्बैसी मे नियुक्त हो जाने पर साधारण वेशभूषा म जाना उसे अपमानजनक महसूस होता है। 'वाह घर के सिले कपडे पहन, एम्बेसी म चले जा रहे हैं डिप्लोमट! इतना भी नही जानती अम्मा कि कोई भी समझदार आदमी बीवी क सिले कपडे नही पहनता।'[122]

मध्यवर्ग के पुरुष पात्रो मे अवसरवादिता और स्वार्थी प्रवृत्ति का उद्घाटन 'वह तीसरा' का सदीप, 'पतझड की आवाजें' का सी के, 'रेत की मछली' का शोभन इत्यादि मे हुआ है। सदीप नौकरी मे अपने प्रमोशन के लिए पत्नी और पार्टियो को मोहरा बनाता है। विवाह की सालगिरह की पार्टी के बहाने अफसर को खुश कर उनपर अपना इम्प्रेशन डालना चाहता है। 'रजिता परसा पूरे स्टॉफ को बुलालें तो बहुत अच्छा रहेगा। कम्पनी मे कुछ चेंजेज होने वाले है। मैं चाहता हूँ कि अपना एक जोरदार इम्प्रेशन क्रिएट हो जाय। एक पथ दो काज हो जायेंगे।[123]

पार्टी के उपरान्त मनोवाछित फल पाने की आशा भी रखता है। 'रजिता इट हैज बीन वैरी सक्सेसफुल। मेरा प्रमोशन निश्चित है।'[124] सी के सच्चा अवसरवादी है। अपने प्रमोशन के लिए मजदूरो का समर्थन कर अधिकारियो को खुश कर लेता है और आगे बढ़कर प्रबन्धको का ही एक अग बन जाता है। शोभन साहित्यिक फायदे प्राप्त करने के लिए अपने साहित्यकार मित्रो को पास बुलाता है और उनके श्रम, चिन्तन, अध्ययन का लाभ उठाकर उन्हे छोड देता है। 'सामान्यत शोभन साहित्यिक

मित्रों से दूर ही रहते थे। हाँ, उन्हें निकट बुलाया जाता था जब शोभन को अपनी महत्वाकांक्षा की नई सीढ़ी चढ़नी होती थी।[125]

इस प्रकार मध्यवर्गीय चेतना को अभिव्यक्ति देने वाले ये पुरुष-पात्र वर्गगत वैशिष्ट्य का अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति देते हैं। किन्तु पूरी तरह मध्यवर्गीय भावना को आत्मसात् कर उनके अनुरूप आचरण करने वाला अथवा आचरण को शत प्रतिशत मध्यवर्गीय चेतना में बाँधकर प्रस्तुत करने वाले पात्र का चित्रण इन उपन्यासों में नहीं हुआ है।

निम्नवर्ग के पुरुष-पात्र

नारी कृत इन उपन्यासों में निम्नवर्ग के पुरुष-पात्र अनुपस्थित हैं। नौकरों के रूप में यत्र-तत्र कुछ पुरुष-चित्रित हुए हैं। मंजुल भगत के 'अनारो' में ही निम्नवर्ग की स्थिति एवं चारित्रिक विशेषताओं को चित्रित किया गया है। उपन्यास नायिका अनारो के जीवन की संघर्ष गाथा है, जिसके दुःख का कारण उसका पति नन्दलाल है। 'चार छः महीने तक पत्नी के साथ रहता है फिर भाग खड़ा होगा। दारू, बोतल, गाली-गलौज, कर्जा उधार सभी कुछ कर-करा के भाग लेगा।'[126] स्वयं कमाऊ होते हुए भी पत्नी को कुछ नहीं देता है। पत्नी के श्रम का शोषण करता है। पराई औरतों और दारू पर पैसे खर्च करता है, बच्चों के लालन पालन में सहायक नहीं बनता है।

सामूहिक दृष्टि से निम्नवर्ग के पात्रों में मालिकों के प्रति आक्रोश का भाव है। उनमें अपने श्रम का शोषण किए जाने का बोध है। अवसर मिलने पर मालिक के प्रति हिंसक आचरण करने के लिए भी तैयार हो जाते हैं। 'आजकल के मजदूर तो मालिक को हमेशा ही पिस्सू सा मसलने को तैयार बैठे रहते हैं।'[127] लेकिन अपनी दलितावस्था से ऊपर उठने के लिए शराब, जुआ, पर-स्त्री गमन, अशिक्षा जनित निम्न अवस्था से ऊपर उठने का उपक्रम ये पात्र नहीं करते हैं।

इस प्रकार सामाजिक वर्गों के आधार पर इन उपन्यासों में पुरुष-पात्रों का चित्रण अनेक रूपों में हुआ है। इनमें मध्यवर्ग के पुरुष-पात्रों का बाहुल्य है। उनमें वर्गगत चेतना की उपस्थिति स्पष्ट रूप में दृष्टिगत होती है, किन्तु उच्च एवं निम्नवर्ग के पुरुष पात्रों में वर्गगत विशेषता का सामान्यतः अभाव है। उच्चवर्ग के पुरुष-पात्र फिर भी यत्र-तत्र देखे जा सकते हैं, किन्तु निम्नवर्ग के पात्रों का चित्रण लेखिकाओं ने नहीं किया है। इससे यह संकेत मिलता है कि लेखिकाओं का सम्पर्क क्षेत्र मध्यवर्ग या उच्चवर्ग ही है। उनमें अलग क्षेत्रों के मानव वर्गों से सम्बन्धित उनका अनुभव शून्य है। इन्होंने पढ़े लिखे लोगों का ही देखा है गरीबी और अभाव से जूझते मजदूरों दलितवर्ग के सदस्यों का नहीं देखा है।

सदर्भ

1. रुकोगी नही राधिका–पृ. 37
2 वही–पृ 99
3 नरक दर नरक–पृ 26
4. वही–पृ 26
5 वही–पृ. 11
6 सोनाली दी–पृ 9
7 नावें
8 पचपन खम्भे लाल दीवारें–पृ 40
9 मित्रो मरजानी–पृ 16
10. मुझे माफ करना–पृ. 12
11. वही–पृ 12
12. रति विलाप–पृ 17
13. मित्रो मरजानी–पृ 16
14. वही–पृ. 40
15. इच्छाकली–पृ 83
16 सागरपाखी–पृ 36
17 मुझे माफ करना–पृ 160
18. ज्वालामुखी के गर्भ मे (धर्मयुग, [illegible] मार्च 1975-पृ 11)
19. बात एक औरत की-पृ 31
20 वही–पृ 25
21. जुड हुए पृष्ठ–पृ. 48
22. इच्छाकली–पृ 34
23 मित्रो मरजानी–पृ 92
24 बात एक औरत की–पृ. 69
25. भनारो (साप्ता हिन्दु 5 सितम्बर 1976, पृ 18)
26 इच्छाकली–पृ 35
27. नरक दर नरक–पृ. 180
28 उसके हिस्से की धूप–पृ 54
29. मुझे माफ करना–पृ 76
30. आपका बंटी–पृ 122
31. वह तीसरा (धर्मयुग 28 दिस 1975, पृ 9)
32. नयना–पृ 107
33 बात एक औरत की–पृ 76
34. मोहल्ले की बूआ–पृ. 46
35. रेत की मछली–पृ 193
36. भैरवी–पृ 54

37 रेत की मछली-पृ 194
38 टूटा हुआ इन्द्रधनुष-पृ 16
39 मायापुरी-पृ 152
40 बेघर-पृ 195
41 लेडीज क्लब (टूटा हुआ इन्द्रधनुष)-पृ 90
42 सागर पाखी पृ 19
43 काली लड़की-पृ 127
44 ज्वालामुखी [illegible] वक्ष में (धर्मयुग 16 मार्च 1975-पृ. 11)
45 सूखी नदी का पुल-पृ 31
46 मार्वे पृ 94
47 वही पृ 87
48 रुकोगी नहीं राधिका पृ 55
49 सोनाली दी-पृ 113
50 कृष्णकली पृ 33
51 वही पृ 35
52 रथ्या पृ 39
53 दूरियाँ पृ 35
54 पचपन खम्भे लाल दीवारें-पृ 50
55 वही पृ 56
56 वही पृ 56
57 सूखी नदी का पुल-पृ 169
58 वही-पृ 169
59 प्रिया पृ 138
60 वही-पृ 140
61 इन्नी पृ 172
62 मायापुरी-पृ 172
63 प्रिया-पृ 107
64 वही-पृ 129
65 कृष्णकली-पृ 26
66 वही-पृ 66
67 पतझड़ की आवाजें-पृ 108
68 वही-पृ 110
69 माम के मोती-पृ 134
70 वही पृ 174
71 उसके हिस्से की धूप पृ 134
72 बेघर पृ 42
73 नरक दर नरक-पृ 56
74 रुकोगी नहीं राधिका-पृ 115

75 सूरजमुखी अँधेरे के–पृ [illegible]
76 वही-पृ 24
77 पानी की दीवार-पृ 66
78 नावें-पृ 85
79 उसके हिस्से की धूप-पृ 119
80 भैरवी–पृ 27
81 कृष्णकली–पृ [illegible]
82 श्मशान चम्पा–पृ 11
83 वही-पृ 143
84 मुझे माफ करना–पृ 128
85 नयना–पृ 11
86 प्रिया–पृ 140
87 बेघर–पृ 14
88 वही–पृ 22
89 नरक दर नरक–पृ 77
90 वही
91 नावें-पृ 60
92 उसके हिस्से की धूप–पृ 97
93 नावें–पृ 46
94 कृष्णी–पृ 7
95 नरक दर नरक–प 146
96 भीगे पंख–पृ 8
97 डार से बिछुड़ी–पृ 11
98 श्मशान चम्पा–प 13
99 चौ'हकरे–पृ 61
100 वही
101 रुकोगी नही राधिका-पृ 123
102 वही-पृ 109
103 वही–पृ 110
104 वही–पृ 111
105 वही पृ 41
106 कृष्णकली–पृ 149
107 रुकोगी नही राधिका–पृ 114
108 वही
109 नयना–पृ 11
110 रुकोगी नहीं राधिका–पृ 36
111 कृष्णकली–पृ 141
112 वही

113 सोनाली दी पृ 78
114 वही
115 नरक दर नरक–पृ 169
116 सोनाली दी–पृ 83
117 उसके हिस्से की धूप–पृ 174
118 वही–पृ 118
119 नरक दर नरक–पृ 169
120 बात एक औरत की पृ 58
121 वह तीसरा (धर्मयुग 28 दिसम्बर 1975–पृ 9)
122 कृष्णकली–पृ 135
123 वह तीसरा (धर्मयुग 28 दिस 1975–पृ 9)
124 वही पृ 12
125 रेत की मछली–पृ 146
126 अनारो (साप्ता हिंदु)
127 श्मशान चम्पा–पृ 6?

महिलाओं के उपन्यासों में पुरुष-व्यक्तित्व

महिलाओं के उपन्यासों मे पुरुष व्यक्तित्व

महिलाओं के उपन्यासो म चित्रित पुरुष-पात्रो के विविध स्वरूपो को देख लेने के उपरान्त उनके आधार पर अब पुरुष-व्यक्तित्व को निर्धारित किया जा सकता है। पुरुषो के व्यक्तित्व का सर्वांगीण चित्रण करने के लिए उनके व्यक्तित्व के शारीरिक या बाह्य व्यक्तित्व एव मानसिक या आतरिक व्यक्तित्व दोनो स्वरूपो को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। तदुपरान्त उनके चिन्तन की अन्यान्य दिशाओं का उल्लेख करते हुए महिलाओ के उपन्यासो म पुरुष के व्यक्तित्व की समग्र छवि को साकार करने का प्रयास किया गया है।

पुरुषों का बाह्य व्यक्तित्व

व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष को प्रकट करने के लिए उनका सौदर्य, रुचियाँ, वेशभूषा आदि महत्वपूर्ण होते है। समाज म पुरुष व्यक्तित्व का प्रारभिक परिचय इन्ही बातो से होता है। इन्हे व्यक्तित्व के बाह्य पक्ष कहा जा सकता है। महिलाओ ने अपने उपन्यासो मे पुरुष व्यक्तित्व निर्धारण म यद्यपि शारीरिक पक्ष की उपेक्षा की है। तथापि उसके सौन्दर्य, वेशभूषा, शिष्टाचार को प्रसगवश यत्र-तत्र अवश्य चित्रित किया गया है। उन्ही के आधार पर यहा पुरुषो के व्यक्तित्व के इस पक्ष का विश्लेषण किया गया है।

सौंदर्य

इन उपन्यासो मे जहाँ भी पुरुष-पात्रो की चर्चा हुई है वहाँ उनके सौदर्य का प्रसग किसी न किसी रूप मे अवश्य प्रकट हुआ है। लेखिकाओ ने सामान्यत पुरुषो के सुदर्शन रूप की ही चर्चा की है। सुन्दर पुरुष को चित्रित करते हुए लेखिकाओ ने माना पुरुष सौदर्य के प्रति आत्मरुचिया का प्रदर्शन किया है। 'कृष्णकली' का प्रवीर सौदर्य का धनी है। 'कया अकड म तने कन्धे थे, और धूप का चश्मा लगाए पूरा इतालवी टूरिस्ट लग रहा था पट्ठा।'[1] नायिका कली उसके सौदर्य को देख कर एव डिप्लोमेट के रूप म अफगानिस्तान म उसकी नियुक्ति के कारण उसे काबुलीवाला के नाम से सम्बोधित करती है। 'मायापुरी' का सतीश भी सुन्दरता की प्रतिमूर्ति है। आयत स्कध, प्रशान्त ललाट और गौरवपूर्ण मुखश्री पर कॉनवोकेशन मे उपस्थित नवयुवतियाँ रीझ जाती हैं और उसके सौदर्य की बोली बोलने लगती हैं।'[2]

ना' का सुरेशभट्ट इतना सुन्दर है कि न चाहते हुए भी नायिका आदि की दृष्टि स नासपीटे की ओर उठ जाती है।[3] 'विषकन्या' का नायक इतना सुन्दर है कि सकी सलोनी छवि नायिका के हृदय कक्ष में गोदने सी ही उभर आती है और सकी स्याही वह लाख खीचने पर भी मिटा नही सकी थी।[4] झिलमिलाते प्रकाश उसके सौंदर्य की नई से नई परतें खुलती जाती है। उसके सौंदर्य से प्रभावित ायिका कहती है 'सुन्दर चेहरे को मैं कभी नही भूलती। उस पर वह चेहरा तो ाखों मे एक था। लगता था इस किशोरी के स कमनीय कपोलों ने अभी किसी लेड का स्पर्श भी नही किया है, सुतवाँ नाक के नीचे उसके रसीले अधर'''।[5] इस नकार शिवानी के उपन्यासो के पुरुष पात्र नारी पात्रो के समान ही अपूर्व सौंदर्य को धारण करने वाले है।

अन्य लेखिकाओ ने भी पुरुषो का सुदर्शन रूप ही उपन्यासो मे चित्रित किया है। 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' का नील प्रथम दर्शन में ही सौंदर्य की अमिट छाप नायिका के मन पर अंकित कर देता है। 'पानी की दीवार' का दिलीप, 'एकांगी नही राधिका' का मनोप भी ऐसे ही सुदर्शन पुरुष है।

शारीरिक सघटन की दृष्टि से भी पुरुष सक्षम है। 'बेघर' का नील पजाबी डील-डौल के कारण गुजराती पुरुषो की अपेक्षा सजीवनी को अधिक भा जाता है। 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर भी ऐसे ही व्यक्तित्व का धनी है। 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन की शारीरिक बनावट भी मनीषा को भा जाती है। 'प्रिया' का अरुण भी ऐसे ही आकर्षक शारीरिक सौंदर्य को धारण करने वाला है।

पुरुषो के 'लेडीकिलर' रूप की चर्चा भी यत्र-तत्र हुई है। 'कैंजा' का सुरेश भट्ट, 'ज्वालामुखी के गर्भ मे' के मौसाजी ऐसे ही सौंदर्य के धनी पुरुष है। सुरेश भट्ट सौंदर्य और डीलडौल से लेडीकिलर लगता है। 'जिसे अग्रेजी मे 'लेडी किलर' कहते हैं वही था सुरेश भट्ट। ''उस कद्दावर पहाडी जवान का रग कुमाऊँ के शाहो का और ऊँचा कद वहाँ के क्षत्रियों का था।'[6] उसके सौंदर्य का आतंक गाँव की बहू-बेटियों मे नर-भक्षी से कुछ भी कम वर्णित नही है। मौसाजी भी ऐसे ही सौंदर्य के धनी हैं। 'यू नो ही इज ए लेडी किलर।'[7] इस प्रकार सौंदर्य के धनी ये पुरुष उस कोटि के पुरुषो मे रखे जा सकते हैं जिनके लिए 'श्मशान चम्पा' मे कहा गया है कि 'कुछ पुरुष ऐसे होते हैं योग्यू, जिन्हें देखकर कौन सी लडकियाँ नही भडकती, समझी।'[8]

कुरूप पुरुषों का चित्रण इन उपन्यासो मे कम हुआ है। 'गैंडा' उपन्यास का देव, 'कृष्णकली' का गजेन्द्र, 'निर्झरिणी और पत्थर' का नौकर इत्यादि इने गिने कुरूप पात्र इन उपन्यासों मे चित्रित हुए हैं। देव बौने, कदर्य, गजे व्यक्तित्व का धनी है। उसके विरूप सौंदर्य के कारण ही उसकी सुन्दरी पत्नी उसे गैंडा नाम से पुकारती

है।[9] दो पुत्रियों के जन्म के बाद वह पुत्र न होने पर भी सिर्फ इसलिए ऑपरेशन करवा लेती है कि वह एक और नहू ने मेंडे को पृथ्वी पर नहीं लाना चाहती थी।[10] राजा गजेन्द्र बनैले बुन्देलखण्डी अकेला (सुअर) सा ही हिंस्र, बदशक्ल, थोकोर व्यक्तित्व का धनी है।[11] उसके आचरण को देखकर प्रवीर सोचता है यह व्यक्ति तन का ही नहीं मन का भी काला है।[12] भयावह भालू से रोमेदार शरीर वाला गजेन्द्र किसी भी कोण से सुन्दर नहीं है। 'निर्झरिणी और पत्थर' का नौकर दैत्याकार है। आकृति से वह वन मानुष की तरह दिखायी पड़ता है।[13]

इन उपन्यासो मे लेखिकाओ के वे प्रयास भी दिखाई देते हैं जिनमे पत्नी के द्वारा पति की शारीरिक न्यूनताओ को भी सुन्दरता के रूप मे परिगणित किया जाता रहा है। भारत मे प्राचीन काल से ही नारियाँ पति को परमेश्वर की तरह मानती हैं अत अपने पति के शरीर की बनावट के दोषो को भी वे बलात् गुण रूप मे ही देखती हैं। मन को झूठा तोष देने का यह भाव इन उपन्यासो की नायिकाओं मे भी परिलक्षित होता है।

'वह तीसरा' उपन्यास की नायिका रंजिता अपने पति की सौंदर्यहीनता को बलात् दृष्टि ओट मे करते हुए उसे गुण रूप मे देखने की चेष्टा करती है। 'मैंने कनखियो से सदीप को देखा—सदीप की आँखें बड़ी नही थी, किन्तु मुझे लगा पुरुष की आँखें ऐसी ही होनी चाहिए। सदीप के दांत ऊबड़-खाबड़ थे; मैंने सोचा बेतरतीब दांतो मे भी अपना एक सौंदर्य होता है। सदीप गोरे नही थे पर कृष्ण भी तो काले थे। मैं राधिका सी विभोर हो गयी थी।'[14] राधिका सी आत्म विभोरता भारतीय नारी की सनातन समझौतापरस्ती की भावना को प्रकट करता है।

'उसके हिस्से की धूप' की प्रबुद्ध नायिका मनीषा भी जितेन की शारीरिक कमजोरियो को छुपाने के लिए अपने आपको झुठलावे मे रखती है। 'वह उसकी ओर पीठ किए खड़ा था। लम्बी-पतली टाँगो पर प्राचीर के समान तना खड़ा उसका सांवला शरीर उसे मुग्ध किये ले रहा था। अजीब बात यह थी कि हल्के गोलाई लिये हुए उसके कन्धे दिखाई देने पर भी, चित्र खण्डित नहीं होता था।'[15]

इस प्रकार इन उपन्यासो के पुरुष-पात्र सामान्यत शारीरिक सौंदर्य के धनी हैं। लेखिकाओ ने अपने नायको को अतिरंजनापूर्ण सौंदर्य का धनी वर्णित किया है। पुरुष का यह सौंदर्य 'लेडीकिलर' के रूप मे नारी पात्रो को न केवल गहराई से प्रभावित करता है बल्कि उनकी चेतना मे हर क्षण समाया रहता है। यह पुरुष के शारीरिक व्यक्तित्व के प्रति महिलाओ की धारणाओं को सुन्दरता से प्रकट करता है। कुरूप सौंदर्य वाले पुरुषो का उपन्यासो मे अभाव है। इसी प्रकार पति के सौंदर्य मे जहाँ कहीं कुछ कमियाँ नजर आती हैं। वहाँ नायिकाएँ आत्मतोषी तर्कों के द्वारा

या तो उसे नजरअंदाज करने की चेष्टा करती है, अथवा उस कुरूपता को ही सौंदर्य के उपादान के रूप में मानने लगती हैं।

शिष्टाचार

मनोविज्ञान मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्धारण करने के लिए व्यक्ति के सामाजिक आचरण को विशेष महत्व देता है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक मन के अनुसार 'व्यक्तित्व के समग्र पक्षों में सामाजिक पक्ष ही सदैव प्रधान रहता है।'[16] सामाजिक आचरण के अंतर्गत दूसरों के साथ व्यक्ति का व्यवहार दूसरों के कृत-अकृत के प्रति बोधशीलता, वेशभूषा, नैतिकता और सदाचार इत्यादि महत्त्वपूर्ण होते हैं। मन के ही अनुसार 'विज्ञान की ठंडी अमूर्त शब्दावली में आपका व्यक्तित्व जो भी हो, दूसरों के निकट वह आपका सामाजिक रूप है, सामाजिक सम्बन्धों में आपकी भूमिका (रोल) है।'[17] समाज में भद्रता का व्यवहार करने पर जहाँ व्यक्ति का आचरण सराहा जाता है वहीं अभद्रता के कारण निन्दित भी किया जाता है। इन उपन्यासों के प्रायः सभी पुरुष पात्र सामान्यतः सामाजिक शिष्टाचारों का भली प्रकार से पालन करते हैं। सामाजिक दृष्टि से उनकी भूमिका निर्दोष ही कही जा सकती है।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' का नील अपने शिष्ट, सौम्य आचरण से सबको प्रभावित करता है। 'टूटा हुआ इन्द्र धनुष' का प्रभात 'एक सुलझा हुआ, सही व्यक्तित्व, ग्रन्थि-विहीन, कुंठा मुक्त और सरल व्यक्ति है' जो अपने सहज आचरण से सबको प्रभावित करता है। उसने पत्नी के मित्र मनीष से परिचय होने पर 'स्वाभाविकता से बोलना-चालना आरम्भ कर दिया था। काम, दफ्तर, इधर-उधर की सार्वजनिक बातें। मनीष ने जाना इस निष्कलुष व्यक्ति का स्पष्ट चिन्तन इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि जीवन एक बहुत ही सरलता से जीने की वस्तु है।'[18]

'रुकोगी नहीं राधिका' का अक्षय, 'अपना घर' का दानिएल, 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर, 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन इत्यादि सामाजिक शिष्टाचार का सहज पालन करते हैं और उसे अपने आचरण का अनिवार्य अंग बनाए हुए हैं।

पुरुषों के अशिष्ट आचरण का चित्रण भी इन उपन्यासों में हुआ है। बुजुर्गों एवं पूज्यों के प्रति अभद्रता का प्रदर्शन करने में ये संकोच नहीं करते। 'वीरान रास्ते और झरना' का रजत अपने चाचा के प्रति अशिष्टता को खुले शब्दों में प्रकट करता है। उनके प्रति पूज्य भाव को स्थान नहीं देता। 'आपका बंटी' का बंटी भी माँ के दूसरे पति डॉ. जोशी के प्रति सहज आचरण नहीं करता है।

पारिवारिक मर्यादाओं का ठीक से पालन न करने वाले पुरुषों का चित्रण भी इन उपन्यासों में हुआ है। 'कृष्णकली' का दामोदर ससुराल में शराब पीकर आता है, साले-सालियों से अभद्रता से पेश आता है। पत्नी से मारपीट करता है और अशिष्टता

से अपना अधिकार प्रकट करते हुए कहता है 'मैं इस घर का दामाद हूँ नौकर नहीं।'[19] उसका अभद्र आचरण सारे परिवार की शान्ति को भंग कर सभी के मन म विष घोल जाता है। इसी उपन्यास का गजेन्द्र भी अशिष्ट आचरण करने म सकोच नहीं करता। 'पुनी को माँ माँ पुकारता वह क्रूर नरव्याघ्र की सी जिस दृष्टि स उसे देख रहा था, वह निश्चय ही स्नेही पुत्र की नही थी। कभी वह क्षुधातुर दृष्टि उसके नीचे तक खुले गले पर निबद्ध होती, कभी आकर्षक नितम्बो पर झूल रही करधनी पर।'[20] भोजन की मेज पर तो गजेन्द्र मानो अपना असली रूप प्रकट कर देता है। यह चिकुर सा महादानव बिना हाथ मुँह धोये टाँग फैलाकर, गृह की माता-पुनी के सम्मुख ही जिस निर्लज्जता से पडा जुगाली कर रहा था, वह देखकर ही उसे घृणा होने लगी।'[21]

इन उपन्यासो म गुरुजनो के प्रति अभद्रता स पेश आने वाले पुरुषा के दर्शन भी होत है। 'नरक दर नरक' मे नायिका के अध्यापक पिता को उनके ही छात्र उनकी आदर्शवादिता स असन्तुष्ट होकर उन्ह लाठी से पीटन म भी सकोच नहीं करते। इसी उपन्यास मे छात्रो द्वारा प्राध्यापको के साथ अभद्रता करने का सकेत भी मिलते है। केडिया कॉलेज के छात्र कैन्टीन मे तोड फोड करते हैं। प्रोफेसर देशमुख जब उन्ह रोकने की चेष्टा करते हैं तो वे उनका भी चाय का प्याला जमीन पर पटक देत हैं। उनके द्वारा आयडेन्टिटी कार्ड माँगने पर एक छात्र फहडता से हँसते हुए कहता है 'आय डिडन्ट ब्रू इट सर।'[22]

महिलाओ के साथ सामाजिक शिष्टाचार को न निभाए जान का वर्णन अधिक हुआ है। 'मोहल्ले की बुआ' का मोहन पत्नी को पीटता है, उस गालियाँ देता है। बुआ जब बीच बचाव करती है तो उनके साथ भी शिष्ट व्यवहार नही करता। 'कृष्णकली का प्रवीर इतना रूखा है कि वह कृष्णकली के प्रति सामान्य शिष्टाचार का निर्वाह भी नहीं कर पाता। कली महसूस करती है 'इस व्यक्ति को इसकी अभद्रता का समुचित दण्ड देना ही होगा। 'कॉमन कर्टिसी' का भी तो एक महत्त्व होता है। देख रहा है कि वह पैदल चली जा रही है, पर फिर भी झूठे मुँह से भी एक बार लिफ्ट देने का भद्र पुरुषोचित प्रस्ताव नहीं रख सकता था? ऐसी नम्र मिष्टभाषी अम्मा का पुत्र ऐसा रूखा कैसे जन्मा?'[23] प्रवीर के ऐसे रूखे आचरण से ही क्षुब्ध होकर कली की मित्र भी कहती है 'ब्लास्ट हिम, क्या दन्तो के साथ तू रहती है कली! बाप रे बाप, इसस तो कलकत्ते के चिडियाघर के शेर-पिंजर म रहने क्या नहीं चली जाती! क्या करते हैं ये हजरत? समझता तो अपने को बहुत कुछ है।'[24] 'पानी की दीवार' का दिलीप भी ऐसे ही रूखे स्वभाव का व्यक्ति है। नारियो के प्रति अपेक्षित पुरुषोचित भद्रता का प्रदर्शन नहीं करता। उसके ऐसे ही आचरण

को देखकर नीता अनुभव करती है 'मुझे एक क्षण के लिए अटपटा सा लगा, यह व्यक्ति भी कैसा है? नारी के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता है।'[25]

इन उपन्यासो के पुरुष-पात्रो मे आचरणगत दोहरापन भी दिखाई देता है। मुखौटा धारण किए हुए व्यक्ति की तरह इनके दो रूप दृष्टिगत होते हैं। 'बात एक औरत की' का सजय, 'रेत की मछली' का शोभन, 'पतझड की आवाजें' का चन्द्रकान्त, 'सूखी नदी का पुल' का अंसल इत्यादि दोहरे आचरण कर्ता पुरुष हैं। सजय और शोभन घर मे पत्नी के प्रति क्रूर, अत्याचारी हैं लेकिन समाज मे दिखावे के लिए वे पत्नी को क्लबो, सभाओ, सामाजिक कार्यों मे साथ ले जाते हैं। लोगो के सामने उन्ह सम्मान देते हैं और उनके प्रति प्रेम भाव का प्रदर्शन करते हैं। शोभन माँ आदि के सामने प्रेम पूर्ण व्यवहार करके पत्नी से उसके मन की बात उगलवा लेता है लेकिन उसके चले जाने पर माँ के सामने उन्ही बातो का मजाक उडाता है। पत्नी के द्वारा स्वीकार किए जाने पर कि वह शादी से पूर्व शौकिया तौर पर सिगरेट पीती रही है, वह सबके सामने जबर्दस्ती सिगरेट जलाकर उसके मुँह में ठूँस देता है, लेकिन उसकी पीठ पीछे माँ से कहता है 'छोटी माँ, अपनी लाडली बहू देखो। सिगरेट पीती है तो ह्विस्की भी पीती ही होगी। कल को ।'[26] चन्द्रकान्त दोहरा आचरण करने वाले व्यक्ति की सुन्दर प्रतिमूर्ति है। एक ओर वह अधिकारियों से जुडा हुआ है तो दूसरी ओर श्रमिको को इस भ्रान्ति म रखता है कि वही उनका सच्चा हितैषी है।

सारांश

इस प्रकार पुरुषो के शारीरिक व्यक्तित्व का चित्रण करते समय लेखिकाओ ने उसके सुदर्शन रूप पर ही अधिक ध्यान दिया है। उनकी वेशभूषा, सौंदर्य बोध, सामाजिक शिष्टाचार को साधारण ढग से ही वर्णित किया है। उनकी लेखनी से जो पुरुष चित्रित हुआ है वह सुदर्शन रूप को धारण करने वाला है। आचरण की दृष्टि से वह सामान्य शिष्टाचारो का पालन करता है। केवल उनके दोहरे आचरण की लेखिकाओ द्वारा अवमानना की गई है। नारी के प्रति उसके प्रतिकूल दख के प्रति भी अप्रत्यक्ष विरोध का भाव परिलक्षित होता है।

पुरुषों का आन्तरिक व्यक्तित्व

पुरुषो के बाह्य व्यक्तित्व की अपेक्षा उसका आन्तरिक व्यक्तित्व ही उसकी वास्तविक पहिचान होती है। प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक बुनावट की निजता ही उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की निजता को निर्धारित किया करती है। और मानस सरचना के नियामक बिन्दुओ म सामाजिकता, धर्म, राजनीति, विज्ञान, कला, साहित्य न जाने कितने कितने आयाम दिखाई देते हैं। इन सभी क्षेत्रो से व्यक्ति के विचार निर्धारित होते हैं और वे उसके व्यक्तित्व का अविभाज्य अग बन जाते हैं। लेखिकाओ के उपन्यासो के

पुरुष-पात्रों के आन्तरिक व वास्तविक व्यक्तित्व का निर्धारण करने हेतु यहा उनकी उपर्युक्त आधारो पर निर्मित विचारधाराओ, मान्यताओ को परिभाषित करने का प्रयास किया जा रहा है।

सामाजिक धरातल पर पुरुष-चिन्तन का स्वरूप

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उस नाते उसकी अनेक आवश्यकताएँ होती हैं। उनकी पूर्ति के लिए वह समूह व्यवहार करता है। प्रत्येक समाज इन मौलिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए कुछ साधन अपना लेता है। उस परिवेश मे जीवन जीते हुए उस समूह की एक इकाई रूप मे विद्यमान मनुष्य की विचारधारा का स्वरूप भी उन्हीं साधना पर आश्रित हो जाता है। युग विशेष मे मानव का चिन्तन पक्ष उनसे परिचालित होता हुआ व्यक्ति के आचरण के द्वारा प्रकट होता है। महिलाओं के इन उपन्यासो मे पुरुषो के चिन्तन के उन्ही सामाजिक पहलुओ को विस्तार पूर्वक अभिव्यक्त होने का अवसर प्राप्त हुआ है। उन्हें विविध बिन्दुओं के अन्तर्गत निम्न प्रकार देखा जा सकता है।

विवाह सम्बन्धी मान्यताएँ

भारत मे विवाह एक पवित्र सस्कार के रूप मे स्वीकार किया जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के षोडश सस्कारो मे विवाह भी एक महत्त्वपूर्ण सस्कार माना गया है, जिसके द्वारा प्रत्येक पुरुष गृहस्थ जीवन मे प्रवेश करता है। किन्तु अब विवाह के धार्मिक उद्देश्य की महत्ता समाप्त होती जा रही है। सन्तानोत्पत्ति और यौनेच्छाओं की पूर्ति ही आज विवाह के उद्देश्य रह गए है। इस पर भी आज तक भारत मे विवाह पवित्र धार्मिक अनुष्ठानों को पूरा करते हुए सम्पन्न किया जाता है। धर्म, जाति और रूढियो से आज भी विवाह का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस द्वैत चिन्तन के कारण ही विवाह से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ प्रकट हुई। दहेज, अनमल विवाह, बहु-विवाह, तलाक आदि से सम्बन्धित विवाह सम्बन्धी समस्याओ ने येन केन प्रकारेण प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित किया है। महिलाकृत उपन्यासो के पुरुष पात्र भी इन समस्याओ से अछूते नही हैं। उनका चिन्तन पक्ष इनसे परिचालित हुआ दृष्टिगत होता है। यह चिन्तन अनेक बिन्दुओ का संस्पर्श करता है और पुरुष के व्यक्तित्व को रूपायित कर जाता है।

विवाह का स्वरूप

विवाह के स्वरूप एव विवाह सम्बन्धी निर्णय को इन पुरुषो के द्वारा विविध प्रकार से प्रकट किया गया है। 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन इस मत का पोषक है कि स्त्री पुरुष के परस्पर आकर्षण की परिणति विवाह के रूप मे ही हो यह आवश्यक नहीं है। विषम लिंगीय व्यक्तित्वो के परस्पर आकर्षण को वह सहज रूप मे ही लेता

है। किसी भी स्त्री-पुरुष के बीच आकर्षण का मतलब यह नहीं होता कि वे विवाह करें ही करें। आकर्षण ऐसी चीज है जो वक्त के साथ टिकती नहीं।[27] इसलिए जब तक परस्पर आकर्षण प्रेम सम्बन्ध में बँध नहीं जाता तब तक विवाह एक छलना है। इस सम्बन्ध में 'इन्नी' का राज कहता है 'तू नहीं जानती इन्नी कि बिना प्रेम के जब स्त्री-पुरुष पास आते हैं तो वह सब कितना निरर्थक श्रम–कितना यन्त्रवत्–क्रिया है। मन के खिलाफ अगर तू अपने पति को पाएगी तो तू मेरे कहने की गहराई को ईमानदारी से जान सकेगी पर भगवान तुझे ऐसा अनुभव कराए।'[28]

'नावें' का विजयेश भी इस मत का पोषक है कि सिर्फ स्वार्थ साधना के लिए अनचाहे बाँध दिए गए स्त्री-पुरुष को जिन्दगी ढोकर-बितानी पड़ती है। इसलिए विवाह के निर्णय को वह मनुष्य की जिन्दगी का महत्त्वपूर्ण निर्णय मानता है। इसकी धारणा है कि मनुष्य को सोच विचार कर आत्म निर्णय के आधार पर विवाह करना चाहिए। उसी के शब्दों में 'अपने मित्रों से मैं प्राय यही कहा करता था कि मैं तुम लोगों की तरह दकियानूस ढंग की शादी नहीं करूँगा, अपने आप लड़की चुनूँगा और खुद अपने विवेक से सब-कुछ करूँगा, किसी के द्वारा थकियाये जाकर या सलाह मशविरे से जिन्दगी का एक बड़ा कदम मैं नहीं उठाऊँगा।[29] वैचारिक परिपक्वता को धारण करने वाला यह पात्र एक कुआँरी माँ (मालती) से विवाह कर उसके समस्त दायित्वों को अपने ऊपर ओढ़ लेता है।

विवाह का प्रयोजन

विवाह सम्बन्ध केवल वासनापूर्ति के शारीरिक सम्बन्ध ही होते हैं या उनमें प्रेम भाव भी रहता है यह एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक प्रश्न है। प्राचीन भारतीय चिन्तन के अनुसार विवाह स्त्री-पुरुष की यौनतुष्टि के लिए उतना अनिवार्य नहीं है जितना सन्तानोत्पत्ति के लिए। किन्तु पाश्चात्य चिन्तन में काम तुष्टि का भाव प्रमुख रहता है। इन उपन्यासों में पुरुष विवाह के प्रयोजन से सम्बन्धित मिली जुली विचारधारा प्रस्तुत करते हैं।

'पानी की दीवार' का दिलीप केवल शारीरिक क्षुधा की पूर्ति से ही सन्तुष्ट नहीं है वह मानसिक तुष्टि में भी पत्नी को सहायक देखना चाहता है। अपनी व्यथा को प्रकट करते हुए कहता है 'ओह नीना, शारीरिक भूख ही तो सब कुछ नहीं, मानसिक भूख भी तो कोई चीज है।[30] मन की भूख की दुहाई देने का यह भाव शिक्षा के प्रचार के साथ प्रकट हुआ। आज का शिक्षित पुरुष अपने मन की पीड़ा को पत्नी के साथ बाँट लेना चाहता है। यदि पत्नी ऐसा नहीं कर पाती तो वह कुण्ठित हो जाता है। दिलीप की पीड़ा का कारण भी यही है। पत्नी के लिए वह कहता है 'करुणा एक अच्छी लड़की है, कर्मशील है, और किसी को भी आवश्यकता पड़ने पर

सहायता कर सकती है। पति-परायण भी है वह पर इससे अधिक कुछ नहीं।'[31] 'रुकोगी नहीं राधिका' का मनीष सुखी वैवाहिक जीवन के लिए पति-पत्नी के परस्पर सामञ्जस्य को महत्त्व देता है। उसकी मान्यता है कि 'सुखी वैवाहिक जीवन के लिए आदर पर्याप्त नहीं है, उसी तरह जैसे कि परस्पर शारीरिक आकर्षण भी नहीं।'[32]

विवाह और प्रेम

विवाह के साथ प्रेम का प्रश्न भी जुड़ा हुआ है। विशेषत: तब जबकि विवाह वस्तुत प्रेम के परिणामस्वरूप प्रेम-विवाह के रूप में प्रकट हुआ हो। भारत मे विवाहोपरान्त प्रस्फुटित होने वाले प्रेम को अच्छा समझा जाता रहा है। पर अब विवाह और प्रेम के सम्बन्ध की अन्तरगता को प्राय नकारा जाता है। नयी पीढी का प्रतिनिधित्व करने वाली 'सोनाली दी' की इजरा, विवाह के लिए प्रेम की अनिवार्यता को बुर्जुआ सस्कारो की देन मानते हुए कहती है 'ओह रानू तू बुर्जुआ है–तुम्हारा दृष्टिकोण ही दूसरा है। प्रेम और विवाह का क्या सम्बन्ध है।'[33] 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन प्रेम की नियति उसके चुक जाने को मानते हुए कहता है 'प्रेम जरूर चुक जाता है, यही उसकी नियत है।'[34]

इसके बावजूद भारत मे आज तक विवाह के अन्तर्गत हृदयो के समान आदान-प्रदान को ही महत्व दिया जाता रहा है। बातो मे कोई कितना ही फारवर्ड क्यो न बन जाय व्यवहार मे सभी विवाह के द्वारा प्रेम का प्रतिदान ही चाहते हैं। 'काली लडकी' के कमल के शब्दो मे 'आखिर पुरुष नारी से क्या चाहता है? केवल वह कोमल भावना जो, शरीर से परे है, जो बाह्य रूप की परिधि मे नहीं बाँधी जा सकती। पुरुष का हृदय अपने जोड का दूसरा हृदय खोजता है। यदि वह मिल जाये तो वह जी जाता है, नही तो हमारे समाज मे अस्सी प्रतिशत विवाह मर्यादा के नाम पर या और किसी सुनहरी भ्रान्ति के नाम पर निभाये तो जाते ही है।[35]

रोमास और विवाह

रोमास के क्षणो का भी विवाह चिन्तन के साथ गहरा सम्बन्ध है। पुरुषो मे रोमास के प्रति सहज आकर्षण होता है। मित्रो के सामने वे अपनी कल्पित-अकल्पित रोमान्स कथाओं को बढा चढाकर वर्णित करते हैं। ये पुरुष पात्र भी इससे अछूते नही हैं। 'बेघर' का शिन्दे शार्ट और स्वीट रोमान्स को पसन्द करता है। 'शिन्दे तो इसमे यकीन करता है कि अगली को सोचने का मौका ही न दो।'[36] उसके मित्र भी अल्पायु लडकी को फँसाने मे कोई अधिक कठिनाई महसूस नही करते। शिन्दे की सफलता पर उसका मित्र कहता है 'फिर यार सेकण्ड ईयर मे पढने वाली लडकी के लिए जोर भी आखिर कितना लगाना पडता है।'[37] इस प्रकार रोमान्स के क्षणो को स्वीकारते हुए नयी पीढी के पुरुष इसे विवाह के लिए आवश्यक सीढी मानते है।

विवाह और नैतिकता

विवाह करते समय प्रत्येक पुरुष अपनी पत्नी से यह अपेक्षा करता है कि वह अक्षत योनी हो। 'नावें' का विजयेश एव 'प्रिया' के मनसिज को छोडकर जिनमे अवश्य एतद्विषयक उदारता है, प्राय सभी पुरुष पत्नी के प्रति अपने को पहले पुरुष के रूप मे देखना चाहते हैं। 'बेघर' का परमजीत सजीवनी से प्रेम करता है, उसके साथ शारीरिक सम्बन्ध जोडता है और अपने को उसके लिए पहला पुरुष न पाकर पीडित होता है। इसी की प्रतिक्रिया रूप वह सस्कारी घर की रमा से विवाह करता है और उसे कुआँरी पाकर सन्तुष्ट होता है।'[38]

विवाह के सम्बन्ध मे ये पुरुष-पात्र जो विचार रखते हैं वे आधुनिक पुरुष के चिन्तन से पूरी तरह मेल खाते हैं। विवाह इनकी दृष्टि मे अब केवल शारीरिक क्षुधा की सन्तुष्टि के लिए ही अनिवार्य नही है। ये लोग मानसिक क्षुधा की सन्तुष्टि पर अधिक बल देते हैं और पत्नी को उस ढग का साझीदार देखना चाहते हैं जो प्रेम का सही प्रतिदान देता हो। यद्यपि अभी तक पुरुषो मे यह भावना दृढता से घर किए हुए है कि विवाह के पत्नी अक्षत योनी ही हो तथापि 'नावें' के विजयेश एव 'प्रिया' के मनसिज जैसे पात्र इस सम्बन्ध मे परिवर्तित विचार धारा की सूचना देते हैं। विवाह के बाद प्रेम सूत्र से परस्पर आबद्ध रहने की शर्त पर भी विचार किया जाने लगा है और विवश समझौतापरस्ती को पूरी तरह नकारा गया है।

दहेज

विवाह से सम्बन्धित सर्वाधिक प्रमुख समस्या दहेज की समस्या है। दहेज जुटा पाने की कठिनाई के कारण माता-पिता के लिए पुत्री का विवाह करना कठिन हो जाता है तथापि लोग पुत्र के विवाह के अवसर पर दहेज अवश्य चाहते हैं। लोभ के कारण दूल्हा भी माता-पिता की इच्छा का विरोध नही करता और दहेज की माँग को अप्रत्यक्ष समर्थन देने लगता है। महिलाएँ ही इस समस्या की शिकार होती हैं। दहेज प्रथा के कारण लडकियाँ को योग्य वर नही मिल पाते अत उनमे इसके कारण कुण्ठा का होना स्वाभाविक है। इन लेखिकाओ के उपन्यासो मे इससे सम्बन्धित पुरुष-चिन्तन का प्रत्यक्षीकरण हुआ है।

'मोहल्ले की बुआ' का मोहन अपनी बहिन को स्वयवर का अधिकार देना चाहता है और परिवर्तित परिस्थितियो मे लडके-लडकियो के आत्म निर्णय को सम्मानित भी करता है। बुआ से कहता है 'मैं कह रहा था कि इस लडकी का ब्याह तुम्हे नहीं करना पडेगा। करोगी भी ता दान दहेज नही देना पडेगा। वह अपने आप अपनी पसन्द से शादी कर लेगी।'[39] पुरुषो के ऐसे चिन्तन का उपन्यासो मे प्राय. अभाव है। दहेज से सम्बन्धित समान्यत पुरुषो के उन्ही विचारो का चित्रण हुआ है जो दहेज

के लोभी हैं। ऐसे पुरुष युवा हो या वृद्ध सभी दहेज के प्रति लालायित दिखाई देते हैं।

महिलाओ के द्वारा विवाह का सम्बन्ध दहेज से जोडने वाले पुरुषो का चित्रण ही अधिक हुआ है। ये पुरुष दहेज से प्राप्त धन को भावी सुखमय जीवन के आधार रूप मे देखते हैं। 'नावें' उपन्यास में सेठ दीवानचन्द अजीतप्रसाद तायल अपने पढे लिखे पुत्र के विवाह के अवसर पर भरपूर दहेज पाने की आशा करते हैं। विजयेश जब अपनी पुत्री के साथ उनके पुत्र के विवाह का प्रस्ताव लेकर जाता है तो कहते हैं '" आपकी जानकारी के लिए मैं यह बता देना चाहता हूँ कि, अजय के लिए एक से एक अच्छी लड़कियो के प्रस्ताव आ रहे हैं, लोग साठ हजार तक देने के लिए तैयार हैं।'[40] इसलिए चतुराई से मोटी रकम की माँग करते हुए सेठजी कहते हैं 'आप ठीक कहते हैं, पर मन मे कभी कभी मलाल उठता है, हमने लडके की तालीम पर इतना खर्च किया। आगे लडका बाहर पढने जाना चाहता है और दो-चार साल उससे अभी कोई उम्मीद नही है, उल्टे लगाने की ही बात है।'[41] 'पचपन खम्भे लाल दीवारें' मे वकील साहब का पुत्र नारायण नायिका सुषमा को चाहते हुए भी उससे विवाह नही करता और भारी दहेज के साथ अन्य कन्या का वरण करता है। 'पाषाणयुग' का किशोर शकुन से प्रेम करता है लेकिन पिता का दहेज के प्रति रुझान देखकर वह अन्यत्र विवाह कर लेता है। उसके इस निर्णय के प्रति शकुन अपने पिता से कहती है 'उसकी इच्छा थी कि दूसरे वधु पिताओ की तरह आप भी थैली लेकर वधू मे खडे हो जाते। इच्छा शायद उसके मा बाप की थी, पर उसने उनका विरोध भी नही किया था। इकलौता लडका है न, माँ-बाप का मन कैसे तोड देता बेचारा।'[42] 'वह तीसरा' का सदीप विवाह के उपरान्त श्वसुर के खर्च पर नैनीताल हनीमून मनाने के लिए जाता है लेकिन उनका दिया हुआ पैसा खर्च हो जाने पर पुन लौट पडने की तैयारी शुरु कर देता है। पत्नी रजना जब उससे कुछ और रुकने का आग्रह करती है तो वह कहता है 'रुक तो सकते हैं, लेकिन तुम्हारे डैडी तो खर्च उठाना पसन्द नहीं करेंगे और सदीप वर्मा के बस म अब और नैनीताल नही है।'[43] 'बेघर' का परमजीत जब विधि-विधान से रमा के साथ विवाह करता है तो वह भी मिलने वाले दहेज को पसन्द ही करता है। उसके पिता दहेज के रूप मे प्राप्त सामग्री की फेहरिस्त बना लेते हैं ताकि चीज अगर छूट जाए तो वापस मगाई जा सके। उसकी माँ मिलने वाले रुपयो को दुपट्टे मे बटोर लेती है। बम्बई मे रहकर आधुनिक जीवन जीने वाला परमजीत लेकिन इनका प्रतिवाद नही करता।'[44]

भारी भरकम चेक की राशि मे समस्त विवाहिता कन्या के दोषो को नजर अन्दाज कर देने वाले पुरुष भी इन उपन्यासो मे देखे जा सकते हैं। 'विषकन्या' मे नायिका का भाई श्वसुर के मोटे चेक की ओट मे मोटी, थुलथुली, मूर्खा लडकी को भी पत्नी बना

लेता है। उसके माता पिता भी लड़की के पितृकुल के वैभव पर रीझकर उन्हें ब्याह लाए थे।[45] इसी प्रकार पारिवारिक अर्थाभावों की विवशता के कारण भी दहेज स्वीकार करते पुरुष दिखाई पड़ते हैं। 'मायापुरी' का सतीश हृदय से विवाह में आडम्बरमय रूप को तथा दहेज को पसन्द नहीं करता किन्तु पिता पर चढ़े हुए कर्ज, माता की रुग्णता अप्रत्यक्ष दबाव के कारण दहेज स्वीकार करने के लिए विवश हो जाता है।

दहेज के प्रति अरुचि प्रकट करने वाले आदर्श पुरुष पात्र भी इन उपन्यासों में चित्रित हुए हैं। 'नावें' का अजय अपने सेठ पिता की दहेज लेने की इच्छा के विरुद्ध प्रेम विवाह करता है। 'कृष्णकली' का प्रवीर श्वसुर को हनीमून के लिए पाच हजार का चेक देते देखकर महक उठता है और 'देखिये, यह सब मैं नहीं लूंगा' कहकर चेक लौटा देता है।[46]

दहेज देने के इच्छुक पुरुषों में पुरानी पीढ़ी के लोग ही अधिक रुचि लेते दिखाई देते हैं। 'बेघर' में रमा के पिता अपनी सामर्थ्य से भी बाहर जाकर पुत्री को दहेज दे देते हैं। जब उनके बेटे इस बात पर आपत्ति करते हैं तो उन्हें यह कहकर सन्तुष्ट करते हैं कि 'ले गई जो लेना था, अब जो है घर का है।'[47] 'कृष्णकली' के पाण्डेजी भी अपने जमाता को यथेष्ट दहेज देना चाहते हैं। जब दामाद हनीमून के लिए दिया गया पाच हजार का चेक लौटा देता है तो उसे वे पुत्री को यह कहते हुए दे देते हैं 'तेरा दूल्हा तो कन्धे पर हाथ नहीं धरने देता। इसे तू रखले।'[48]

इस प्रकार इन उपन्यासों के पुरुषों में शिक्षित या सम्पन्न होते हुए भी दहेज के प्रति प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष मोह का भाव है। नवयुवक भी दहेज की कामना करते हैं या मिलने वाले दहेज से प्रसन्न ही होते हैं। दहेज के कारण पत्नी के दोषों की ओर ध्यान नहीं देते। कुछ इतने दुर्बल हैं कि चाहते हुए भी माता पिता के द्वारा की गई दहेज की माँग को अस्वीकार नहीं कर पाते। नवयुवकों का एक वर्ग ऐसा भी खड़ा हुआ है जो इस कुप्रथा का विरोध करता है। सामान्यतः पुरानी पीढ़ी के लोग दहेज लेने में इच्छुक [redacted] तो नयी पीढ़ी के पुरुषों में इसके प्रति विरोध का भाव प्रत्यक्ष हुआ है। दहेज देने के इच्छुक लोग भी पुरानी पीढ़ी के ही हैं।

अनमेल विवाह

दहेज की कुप्रथा ने आर्थिक दृष्टि से विपन्न माता-पिता को अपनी पुत्री का विवाह जिस किसी व्यक्ति के साथ कर देने की प्रेरणा दी। पुरुषों में किसी प्रकार का दोष न देखने वाला भारतीय समाज अवस्था प्राप्त व्यक्ति को भी उम्र में अपेक्षाकृत अधिक छोटी लड़की से विवाह करने की अनुमति दे देता है। जीवन के मधुर रंगीन स्वप्न सँजोने वाली लड़की का, इस प्रकार, अपनी आकांक्षाओं का गला घोंटकर प्रौढ़

व्यक्ति से विवाह करना पड़ता है। इन उपन्यासों में यद्यपि माता-पिता द्वारा अपनी ओर से पुत्री का विवाह किसी प्रौढ़ से कर देने के दृष्टान्त इने गिने हैं तथापि आर्थिक विवशताओं के कारण महिलाओं द्वारा उम्र में अधिक बड़े व्यक्ति से विवाह करने के उदाहरण अवश्य प्राप्त होते हैं।

उम्र के आधार पर अनमेल विवाह

पुरुष चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित पत्नी से वह यही अपेक्षा करता है कि वह समस्त बाधाओं पीड़ाओं को झेलते हुए उसकी सेवा करती रहे। अनमेल विवाह में उम्र के कारण जो अन्तर रहता है उसे पत्नी चेष्टा करके भी पार नहीं पाती। दूसरी ओर ऐसा पति युवा पत्नी द्वारा गम्भीरता का मुखौटा धारण कर प्रौढ़ा के समान आचरण करने के लिए दबाव देता रहता है। ऐसा न हो पाने पर वह पत्नी को पीड़ित करता है। प्रताड़ित करने में भी संकोच नहीं करता। 'सूखी नदी का पुल' के रायसाहब अपने से बीस वर्ष छोटी लड़की से विवाह करते हैं लेकिन विवाह के तुरन्त बाद उसमें चिन्तन एवं आचरणगत प्रौढ़ता देखना चाहते हैं। पत्नी से कहते हैं 'तारा, तुम लड़कियों के सामने कीमती और सुन्दर वस्त्र मत पहनो, अपने कटे हुए बालों को जूड़े में बाँध लो। जब घर में लड़कियाँ जवान होती हैं तो माँ को अपने शौक ताक पर रख देने पड़ते हैं।'[59] पति की इच्छानुसार जब तारा ऐसा आचरण करने लगती है तब भी वह उसके प्रति शंकित ही रहते हैं। पुत्रियों का विवाह इसलिए जल्दी कर देते हैं कि कहीं युवा पत्नी की देखरेख के अभाव में लड़कियाँ बिगड़ न जाएँ। इस प्रकार युवा पत्नी के प्रति सन्देह को पालते हुए वे विशेष सजगता बरतते हैं। 'एक तो उन्होंने मुझ पर कभी विश्वास किया ही नहीं। सदैव कहीं न कहीं उनकी संदिग्ध दृष्टि का अंश मुझे मिल ही जाया करता था। दुलारी और बाबू को कई प्रकार के आदेश थे मेरे लिए, साँझ को आकर अक्सर अकेले में बाबू से घुमा फिराकर मेरे बारे में अनेक प्रश्न पूछा करते थे वह।'[60]

'रुकोगी नहीं राधिका' में भी राधिका के पिता बीस वर्ष की छोटी विद्या के साथ विवाह करते हैं। किन्तु उम्र के अन्तर पर अवलम्बित यह विवाह स्थिर नहीं रह पाता। राधिका के पापा पुनः एकान्तवासी हो जाते हैं। पुत्री के पलायन का सारा दोष विद्या पर मढ़ देते हैं। दोनों में तनाव इस हद तक जा पहुँचता है कि भीतर ही भीतर घुटते हुए विद्या नींद की गोलियाँ खाकर आत्महत्या कर लेती है। राधिका भी उम्र में अधिक बड़े डैन का वरण करती है। डैन और राधिका दोनों अपने अपने अभावों को भरने के लिए परस्पर निकट आते हैं। डैन को पत्नी के अलगाव का दुःख है तो राधिका को पिता से बिछुड़ने का। स्वार्थपूर्ति के लिए निकट आए दोनों प्रणयी इस सम्बन्ध का निर्वाह अधिक समय तक नहीं कर पाते। डैन उसे अमेरिका

के असन्तोष का कारण पत्नी का अधिक आधुनिक हो जाना है और पति के साथ शारीरिक सम्बन्धों से इतर सम्बन्धों का निर्वाह नहीं करना है।

इस प्रकार अनमेल विवाह करने वाले पुरुष युवा पत्नी के प्रति सहिष्णु नहीं होते और अपने अहं का विसर्जन नहीं कर पाते। बल्कि अपने अहं को उस पर आरोपित करने में सचेष्ट रहते हैं। पत्नी के प्रति अन्याय करते हुए उससे ये अपेक्षाएं करते हैं कि वह अपनी अस्मिता, रोष, अवस्थानुरूप रुचियां सबको तिलांजलि देकर, मूक भाव से सब कुछ सहती रहे। निश्चय ही इन लेखिकाओं ने पुरुषों के व्यक्तित्व के इस पहलू पर पर्याप्त प्रकाश डालते हुए उनके चिन्तन को दोषपूर्ण सिद्ध करने का प्रयास किया है।

अन्तर्जातीय विवाह

पाश्चात्य शिक्षा और संस्कारों के प्रचार प्रसार से जातीय कट्टरता की भावना क्रमशः शिथिलप्राय होने लगी। इससे पूर्व तक जाति से बाहर विवाह सम्बन्ध स्थापित करने वाला व्यक्ति, जातिच्युत कर दिया जाता था। उसकी निन्दा भर्त्सना की जाती थी, किन्तु अब अन्तर्जातीय विवाह के लिए प्रतिकूल स्थितियाँ नहीं रही हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि लोगों के मस्तिष्क पूरी तरह साफ हो गए है, उनके हृदय जातीय दुराग्रहों से पूरी तरह मुक्त हो गए हैं। लोगों में आज तक जातीय भावना है जो विवाह के अवसर पर प्रकट होती रहती है। अपने परिवार के किसी भी सदस्य को अन्तर्जातीय विवाह करने की अनुमति सामान्यतः नहीं दी जाती। इन उपन्यासों के पुरुषों का चिन्तन भी ऐसी ही संकीर्णताओं से ओतप्रोत है। साथ ही नूतन मूल्यों के लिए संघर्ष करने वाले एवं विवाह के सम्बन्ध में जातीयता के बंधन को अस्वीकारने वाले पुरुषों का चिन्तन पक्ष भी इन उपन्यासों में चित्रित हुआ है।

अन्नपूर्णा तागदी के 'उत्सर्ग' का मनोज जब विजातीय राबी से विवाह करना चाहता है तो उसके पिताजी इसका विरोध करते हैं। मनोज की माँ से कहते हैं 'तुम्हारा दिमाग तो खराब नहीं हो गया है? वह एक कायस्थ की लड़की। यह ब्राह्मण का पुत्र। कभी इसकी कल्पना भी की जा सकती है।'[37] लेकिन मनोज ऐसी संकीर्णताओं को नहीं मानता है। कहता है माँ मैं जाति-पाँति में विश्वास नहीं करता। मनुष्य सब बराबर हैं, खानदान का नाम तो अच्छे काम से होता है।'[38] फिर भी पिता की हठवादिता के कारण यह विवाह नहीं हो पाता। ऐसी हठवादिता 'रेत की मछली' में नायिका कुन्तल के पिता में भी है। कुन्तल जब शोभन से विवाह करने की इच्छा व्यक्त करती है तो वे सहर्ष तैयार हो जाते हैं लेकिन जब उन्हें पता चलता है कि शोभन उनकी जाति का नहीं है तो वे तुरन्त मना कर देते हैं। 'पिताजी क्षुब्ध थे बल्कि उनकी बातों से लग रहा था कि वे विजातीय से शादी की चर्चा छिड़ने के

कारण अपमानित भी महसूस कर रहे हैं। इसी क्षोभ के साथ वे उठकर भी चले आए थे।'[59] 'ज्वालामुखी के गर्भ में' का मनीष जब अपनी सहपाठिनी पंजाबी क्रिश्चियन से शादी करना चाहता है तो उसकी माँ उससे अत्यन्त रुष्ट हो जाती है और उससे बोलना तक बंद कर देती है। फिर भी, मनीष यह विवाह करता है और इस प्रकार से घर निकाल दिया जाता है। दूसरी ओर इन उपन्यासों के अधिकांश पुरुष ऐसी संकीर्णताओं से पूरी तरह मुक्त हैं। विवाह करते समय वे इस बात पर तनिक भी विचार नहीं करते कि उनकी भावी पत्नी किस जाति की है। विवाह करते समय वे पत्नी में अन्य गुणों की भले ही अपेक्षा करते हों, उसमें यह अपेक्षा कदापि नहीं करते कि वह अनिवार्यतः स्वजातीय हो। इसलिए ऐसे पुरुषों का चिन्तन अप्रत्यक्षतः अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करता दिखाई देता है।

इस प्रकार अंतर्जातीय विवाह के सम्बन्ध में पुरुष चिन्तन में पीढ़ियोंगत अन्तर नजर आता है। पुरानी पीढ़ी के लोग जातीयता के पक्षधर हैं तो नई पीढ़ी के लोग उसके विरोधी हैं। वे जाति से बाहर की लड़की से विवाह करने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करते।

अंतःधार्मिक विवाह

जातीयता की ही भाँति धार्मिक संकीर्णता भी विवाह मार्ग में बाधक सिद्ध होती है। भारत में धर्म का वर्चस्व सदैव रहा है और छोटे-मोटे अनेक धर्मों एवं धार्मिक सम्प्रदायों में यहाँ के पुरुषों का चिन्तन सिमिट कर रह गया है सभी धर्मों-सम्प्रदायों के लोग अपने-अपने आचारों का कट्टरता से पालन करते हैं। दूसरों के आचारों-विचारों के प्रति सामान्यतः अनुदार ही रहते हैं इसलिए अन्तःधार्मिक विवाह की अनुमति वे कैसे दे सकते हैं। इन उपन्यासों के पुरुषों में भी ऐसे विवाहों के प्रति लगभग वैसे ही विचार हैं जो जातीयता से सम्बन्धित ऊपर प्रकट किए जा चुके हैं। विधर्मी स्त्री या पुरुष से विवाह सम्बन्ध के प्रति पुरुषों में घृणा का भाव ही अधिक है। 'इन्नी' की नायिका जब मुसलमान से विवाह कर लेती है तो युधिष्ठिर उसका बाप मरा ताऊ कहता है 'मर हिन्दू सब मर गए थे क्या ?'[60] उसका पति साहिल भी लोगों की धार्मिक संकीर्णता की ओर संकेत करते हुए कहता है 'ये लोग हमारी दोस्ती बर्दाश्त कर लेते हैं, पर क्या शादी को बर्दाश्त करेंगे।'[61]

'श्मशान चम्पा' में चम्पा की बहिन जूही जब विधर्मी के साथ विवाह कर लेती है तो चम्पा के प्रस्तावित दूल्हे के संस्कारी पिता रामदत्त जी यह सम्बन्ध तोड़ देते हैं। चम्पा की माँ से कहते हैं 'शादी होगी तो कभी यह के बहन-बहनोई भी मिलने आएँगे। माफ करो भाई, हमें यह रिश्ता नहीं चाहिए। हमारे घर की खूंटियों में तो धोती-टोपियाँ लटकती हैं, वहाँ हम ऐसे अतिथियों के तुर्की-तुर्की टोपियाँ कैसे लटकाएँगे।'[62]

इस प्रकार अन.धार्मिक विवाह के प्रति इन पुरुषों में सामान्यत विरोध का भाव ही दिखाई देता है। उपन्यासों में ऐसे नवयुवक भी हैं ऐसा करने में कोई कोई आपत्ति नहीं करते हैं। अत धार्मिक विवाह इनके लिए कोई बाधा नहीं बन पाता है।

तलाक

तलाक के प्रति भारत में अनुकूल मान्यताएँ नहीं रही है। विवाह को यहाँ जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध माना गया है। दाम्पत्य सम्बन्धों की इसी अटूटता के कारण यहाँ पति-पत्नी से यह अपेक्षा की जाती है कि तनाव की स्थिति में भी वे येनकेन-प्रकारेण परस्पर समायोजन करने। तलाक के प्रश्न को यहाँ धर्म, नैतिकता एव आस्थाओं के आधार पर नकार दिया जाता है। लेकिन अब पति-पत्नी के बीच सम्बन्ध-विच्छेद को अधिक तवज्जो नहीं दी जाती। अब तलाक का प्रचलन भी हो गया है और लोग ऐसा करने में सकोच नहीं करते। इन उपन्यासों में पुरुषों का चिन्तन भी तनाव की स्थिति में तलाक का पक्षधर है।

'आपका बटी' उपन्यास तलाक की समस्या पर आधारित है। लेकिन यह तलाक के बाद की समस्याओं को (बटी के रूप में बच्चे की समस्या को) प्रस्तुत करता है। 'बटी' का अजय जब शकुन से दस वर्ष के वैवाहिक जीवन में भी सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर पाता है तो उससे तलाक ले लेता है। वकील चाचा भी कटुता और तनाव-ग्रस्त वैवाहिक जीवन जीते रहने की अपक्षा तलाक ले लेने को बेहतर समझते है। शकुन से कहते हैं 'यदि ऐसा ही है तो फिर अच्छा है कि तुम लोग अलग हो जाओ। सम्बन्ध को निभाने की खातिर अपने को खत्म कर देने से अच्छा है कि सम्बन्धों को खत्म करदो।'[63] अजय की ही भाँति इसी उपन्यास का डाक्टर जोशी भी पत्नी प्रमीला को तलाक देता है। दोनों ही तलाक देने के बाद पुर्नविवाह कर लेते है। लेकिन जहाँ अजय बटी के बहाने फिर भी शकुन से जुड़ा रहता है वहीं डाक्टर उस अध्याय को पूरी तरह बन्द करके उस सारे प्रसग को भूल जाना चाहता है। उसी के शब्दों में 'प्रमीला के साथ का जीवन — वह जैसा भी था, अच्छा या बुरा — मेरा इतना निजी है कि मैं उसे किसी के साथ शेयर नहीं कर सकता। तुम गलत मत समझना और बुरा भी मत मानना। वह एक अध्याय था, जो उसी के साथ समाप्त हो गया। और अब मैं उसे किसी के साथ खोलना नहीं चाहता हूँ। चाहूँ भी तो खोल नहीं सकता। शायद अब तो अपने सामने भी नहीं।'[64] महानगर की मीता' का अजित मीता से प्रेम विवाह करता है, अनबन होने पर उसे तलाक दे देता है, पुर्न-विवाह करता है उससे भी अनबन हो जाती है तो पुन मीता की ओर झुक आता है।

तलाक की सुविधा समाज में सबको उपलब्ध होने हुए भी भारत में सामान्यत पुरुष को ही ऐसा करने के अधिकार है। नारी इस सम्बन्ध में पहल करती है तो वह

निन्दनीय समझी जाती है। 'महानगर की मीता' मे पुरुषो की इस सुविधा भोगी स्थिति के संदर्भ मे कहा गया है कि 'मुझे दुःख होता है कि यही कानून पुरुषो के लिए ठीक है, वह उस कानून का लाभ उठा सकते है, नारियाँ नही। हमारा देश अभी तक पिछड़ा हुआ है। तलाक पुरुष के लिए उचित है, स्त्री ले तो कलंकिनी मानी जाती है, पुरुष विजयी और शूरवीर। उसकी पीठ ठोककर लोग कहते है—शाबाश, अच्छा हुआ तुमने जोरू की गुलामी नही सही। इन औरतों को सिर नहीं चढ़ाना चाहिए। अब देखना इनको कोई काना-कुबड़ा मिलता है या नहीं।'[65]

तलाक के लिए उदार हृदयी पुरुषो का चिन्तन पक्ष भी इन उपन्यासो मे चित्रित हुआ है। 'उसके हिस्से की धूप' का जितेन पत्नी मनीषा द्वारा उसे तलाक देकर मधुकर के साथ विवाह करने की इच्छा व्यक्त करने पर आनाकानी नही करता। वह तो तलाक तक की आवश्यकता महसूस नही करता। मनीषा को छोड़कर जाने की स्वतन्त्रता देते हुए कहता है 'चुनने का अधिकार सबको है, मनीषा। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि एक बार और सोच लो तलाक की जरूरत मैं नही समझता।'[66] मनीषा को दुबारा लौट आने की स्वतन्त्रता प्रदान करते हुए कहता 'जबर्दस्ती करके तुम्हें नहीं रोकूँगा मनीषा। एक इन्सान पर दूसरे का अधिकार मैं नही मानता। इतना जरूर कहूँगा, एक बार और सोच लो। मैं तुम्हें चाहता हूँ, कभी लौटना चाहो तो लौट आना।'[67]

इस प्रकार तलाक मे सम्बन्धित विविध मान्यताएँ इन पुरुषो मे दृष्टिगत होती है। इस सम्बन्ध मे स्वस्थ चिन्तन को प्रश्रय देने वाले पुरुषो का बाहुल्य है। तलाक को मानव अधिकार के रूप मे स्वीकार किया गया है। साथ रहते हुए तनावग्रस्त जीवन जीते रहने की अपेक्षा तलाक को अच्छा समझा गया है। जितेन जैसे पुरुष-पात्र तलाक के बिना भी पत्नी को अपने इच्छित व्यक्ति के साथ रहने की अनुमति दे देते है। तलाक का अधिकार, अप्रत्यक्षतः पुरुषो के हाथो मे ही रखा गया है, नारी को पहल करने पर उसके प्रति क्षीण विरोध का भाव परिलक्षित होता है।

अन्य सामाजिक समस्याओ के प्रति पुरुष-दृष्टि

विवाह एवं वैवाहिक समस्याओ से सम्बन्धित पुरुषो की विचारधारा से परिचित हो जाने के बाद समाज की अन्य समस्याओ के प्रति पुरुषो का चिन्तन देखा जा सकता है। लेखिकाओ के द्वारा वर्णित विषय-क्षेत्र के अंतर्गत वैवाहिक समस्याओ के प्रति पुरुष चिन्तन को अभिव्यक्त होने के जितने अवसर थे उतने समाज की अन्य समस्याओं के लिए नहीं। तथापि भ्रष्टाचार, मुनाफाखोरी, वेश्यावृत्ति इत्यादि से सम्बन्धित पुरुषो का चिन्तन थोड़ा बहुत प्रकट हुआ है जिसे यहाँ देखा जा सकता है।

स्वतन्त्रता के बाद देश में भ्रष्टाचार अधिक पनपा । लोगों ने अपने अपने घर भरने के लिए अनेक तरीकों से धन कमाने प्रारम्भ किए । एक ओर धर्म नैतिकता के परम्परित प्रतिमानों के प्रति लोगों में निरन्तरता आई तो दूसरी ओर स्वतन्त्रता के रूप में जिन स्वप्नों को लोगों ने संजोया था वे टूटकर बिखर गए । भ्रष्ट शासन तन्त्र में लोगों ने बिगड़ी व्यवस्था से समझौता कर लिया और स्वार्थ में ऊपर उठकर देश के हित के लिए सोचने वाले लोगों में भ्रष्टाचार के प्रति विरोध का भाव परिलक्षित हुआ । शिष्टाचार के लिए इन्होंने भ्रष्टाचार का विरोध किया । उमरे हिस्से की धूप का मधुकर भ्रष्टाचार का विरोधी है । भ्रष्टाचार से ग्रस्त इसका चिन्तन उस यथार्थ का तल्खी के साथ प्रस्तुत करता है नया कुछ भी नहीं हुआ वर्षों में भ्रष्टाचार और शोषण चल रहा है वही है ।[68] वह अपने छात्रों में वह क्रान्ति चेतना भर देना चाहता है कि जिससे वे संघर्ष कर इन भ्रष्ट स्थितियों से समाज को मुक्त करा दें ।

भ्रष्टाचार के यथार्थ एवं उसके बारे में पुरुषों का चिन्तन अधिक नहीं दिखाई देता । अमलतास के महाराज कुंवर अजीतसिंह जैसे पात्र पुरुष चिन्तन के इस पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं । देश की स्वतन्त्रता से पूर्व ये सामन्ती सुविधाओं का भोग करते थे किन्तु आजादी मिलते ही तुरन्त अपना चोला बदल लेते हैं । बेईमानी को जीवन की सफलता का मूलमन्त्र समझते हैं । वैसा ही व्यवहार करते हुए कहते हैं बताओ फिर आजकल कौनसा ऐसा धन्धा है जिसमें उन्नति करने के लिए तुम्हें चार सौ बीसी नहीं करनी पड़ेगी । आप फरमाते हैं देश आजाद हो गया है तो अब हमारे दिमागों को भी आजाद हो जाना चाहिए यानी हम सच्चाई के दायरों में चलना सीखना चाहिए । वाह रे बुद्ध जहन ! भई दिमागों की आजादी तो यही है कि हम खुलकर सौ हथकण्डे साध सकें जिसमें हम आगे बढ़ें । सरकार ने हमें कम सताया है जो हम सरकार के वफादार बनें ।[69]

ऐसे ही संकीर्ण चिन्तन से प्रेरित होकर पुरुष अर्थोपार्जन के भ्रष्ट तरीके अपनाते हैं । दूरियाँ का रमन जाली पासपोर्ट बनाने का धन्धा करता है और पकड़ा जाता है ।[70] इसी उपन्यास का जयशंकर शौकत की जिन्दगी के लिए सट्टा खेलता है ।[71] सूखी नदी का पुल के न्यायाधीश और सिविल सर्जन पच्चीस हजार रिश्वत में लेते हैं ।[72] तिन्नी में फेबियन और उसके गिरोह के सदस्य तस्करी करते हैं । नरक दर नरक का आतिश अर्थाभाव के कारण शराब की दलाली का धन्धा करता है ।[73] वह सिनेमा के टिकटों का ब्लैक भी करता है ।[74]

पतझड़ की आवाजें में एक औद्योगिक संस्थान के दफ्तरों में प्रमोशन के लिए घूस देने के अतिरिक्त सीनियर लोगों द्वारा समर्पिता नारियों को प्रमोशन दे देने की प्रवृत्ति

रुष्टिगत होती है। चन्द्रकान्त अपने प्रति समर्पित होने की शर्त पर अनुभा को प्रमोशन देना चाहता है। उसे दूर विक्निक पर चलने का न्यौता देते हुए पत्र में लिखता है 'इफ यू डोंट फील सेफ आई विल ब्रिंग एफ एल। डोंट वरी फार दट।' [75] प्रमीला के द्वारा ऐसा न करने पर वह उषा को इसके लिए राजी कर लेता है और उसे प्रमोशन दे देता है।

इस प्रकार भ्रष्टाचार के बारे में पुरुषों का चिन्तन बहुआयामी है। नैतिक एवं राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के पर अधिकांश पुरुष-पात्र भ्रष्टाचार को बुरा नहीं मानते। भ्रष्टता को अपनाने के लिए विशिष्ट तर्क प्रस्तुत करते हैं। भ्रष्ट आचरण का विरोध करने वाले पुरुष भी इन उपन्यासों में हैं। ये लोग वर्तमान भ्रष्टता एवं उससे परिचालित व्यवस्था को बदल कर नयी व्यवस्था की स्थापना का स्वप्न देखते हैं।

मुनाफाखोरी

मुनाफाखोरी भ्रष्टाचार का ही दूसरा रूप है। नौकरीपेशा लोगों में भ्रष्टाचार का बोलबाला है तो व्यापारियों में मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। निजी स्वार्थ के लिए व्यापारी मिलावट, होर्डिंग, कालाबाजारी करते हैं। ऐसा करते समय वे लोगों के स्वास्थ्य की या असुविधा की अधिक चिन्ता नहीं करते। 'बयर' में परमजीत का पिता मुनाफा कमाने के लिए दूध में हानिकर पानी मिलाने में भी कोई संकोच नहीं करता। ऐसा करने से एक बार जब एक बच्चे की मृत्यु हो जाती है तो वह स्वयं उस व्यवसाय को छोड़ देता है। इस प्रकार नैतिक वर्जनाओं में परमजीत का पिता मुनाफाखोरी की प्रवृत्ति का छोड़ देता है।

बेरोजगारी

'नरक दर नरक' में शिक्षित बेरोजगारों की समस्या दिखाई देती है। जोगेन्दर, बैजनाथ, आतिश इत्यादि बेरोजगारों की पीड़ा को मुखरित करते हैं। योग्य होने पर भी जोगिन्दर अपने लायक काम के अवसर नहीं पाता है। आतिश की स्थिति और भी अधिक विकट है। मुसलमान होने से वह नौकरी नहीं प्राप्त कर पाता है। वह बूटपॉलिश का कार्य करता है, सिनेमा के टिकिट ब्लैक करता है। काम मांगने पर भी न मिलने से वह इतना क्षुब्ध है कि अवैध धन्धे करते हुए जेल जाने में भी बुरा नहीं मानता। कहता है 'जेल जाना काम मांगने से ज्यादा इज्जतदार होगा।' [76]

वेश्यावृत्ति

बर्ट्रेंड रसेल के शब्दों में 'जब तक सम्भ्रान्त स्त्रियों के सदाचार को बड़े महत्त्व की बात समझा जाता है, तब तक विवाह की संस्था के साथ एक और संस्था का होना भी जरूरी है जिसे वास्तव में विवाह की संस्था का अंग ही माना जाना चाहिए— मेरा अभिप्राय वेश्यावृत्ति की संस्था से है।' [77] पुरुषों का उन्मुक्त यौनाचार ही इस प्रकार

सम्भ्रान्त नारियों को वेश्या बनने के लिए विवश करता है। इन उपन्यासो मे पुरुष पात्र यत्र-तत्र ऐसा आचरण करते हुए दर्शाए गए हैं। उनकी वासनान्धता का शिकार होकर नारियों को वेश्या बनना पडता है। 'कृष्णकली' के रजनीकान्त की वासना का शिकार होने पर वाणी सेन अपने आश्रित मामा-मामी को मुँह दिखलाने के लायक नहीं रहती। इसलिए उसे घर छोड देना पडता है। अन्ततोगत्वा उसे वेश्या बनकर जीवन यापन करना पडता है। 'रथ्या' का मृत्युस्वामी भी बसती को अपनी वासना का शिकार बनाता है जिसके परिणामस्वरूप वह भी घर जाने की स्थिति मे नहीं रहती और वेश्याओं के चगुल मे फँसकर वेश्या बनने को विवश होती है। वेश्यागमन करने वाले पुरुषो का चित्रण भी इन उपन्यासो मे हुआ है। 'कृष्णकली' के विद्युतरजन, रहमतुल्ला आदि, 'कैजा' का सुरेश भट्ट, 'अमलतास' के महाराजकुमार इत्यादि वेश्यागमन करने वाले पुरुष-पात्र हैं। वेश्यागमन की यह प्रवृत्ति सामान्यत उच्च वर्ग के पुरुषों मे ही दृष्टिगत हुई है। पैसे वाले वृद्ध से वृद्ध व्यक्ति भी वेश्यागमन मे सकोच नहीं करते। 'वाणीसेन के तो असख्य दुलारे चाचा-ताऊ थे। चटर्जी काका, रायकाका, घोषगुडो, दस्तिदार, राय चौधरी काका, टामस अकल, डेविड अकल, हाय राम दम फूल गया गिनते-गिनते हमारी वाणी सेन का तो आधा ससार इन ससुरे चाचो से भरा है।[78]

इस सामाजिक बुराई के प्रति इन उपन्यासो के पुरुष-पात्रो का चिन्तन यद्यपि स्पष्ट रूप मे उभर कर नही आया है तथापि कुछ पुरुषो मे वेश्याओं का उद्धार करने की या उनके साथ विवाह आदि करने मे सकोच करने प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। 'श्मशान चम्पा' के सेनगुप्ता वेश्यापुत्री से विवाह करते हैं।[79] इसी उपन्यास में मयूरभज के जागीरदार भी ऐसा ही करते है।

परिवार

समाजशास्त्रियो न समाजिक सगठन मे परिवार को सबसे अधिक महिमा प्रदान की है। परिवार के बिना सामाजिक प्राणी की कल्पना नहीं की जा सकती इसलिए समाजिक सरचना मे परिवार सर्वोपरि है। भारत मे सयुक्त परिवार की प्रथा रही थी। 'हिन्दू समाज की इकाई व्यक्ति न होकर सयुक्त परिवार है।'[80] किन्तु अब अनेक कारणों से उसके आकार मे ह्रास हुआ है। परिवार अब पति-पत्नी और बच्चों तक ही सीमित हो गया है। परिवार के सदर्भ मे इन पुरुषो मे भी परिवर्तित विचारधाराएँ ही दृष्टिगत होती है। इन उपन्यासो के पुरुष-पात्र परिवार के सम्बन्ध मे जो धारणाएँ रखते है उसको इन बिन्दुओं मे प्रकट हुआ देखा जा सकता है।

सयुक्त परिवार

सयुक्त परिवार और उसकी टूटती इकाइयो का चित्रण उपन्यासो मे पुरुष-चिन्तन के

खम्भे लाल दीवारे का नील पिता की जगह नुपमा का परिवार के सार दायित्वा को ओढते देख कहता है 'मुझे लगता है सुपमा, कि तुम्हारा परिवार तुम्हारा अनड्यू एडवान्टेज लेता है। तुम्हारे भाई बहिन तुम्हार माता पिता की जिम्मेदारी है तुम्हारी नही।[84]

इस प्रकार परिवार के सदर्भ म पुरपा का चिंतन स्पष्टत सयुक्त परिवार की प्रथा से कटन और अपने स्वतत्र परिवार की सत्ता का बनाए रखन म विश्वास करना दिखाई देता हे। ये लाग यह विचार भी रखन है कि पारिवारिक दायित्या का निर्वाह करने की जिम्मेदारी माता-पिता की है। अत युवा हान र भी वे परिवार के प्रति उत्तरदायित्या को निभाने की जगह माता पिता म अलग हा जाना अधिक पसन्द करते है। य लोग महिलाआ स भी यह अपक्षाएँ रखन ह कि व पुरान सस्कारा म मुक्त होकर परिवार स बाहर स्वतन्त्र आचरण करना शुरू कर। कुल मिलाकर परिवार और उसके प्रति अपने दायित्वा का निबाह इनका मनानुकूल सत्य नहीं है। ये तो परिवार का और पारिवारिक कठिनाईया का दलदल की तरह देखत ह जिम म उलझकर पुरुष मानो आत्म व्यक्तित्व का व स्वतन्त्र चतना का विकास नही कर पाता है।

धार्मिक धरातल पर पुरुष-चिन्तन

देश म वैज्ञानिक दृष्टि के प्रसार स धम भावना क स्वरूप म भी क्रमश परिवतन परिलक्षित हुआ है। धर्म के प्रति आस्था एव अध श्रद्धा का भाव समाप्त हुआ। धार्मिक अनुष्ठाना म क्रमश शैथिल्य का भाव परिलक्षित हान लगा। ईश्वर क अस्तित्व के सम्बन्ध म सदह किया जान लगा। तक भावना की प्रधानता हुई और श्रद्धा का भाव क्रमश. तिरोहित हान लगा। इसक लिए धम क पुरोधाओं ढोगी साधुआ उनके दोषपूर्ण आचरणा का भी विशप हाथ रहा है। इन्हान मिथ्याचारा वाह्याडवरा और धार्मिक ढकोसलो को ही धर्म का रूप प्रदान किया। विवकानन्द क अनुसार जिस धर्म की जडे प्रथा और रूढी म होनी ह। 'वह दुकानदारी धम हा जाता है। जिसम ईश्वर साध्य नही साधन रह जाता है।[85]

इन उपन्यासा म भी एस अनक भ्रष्ट पडिता, साधुआ का उल्लख हुआ है। कृष्णकली के सन्तजी साधु की वशभूषा धारण करत है लकिन योग क लाइसेंस बाँटत ह। गुफाआ म अण्डरग्राउण्ड बिजनेस चलाते है। दिल्ली म ब्यूटी क्लीनिक' चलात है। भोली भाली लडकियो को फँसाते ह। मास भक्षण करन म सकाच नहीं करते। सिर पर जटाजूट, ठुड्डी पर दाढी, गैरिक वसन, कठ म रुद्राक्ष की माला, सिरहान कमण्डलु और अण्डा हड्डियो का फलाहार। फिर उसन स्वामी जी क गटागट घुटके गए किसी रहस्यमय पय की गटागट ध्वनि भी सुनी।[86] 'चौदह फेरे म भ्रष्ट साधु

भी हिन्दू का ईसाई बन जाना पूरे हिन्दू समाज की हानि है। आज एक मेहतर लड़की ईसाई बनी है, कल सारी बिरादरी बन जाएगी। हिन्दू जाति पर गुप्त प्रहार किये जा रहे हैं। मैं इसका भरसक प्रतिरोध करूँगा। अपना बस चलेगा तो एक भी व्यक्ति को अपने धर्म के दायरे से बाहर न जाने दूँगा।'[92] शताबी भी कहता है 'कोई ऐसा उपाय बताओ नेता बाबू कि मेरी ब्याहता मेरे पास लौट आए क्रिस्तान बनकर मरी तो नरक में भी ठौर न मिलेगा उसे।'[93] इस प्रकार अंध धार्मिक श्रद्धा के कारण ये पुरुष-पात्र इस विचार का पोषण करते हैं कि 'अपना धर्म चाहे कितना भी खराब क्यों न हो, दूसरों के धर्म से लाख अच्छा होता है।[94]

धार्मिक सहिष्णुता

धर्म के प्रति ऐसी संकीर्णता रखने वाले और दूसरे धर्मों के अनुयायियों के प्रति विद्वेष रखने वाले पुरुषों में अब कमी आई है। आज का पुरुष वर्ग धर्म के वास्तविक स्वरूप को समझकर धार्मिक सहिष्णुता को अपनाना चाहता है। 'अपना घर' का दानिएल इसी मत का पोषक है और चाहता है कि हमें धर्म की तंग दुनिया छोड़कर खुले मैदान में आना चाहिए। धर्म केवल हमारी मेज तक ही सीमित रहना चाहिए। सच पूछो तो उसकी भी जरूरत नहीं।'[95] कुछ ऐसे पुरुषों का चित्रण भी इन उपन्यासों में हुआ है जो धर्म के दिखावटी रूप की उपेक्षा करते हैं। उनमें धार्मिक सहिष्णुता है। 'वंचिता' में अंती ताऊ एकादशी, पूरनमासी, मंगलवार को हनुमानजी के व्रत आदि को स्मरण रखते हैं और उनके लिए नौजवानों को प्रोत्साहित करते हैं। मुन्ना बाबू कहता है 'चाची ! लो हनुमान का प्रसाद लो। मैं तो मानता वानता नहीं, पर अंती ताऊ ने कहा है कि तुम्हारी तरफ से बढ़ा आऊँ। अरे चाची उन्हें तुम धर्म न समझो। एकादसी पूरनमासी सब का उन्हें पता रहता है।'[96] इसी का साहिल मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं में फैली गलतफहमियों के प्रति संकेत करते हुए कहता है 'तवारीख तुम्हारा मजमून न था—वर्ना पता चलता कि हिन्दुओं के समान ही उनकी हिस्ट्री भी दरियादिली और खूबियों से भरी हुई है। अरे-हुजूर सब कौम, सब मुल्क में होते हैं। अपना तअस्सुब मिटाने के लिए तुम्हें पारिस्तान का सफर करना जरूरी है।'[97] 'अपना घर' का दानिएल को धर्म से चिढ़ है क्योंकि यही प्रत्येक झगड़े की जड़ है।

इस प्रकार धर्म के प्रति विविध विचार इन उपन्यासों में पुरुष-पात्रों में दृष्टिगत होते हैं। सामान्यतः धर्म के प्रति उपेक्षा का भाव है। कुछ पात्रों में धार्मिक संकीर्णता और असहिष्णुता के दर्शन भी होते हैं। धर्म की बुराईयों को पहचान कर उसके सच्चे स्वरूप को आत्मसात् करने में सचेष्ट पुरुषों का चिन्तन, ढोंगी साधुओं की भ्रष्टता का उद्घाटन की प्रवृत्ति तथा धर्म के बाह्याचारों के प्रति उपेक्षा का भाव भी इन पुरुषों में परिलक्षित होता है।

राजनैतिक धरातल पर पुरुष-चिन्तन

आज के व्यक्ति के चिन्तन को राजनीति ने अत्यधिक प्रभावित किया है। राजनीति के प्राधान्य के साथ ही वर्तमान युग नूतन भावबोध को लेकर उपस्थित हुआ। 'नरक दर नरक' का जोगेन्दर राजनीति के स्वरूप को व्याख्यायित करते हुए उसे एक निश्चित् विश्व आशय समझता है। उसी के शब्दों में 'राजनीति का अर्थ तुम जैसे मढ़कों के लिए वह पसर-पसर है जो तुम्हारे कुएं में चलती है। मेरे लिए राजनीति का एक निश्चित् विश्व आशय है। हम उससे बचना भी चाहें तो नहीं बच सकते। कोई भी यथार्थजीवी रचनाकार उसमें बचकर सार्थक रचना नहीं कर सकता।[98]

आजादी का मोहभंग

इन उपन्यासों में राजनीतिक स्वतन्त्रता के दुष्परिणामों को लेकर मोहभंग का भाव भी पुरुष पात्रों के चिन्तन का अंग बना हुआ दिखाई देता है। 'सागरपाली' के स्वरूप आजादी की लड़ाई में सक्रिय भाग लेते हैं। किन्तु आजादी के बाद की स्थितियों को देखकर हुए अपने मोहभंग को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं—'तब मुझे पता नहीं था कि जिस आजादी को लेकर मैं इतना आनन्दित हूँ—वही आजादी मेरे लिए उम्र कैद का परवाना है। मेरे सुख, मेरे सपने, मेरी कामनाएँ कैद हो गई हैं। हमेशा-हमेशा के लिए। मेरे हाथ पांव सब बांधे हैं। असहाय सा पड़ा हूँ।'[99]

'कृष्णकली' में देश की बदली हुई परिस्थितियों का चित्रण करते हुए पाण्डेजी कहते हैं 'शालीन कपड़े पहन, आँखें झुकाकर चलने वाले नम्र, राहगीर को अब कोई नहीं देखता, पर सड़क पर लेट कर नारे लगा, प्रधानमन्त्री की गाड़ी को रोकने वाला 'नंगा निर्लज्ज व्यक्ति,' पल भर में प्रधानमन्त्री से भी अधिक प्रसिद्धि पा लेता है। क्यों? इसलिए कि अब इस निराले प्रजातन्त्र में न्यूसेंस वैल्यू बढ़ गयी है।[100]

'उसके हिस्से की धूप' का मधुकर अपने साथियों के साथ कॉलेज में हड़ताल करा देता है क्योंकि उसकी मान्यता है 'यह लोकसभा भंग करनी होगी। अब न मौजूद व्यवस्था को बर्दाश्त किया जायेगा और न इस भ्रष्ट चुनाव प्रणाली को।'[101] नेताओं की अवसरवादिता से इसे इतनी घृणा है कि वह कहता है 'मन्त्री बनने का शौक फरमाने के लिए अवसरवादियों की कतार पहले ही कुछ कम लम्बी नहीं है। उनका शौक उन्हें मुबारक।'[102]

राजनीतिक दलों के प्रति विचार

इन पुरुषों के चिन्तन में राजनैतिक दलों, उनकी विचारधाराओं, उनकी गतिविधियों इत्यादि का चित्रण नहीं हुआ है। पुरुषों के चिन्तन को प्रभावित करने वाला यह पक्ष

अनुपस्थित है केवल कांग्रेस की स्वतन्त्रता पूर्व की गतिविधियों का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार 'नरक दर नरक' का वैजनाथ अल्पसंख्यकों की उपेक्षा के प्रश्न पर मित्र आनिल के दृष्टिकोण को पसन्द नहीं करता और कहता है अगर हम हिन्दू हिंदू होकर सोचें तो आप हमें जनसंघी कहने हैं।'[103] साम्प्रदायिक चिन्तन का अवश्य इन में जोगेन्दर शास्त्री राजनीतिक दल के पीछे विदेशी दिखाई देता है विचारधारा का विरोध करते हुए कहता है 'तुम्हारे साथ यही तो मुश्किल है विनय कि इधर तुम्हारा मास्टर रूस है रूस न होता तो अमेरिका होता। बिना मास्टर के तुम अपनी किताब पढ़ना नहीं सीखे।[104]

राष्ट्रीयता की भावना

राष्ट्रीयता की भावना का स्वर भी पुरुष चिंतन उपन्यासों में उपस्थित है। 'उसके हिस्से की धूप' का मधुकर अवसरवादी राजनीतिज्ञों का विरोध करता है और कहता है दुनिया की मुझे चिंता नहीं है वह अपना ख्याल बखूबी रख रही है। मैं अपने अभागे देश के लिए कुछ कर सकूँ तो बहुत होगा। जबकि इसी उपन्यास का जितेन पढ़े लिखे लोगों द्वारा बात बात में विदेश की दुहाई देने की भावना का विरोध करते हुए कहता है 'ओह! फ्रांस! विदेशों के उदाहरण मुझे मत दीजिए बहुत बेमानी लगते हैं। अपने देश की बात कीजिए है यहां बुद्धिजीवी जो किसी ठोस चीज का संचालन कर रहा है? अलबत्ता सुभाव हर मिनिट तक की रफ्तार से जरूर दे रहा है।'[105]

देश के पिछड़ेपन को लेकर भी इन पात्रों में प्रबल क्षोभ दिखाई देता है। 'रुकोगी नहीं राधिका' का मनीश सात वर्ष विदेश में रह कर वापस लौटता है देश की दुर्दशा से इसे तीव्र दुख होता है। राधिका से अपनी मनोदशा प्रकटकरते हुए कहता है ' मेरा मन बार-बार हुआ कि मैं किसी से चीख कर कहूँ कि आप लोगों ने किसी स्वस्थ दिशा की ओर तरक्की क्या नहीं की। माना कि हम पिछड़े हुए हैं, पर हम कम से कम सभ्य और शिष्ट तो हो सकते है। अपनी जहालत और आलस्य को दूर कर सकते हैं। पर नहीं, यहाँ तो यह है कि जिससे जितना बन पड़ता है, उतना ही सताने पर तुल जाता है।'[106] इन उपन्यासों में राष्ट्रीयता की दृष्टि से सोचने वाले ऐसे पुरुष भी हैं जो देश के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए मौलिक विचार रखते हैं। 'पानी की दीवार' के राज के अनुसार 'हममें मिशनरी भावना होनी चाहिए। विदेशी दूसरे देशों में, अपने धर्म, भाषा तथा सभ्यता का प्रचार करते है, विदेश की जलवायु का प्रकोप सहते हैं। हम अपने ही देश के जलवायु मे अज्ञान को दूर नहीं कर सकते? हमें कोई अधिकार नहीं कि गर्मियों की छुट्टी में हम शिमला, मसूरी और अन्य पहाड़ों पर जाएँ और सैर-सपाटे करके आ जाएँ। हम इन छुट्टियों में घूम-घूम का शिक्षा का प्रचार करना चाहिए।'[107]

इस प्रकार इन उपन्यासों के युवा वर्ग में जहाँ एक ओर राष्ट्रीयता की तीव्र, दृढ़ भावना है तो वहीं भ्रष्ट राजनीतिज्ञ अवसरवादी व्यक्तियों के प्रति बेहद अरुचि और घृणा का भाव भी है। किसी दल विशेष के प्रति आस्था या दुराग्रह का भाव इन युवकों में सम्भवतः इसीलिए दृष्टिगत नहीं होता है। उसकी जगह इनमें दिखाई देती है असन्तोष की, क्रान्ति की या विवश समझौतापरस्तों की निरुपाय, हताश चेतना।

व्यवस्था के प्रति दृष्टि

व्यक्ति की आकांक्षाओं को कुचल देने वाली एवं उसके विकास में पग पग पर रुकावटें पैदा करने वाली वर्तमान व्यवस्था से भी इन्हें चिढ़ है।

व्यवस्था के नग्न विद्रूप रूप को प्रस्तुत करते हुए जोगेन्दर तल्खी से कहता है 'इस व्यवस्था में आपको अपना भविष्य बनाना है तो एक तोप पैदा कीजिए, ताकत की भाप पैदा कीजिए, ताकत की तोप—कोई मोटा व्यापारी, कोई धाकड़ संसद-सदस्य, मन्त्रीजी का कोई खास सगा-सम्बन्धी कोई तोप ढूँढिये और हिन्दुस्तान के नक्शे पर छा जाइए। फिर भूल जाइए कि देश में एक कानून व्यवस्था है जिसके हाथ लम्बे कहे जाते हैं। कानून जनता के लिए है, जनार्दन के लिए नहीं। सूर्य से सूर्य योजना लाइए, उसे पूरा करने के लिए आपको सब सुविधाएँ दी जायेंगी। बड़े आराम से रेत से तेल निकालते रहिए, चाँद पर ट्यूबवेल लगाइए, फिल्म बनाइए, अभिनन्दन ग्रन्थ निकालिए।'[109] इन नवयुवकों को नेताओं और उनके भाषणों से भी चिढ़ है क्योंकि 'इस राष्ट्र ने कुछ किया क्या है? एक बुझा लालटेन का आधा अंधेरा घर, नताजा की चार इनी गिनी, लालटेन के धागे।'[110]

साहित्य के माध्यम से दोषों का परिष्कार करने की क्षमता रखने वाले साहित्यकारों के आदर्श से भी ये असन्तुष्ट हैं। इनकी धारणा है कि ये लोग भी या तो व्यवस्था का ही एक अंग हैं या फिर व्यवस्था के पैसों पर पलने वाले जीव हैं। 'उनके हिस्से की धूप' में मधुकर व्यवस्था के साथ जुड़े ज्ञान की लेखकों की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए यह कहता है 'सत्य यह कि तुम लोग, जो अपने को लेखक कहलाते हो, अलग-अलग कैसे पार्टी के … में बैठे बैठे हमान बन अपने अनुभव ही देख सकते हो और कुछ नहीं। इसी का … कर शासन बदल करने में जुटे रहते हो। आदर्शवाद के नाम पर तुम सब … और क्रान्ति का ढोंग रचाते लगते हो। … कि तुम … व्यवस्था के अंग हो।'[111]

या फिर किसी न किसी रूप मे नारी स जुडे हुए है उन्हे ही विस्तार के साथ वर्णित किया गया है। जबकि जीवन के अन्य प्रसगो को साधारण ढग से चित्रित कर दिया गया है। यही कारण है कि सामाजिक धरातल पर पुरुष का व्यक्तित्व सर्वाधिक विस्तार से वर्णित हुआ है। इनमे भी परिवार एव उससे जुडी हुई स्थितियो स सम्बन्धित पुरुषो का चितन-पक्ष सुन्दरता से वर्णित हुआ है। पुरुषो का आचरण आज के पुरुषो के समस्त रूपो को उद्घाटित करता है और नारी की पुरुष चेतना के बहु आयामो को प्रकट करता है।

4 विवाह के बारे म पुरुषो की जो धारणाए है उसके विविध पहलु उपन्यासा म उद्घाटित हुए है। विवाह के लिए प्रेम को वे अच्छा समझते हैं और प्रेम के बिना विवाह को निरर्थक मानते है। विवाह सम्बन्धी सकीर्णताओं से भी मुक्त हो रहे है। पत्नी से वे अपेक्षाएँ करत है कि वह विवाह के बाद उनकी शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति ही नही करेगी बल्कि उनके जीवन का पूरक बनते हुए उन्ह मानसिक सतोष भी प्रदान करगी। विवाह के लिए रोमास को भी नयी पीढी के पुरुषों द्वारा स्वीकारा गया है। फिर भी विवाह करत समय य पत्नी को अक्षतयोनी देखना चाहते हैं। दहेज के सम्बन्ध म इनके विचार अपेक्षाकृत अधिक पुरानापन लिए हुए हैं। दहेज को पसद करने की प्रवृत्ति इनमे है दहज के कारण पत्नी के दोषो की ओर ध्यान न देने वाले पुरुष भी है। दहज का अस्वीकारन वाले पुरुष भी देखे जा सकते हैं। पत्नी की मृत्यु पर पुर्नविवाह करन की प्रवृति है किन्तु उम्र म छोटी पत्नी के प्रति सहिष्णुता का अभाव है। पुरानी और नयी पीढी क पुरुषा के चिन्तन म अतर्जातीय तथा अन धार्मिक विवाह के सम्बन्ध म विरोधी विचार है। पुरानी पीढी के लोग अपनी सकीर्णताओ के कारण इन्हे पसन्द नही करते जबकि नयी पीढी के पुरुष इस दृष्टि से उदार हैं। तलाक के प्रति इनकी धारणाओ मे बदलाव आया है। तनावपूर्ण जीवन जीन की अपेक्षा तलाक ले लेना अच्छा समझत है। लेकिन तलाक शुदा नारी के प्रति अभी तक पुरुषो मे घृणा का भाव है। पत्नी की इच्छाओ का आदर करत हुए तलाक के बिना भी मनोवाञ्छित पुरुष के साथ चले जान की अनुमति दे देन वाले पुरुष भी देखे जा सकत है।

5. समाज की अन्य समस्याओ क प्रति पुरुषो का दृष्टिकोण अधिक विस्तार स वर्णित नही हुआ है। भ्रष्टाचार को स्थापित सत्य मानते हुए ऐसा करने मे किसी प्रकार का सकोच नही करते। राष्ट्रीय दृष्टि स सोचन वाले पुरुषो म इसके प्रति विरोध का भाव भी है। वे भ्रष्ट व्यवस्था को पूरी तरह बदलकर नयी व्यवस्था स्थापित करना चाहते है किन्तु ऐसा सोचन वाले सुधारवादी पुरुषो की सख्या बहुत कम है। वेश्या-वृत्ति के प्रति विशेष दृष्टि का सकेत नहीं मिलता लेकिन वेश्यागमन करने की प्रवृत्ति

अवश्य इन पुरुषो मे यत्र तत्र परिलक्षित होती है। मुनाफाखोरी, बेरोजगारी जैसी महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं के प्रति पुरुषो के स्पष्ट विचार उपन्यासो मे प्रकट नहीं हुए है।

6 परिवार के प्रति भी इनमे परिवर्तित चिन्तन दृष्टिगत होता है। संयुक्त परिवार को पसद करते हुए भी उसका निर्वाह करने की अपेक्षा विलग होकर स्वेच्छया स्वतन्त्र रहने की प्रवृत्ति अधिक है। परिवार की कठिनाईयों को ये दलदल की तरह स्वीकारते है और उनसे यथासम्भव भागने की चेष्टा करते हैं। पारिवारिक दायित्वों के निर्वाह की जिम्मेदारी माता-पिता की मानते है युवा पुत्रों की नहीं।

7 वर्तमान व्यवस्था के प्रति सामान्यत असन्तोष का भाव ही परिलक्षित होता है। भ्रष्ट व्यवस्था को दूर कर उसमे सुधार करने की इच्छा भी रखते हैं। विवश होकर व्यवस्था से समझौता करने वाले पुरुष भी चित्रित हुए है। सुधारवादी दृष्टिकोण रखने वाले पुरुषो मे क्रान्ति के समर्थन का भाव है। इनकी दृष्टि मे स्कूल, कॉलेज भ्रष्ट व्यवस्था से ओत प्रोत है इसलिए उनमे भी बदलाव लाया जाना चाहिए। साहित्यकारो के प्रति इनकी यह धारणा है कि ये व्यवस्था मे जुडे हुए है, उसी के सहारे पनपते हैं अत उनसे क्रान्ति का नेतृत्व करने की आशा नही की जा सकती है। ये केवल क्रान्ति के द्वारा ही सुधार की आशा करते है। क्रान्तिकालीन अव्यवस्था को भी सह्य मानकर चलते हैं।

8 धर्म के सम्बन्ध म इन पुरुषो के विचार आधुनिकता के निकट है। धर्म की सामयिक तर्क सगत व्याख्या करने का प्रयास करते हैं। वैज्ञानिक जीवन दृष्टि अपना लिए जाने के बावजूद ईश्वर के प्रति आस्था अभी तक पूरी तरह समाप्त नही हुई है। किन्तु धर्म के प्रति उपेक्षा का भाव ही सामान्यत दृष्टिगत होता है। धर्म के नाम पर ढोंग करने वाले, उसे दुकानदारी का रूप दे देने वाले पडितो, साधुओं के आचरण की खुलकर निन्दा करते है। इसी प्रकार बाह्याचारो का विरोध भी इन पुरुषों मे है।

9 राजनीति के सम्बन्ध म इन पुरुषो का चिन्तन आज के युवा वग के चिन्तन को ही प्रकट करता है। राजनीति का स्वार्थकेन्द्रित सकीर्णताओं से ऊपर उठकर एक विश्व आशय के रूप मे देखते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् की राजनैतिक सकीर्ण मनोवृत्ति से ये मोहभग की पीडा मे ग्रस्त दृष्टिगत होते हैं। सत्ता के लिए दौड धूप करने वाले नेताओं स इन्हे घृणा है। राजनैतिक दलो म सम्बन्धित चितन का सर्वथा अभाव है। राजनीति की आधार भूमि के रूप म राष्ट्रीयता की भावना को भी स्वीकार करते है। इनमे से कुछ पुरुषो मे राष्ट्रीयता की प्रखर भावना दृष्टिगत होती है। य देश की

समस्त समस्याओ का राष्ट्रीय निदान देखना चाहते है। देश के पिछड़ेपन से क्षुब्ध है और मिशनरी भावना से उसे दूर करने के समर्थक है।

10 इन पुरुषो का आर्थिक चिन्तन व्यक्ति एव राष्ट्र दोनो स्तरो पर प्रकट हुआ है। व्यक्ति के स्तर पर अर्थाभाव की कुण्ठा का सकेत मिलता है। विषम परिस्थितियो स जैसे तैसे समझौता करने की प्रवृत्ति के दर्शन भी होते है। राष्ट्रीय स्तर पर बिगडी हुई अर्थ व्यवस्था के लिए पूंजीपतियो एव राजनेताओं को दोषी ठहराया गया है। इसी प्रकार बुद्धिजीवियो तथा अर्थशास्त्र के प्रोफेसरो के अव्याव-हारिक चिन्तन के कारण बिगड़ी हुई अर्थ व्यवस्था मे सुधार नही होता इसका पोषण करते है। श्रमिको के प्रति मौखिक सहानुभूति प्रकट करने के प्रति भी अरुचि का भाव इनम है।

इस प्रकार समन्वित दृष्टि से ये पुरुष-पात्र आज के साधन सम्पन्न, शिक्षित पुरुष की मान्यताओ को ही प्रस्तुत करते है। जो वेशभूषा एव बाह्य व्यक्तित्व के प्रति विशेष जागरूक है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक इत्यादि समस्याओं के प्रति निजी मान्यताएँ रखता है। इसका जीवन दर्शन इन सबसे सम्बन्धित परस्पर विरोधी भावनाओ से जुड कर पुरुष के एक समन्वित व्यक्तित्व को प्रकट करता है।

सदर्भ

1 इन्द्रधनुषी-पृ 125
2. मायापुरी पृ -15
३ गंगा-पृ 14
4 विपन्ना-पृ 29
5 वही-पृ. 28
6 गंगा-पृ 13
7 ज्वालामुखी के गर्भ म (धर्मयुग, 16 मार्च 1975-पृ 11)
8 श्मशान चम्पा-पृ. 17
9 गंगा (साप्ता हिन्दु 2 नवम्बर 1975-पृ 23)
10. वही
11. इन्द्रधनुषी-पृ 160
12. वही-पृ. 161
13. निर्झरिणी और पत्थर-पृ 17
14. वह तीसरा (धर्मयुग 28 दिस. 1975,-पृ. 8)

15 उसके हिस्से की धूप-पृ 64

16 मनोविज्ञान नॉरमन एल मन (अनु आत्माराम शाह) पृ 206

17 वही

18 टूटा हुआ इन्द्रधनुष-पृ 16

19 कृष्णकली-पृ 169

20 वही-पृ 161

21 वही पृ 162

22 नरक दर नरक-पृ [illegible]

23 कृष्णकली-पृ 126

24 वही पृ 110

25 पानी की दीवार-पृ 15

26 सूखी नदी का पुल-पृ 131

27 उसके हिस्से की धूप-पृ 147

28 इन्नी-पृ 110

29 नावें-पृ 43

30 पानी की दीवार-पृ 66

31 वही पृ 65

32 रुकोगी नहीं राधिका-पृ 184

33 सोनाली दी-पृ 18

34 उसके हिस्से की धूप पृ 149

35 काली लड़की पृ 145

36 बेघर-पृ 153

37 वही

38 वही-पृ 167

39 मोहल्ले की पूजा-पृ 69

40 नावें-पृ 112

41 वही-पृ 113

42 पाषाणयुग (धर्मयुग 28 दिस 1975-पृ 33)

43 वह तीसरा (धर्मयुग [illegible] दिस 1975-पृ 8)

44 वही

45 विषकन्या पृ 24

46 कृष्णकली-पृ 210

47 बेघर-पृ 163

48 कृष्णकली-पृ 210

49 सूखी नदी का पुल-पृ 18

50 वही पृ 84

51 रुकोगी नहीं राधिका पृ 41

52 पाषाणयुग (धर्मयुग 28 दिस 1975-पृ 32)

53 वही-पृ 34
54 वही-पृ 39
55 रति विलाप-पृ 19
56 सूखी नदी का पुल पृ 70
57 उ नग-पृ 86
58 वही-पृ 75
59 रेत की मछली-पृ 54
60 इ नी-पृ 168
61 वही-पृ 7
62 श्मशान चम्पा पृ 41
63 आपका बंटी-पृ 44
64 वही-पृ 117
65 महानगर की मीना (सा हि दु जन 67 पृ 40)
66 उसके हिस्से की धूप-पृ 149
67 वही-पृ 150
68 वही-पृ 173
69 अमलतास
70 दूरियाँ-पृ 61
71 वही-पृ 67
72 सूखी नदी का पुल-पृ 67
73 नरक दर नरक पृ 58
74 वही-पृ 59
75 पतझड़ की आवाज पृ 130
76 नरक दर नरक-पृ 76
77 विवाह और नैतिकता (अनु धर्मपाल)-पृ 97
78 कृष्णकली-पृ 36
79 श्मशान चम्पा-पृ 65
80 के एम पनिकर हिन्दू सोसाइटी एट क्रास रोड्स-पृ 18
81 मित्रो मरजानी-पृ 64
82 वही पृ 16
83 गावें-पृ 17
84 पचपन खम्भे लाल दीवार-पृ 58
85 नरक दर नरक-पृ 102
86 कृष्णकली-पृ 201
87 चौदह फेरे-पृ 130
88 मुझे माफ करना-पृ 46
89 मयनाघर-पृ 40
90 नयना-पृ 30

91. वही–पृ. 29
92. वही पृ. 132
93. वही
94. वही-पृ. 137
95. अपनाघर-पृ. 41
96. वंचिता-पृ. 125
97. इन्नी–पृ. 168
98. नरक दर नरक-पृ. 110
99. सागर पाखी–पृ. 61
100. इन्एरली-पृ. 215
101. उसके हिस्से की धूप-पृ. 176
102. वही–पृ. [illegible]
103. नरक दर नरक–पृ. 102
104. वही–पृ. 169
105. उसके हिस्से की धूप–पृ. 119
106. रुकोगी नहीं राधिका–पृ. 123
107. पानी की दीवार
108. नरक दर नरक–पृ. 102
109. वही–पृ. 84
110. वही–पृ. 97
111. उसके हिस्से की धूप–पृ. 175
112 वही-पृ. 175
113. उसके हिस्से की धूप–पृ. 24
114. अपनाघर–पृ. 48
115. वही
116. रुकोगी नहीं राधिका–पृ. 111

महिलाओं की दृष्टि में पुरुष : एक विवेचन

महिलाओं के उपन्यास : एक दृष्टि

हिन्दी लेखिकाओं के इन उपन्यासों का अध्ययन करने पर कई महत्वपूर्ण तथ्य दृष्टिगत होते हैं। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि इन लेखिकाओं ने उपन्यास के कथ्य के रूप में प्रायः स्वयं के जीवन को ही अभिव्यक्ति दी है। लेखिका और पात्रों के बीच रचनाकार और रचना के रूप में जो अंतर होता है उसकी कोई सीमा रेखा नहीं स्वीकार की गई है। उपन्यास में कहाँ पात्र की बात लेखिका की अपनी बात बन जाती है और कहाँ लेखिका स्वयं पात्र बनकर बोलने लगती है इसका पता लगाना मुश्किल है। अर्थात् अपने नारी पात्रों से लेखिकाएँ कहीं कहीं इतना अधिक घुल मिल गई हैं कि दोनों में विभेद करना सहज नहीं है। इस प्रकार अपनी बात को उपन्यास के कथ्य की संकल्पना के मोल पर उपन्यासों में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

यह बात भी ज्ञात होती है कि उपन्यासों के अधिकांश पुरुष स्थिर पात्र हैं। उनके व्यक्तित्व में विशेष परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता। प्रायः परिवार एवं पति-पत्नी सम्बन्धों में पुरुष की भूमिका को ही प्रस्तुत किया है इसलिए पात्रों के व्यक्तित्व निर्माण के अनेक महत्वपूर्ण पहलु दृष्टि ओट में हो गए हैं। उनके चरित्रों में बदलाव के अवसर बहुत कम आए हैं ऐसे स्थलों पर भी लेखिकाओं की नारी के प्रति विशिष्ट रुझान वाली दृष्टि उनको नियन्त्रित करती रही है।

इसी प्रकार किसी एक पात्र के सम्बन्ध में मान्य धारणाओं की पुष्टि के लिए लेखिकाओं ने उनके जीवन में एक सी घटनाओं की आवृत्ति की है। नारी पीड़ा की चर्चा करते समय उसके जीवन में बार बार पीड़ाकर प्रसंगों की अवतारणा की गई है जैसे उसके जीवन में क्षणांश के लिए भी सुख की सृष्टि न हुई हो। पुरुषों के आचरण को भी ऐसे ही उपायों से नीचा दिखलाने का प्रयास हुआ है।

अस्तु, पात्रों के निर्माण में महिलाओं का अनावश्यक हस्तक्षेप दृष्टिगत होता है। पुरुष पात्रों को भी अपनी इच्छानुसार संस्कार देने का प्रयास किया गया है। इसलिए इनके पात्र आत्म विकास के अवसरों से दूर सामान्यतः लेखिकाओं की इच्छाओं पर अवलम्बित हैं।

उपन्यासो मे चित्रित पुरुष के विविध रूप

इन उपन्यासों मे चित्रित पुरुष-पात्र युगीन जीवन की समग्रता का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं करते। जीवन के नाना क्षेत्रों म क्रियाशील विविध पुरुषो का चित्रण इनमे नही हुआ है। पुरुषो को चित्रित करने के लिए परिवार को मुख्य आधार बनाया गया है। पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि स ही पुरुष की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। इनमे भी *पिता के रूप म पुरुष की भूमिका अधिक विस्तार से चित्रित हुई है। पिता के रूप मे* चित्रित पुरुष-पात्र सामान्यत पुरानी पीढी के चिन्तन एव आचरण को प्रस्तुत करते है। जहां युवावस्था के पुरुषो का चित्रण हुआ है वहां उनका आचरण परिवार म रहते हुए भी भिन्न रुचियो पर आधारित है। दोनो ही पीढियों के पुरुषो म पारिवारिक सघर्षो स सीधे जूझने की प्रवृत्ति नही है। तनाव उपस्थित होन पर पुरुष प्राय *पलायनवादी रूप अपनाते है। 'ज्वालामुखी के गर्भ म' जैस उपन्यास मे पुरानी पीढी* के मौसाजी पारिवारिक तनावो के समय 'बद्धुआधर्म' अपनाते हुए पूजाघर मे घुसकर समस्याओं से भागते हैं तो नयी पीढी का मनीश घर के कटु वातावरण से भागकर पढाई के बहाने दूसरे शहर मे ही बस जाता है। इस प्रकार परिवार मे पुरुष की भूमिका म यद्यपि सम्बन्धो के निर्वाह क प्रति उत्सुकता का भाव तो दृष्टिगत होता है तथापि उसके आचरण मे स्थितियो से प्रत्यक्ष जूझने की अपेक्षा पलायन करने की प्रवृत्ति प्रमुख दृष्टिगत होती है।

विविध व्यवसायो मे कर्मरत पुरुषो का उपन्यासों मे चित्रित करने के प्रयास हुए हैं इनम भी नौकरी पेशा व्यक्तियो की मन स्थितियो को, उनके आचरण को अधिक विस्तार मिला है। अधिकाश पुरुष नौकरी पेशा है जबकि व्यवसायी, व्यापारी या *अन्य क्षेत्रों मे लगे हुए पुरुषो का चित्रण विस्तार से नही हुआ है। इससे महिलाओ* क अनुभव क्षेत्र की सीमा का अन्दाजा लगाया जा सकता है। नारियाँ परिवार मे *ही दुनिया का देख सकी हैं, उससे बाहर यदि निकली भी हैं तो नौकरी पेशा* महिलाओ (वकिंग वूमेन) के रूप मे ही। नौकरी का क्षेत्र भी प्राय स्कूलो, कॉलेजो तक ही परिसीमित है। परिवार से बाहर इनका अनुभव क्षेत्र फलत. नौकरी पेशा व्यक्ति की जीवन पद्धति तक ही फैला हुआ है। यही कारण है कि नौकरी करने वाले पुरुषो को ही उपन्यासों मे अधिक विस्तार से चित्रित किया गया है। किन्तु इस दृष्टि स भी पुरुष-पात्र समाज के सभी क्षेत्रो मे क्रियाशील पुरुषो का प्रतिनिधित्व नहीं करते। नौकरी पेशा व्यक्तियों में सिर्फ उन्ही को चित्रित किया गया है जो अपेक्षाकृत अच्छी नौकरियों मे हैं। लेक्चरर, डॉक्टर, ऑफीसर, इन्जीनियर आदि का कार्य करने वाले पुरुषो का चित्रण ही लेखिकाओ ने अधिक किया है। इनके चिन्तन मे अर्थाभाव की चिन्ता लेशमात्र भी नहीं है। इस कारण इन्हे प्रेम करने की पर्याप्त फुरसत है। रोमानी भावनाओं से बाहर आकर ये पात्र धर्म, राजनीति

इत्यादि के प्रति आत्म विचार प्रस्तुत कर सके हैं। इतर व्यवसायों म सलग्न पुरुषा म से भी अधिकांश साधन सम्पन्न हैं। मजदूर, कृषक, चपरासी, सैनिक, सिपाही, निचले दर्जे के व्यापारी इत्यादि अपेक्षाकृत कम आय वाले पुरुषों का चित्रण अधिक नहीं हुआ है। इससे यह सकेतित होता है कि महिलाओ का सामाजिक सम्पर्क क्षेत्र बहुत सीमित है।

नौकरी करने वाले पुरुष मिली जुली मान्यताओ के पोषक हैं। अलग अलग व्यवसाय के लोगो के सामने जो अलग अलग समस्याएँ आती हैं उनका चित्रण विस्तार म नहीं हुआ है। तथापि उपन्यासो म पुरुष सामान्यत अपने कार्य क्षेत्र के प्रति अधिक उदासीन नहीं है। व्यवसायो के प्रति गम्भीरता के दर्शन भी होते हैं इस दृष्टि स उन्हे कर्मठ कहा जा सकता है। यही कारण है कि व्यवस्था के प्रति चाहे वह सस्थाओ से सम्बन्धित हो चाहे समूचे राष्ट्र से सम्बन्धित, तीव्र असन्तोष का भाव रखत है। कार्यालयो म व्याप्त भ्रष्टाचार एव अव्यवस्था के सदर्भ म अधिक नहीं कहा गया है। तथापि जो कुछ भी वर्णन हुआ है उसके आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ये पुरुष उन्हे स्थापित सत्य मानते हैं और ऐसा आचरण करते समय आत्मकुण्ठा का अनुभव नहीं करते। आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए भ्रष्ट साधनो को अपनाने म भी सकोच नहीं करते। अपने अधीनस्थो से भी ऐसे ही तरीको से उन्हे सन्तुष्ट करने की आशा भी करते है। कुछ आदर्शवादी पात्र ऐसे भी हैं जो भ्रष्टता स क्षुब्ध है और ऐसे चिन्तन के कारण व्यवसाय छोडने को विवश हो जाते हैं। नौकरी पेशा व्यक्तियो म कामजनित दुर्बलता को भी प्रकट किया गया है। अधिकाश पुरुष अपनी सहयोगिनी या परिचित महिलाओ क साथ यौन सम्बन्ध स्थापित करने मे सचेष्ट रहते हैं। अपवाद स्वरूप चित्रित कतिपय पुरुषो को छोडकर शेष सभी नौकरी पेशा पुरुषो म सेक्सजनित दुर्बलताओ का चित्रण हुआ है।

नौकरी पेशा पुरुषो से इतर व्यवसायो म लगे हुए उद्योगपतियो व्यापारियो का चित्रण अधिक नहीं हुआ है। बडे उद्योगपतियो व्यापारियो के चित्रण मे वैविध्य एव सूक्ष्मता के दर्शन नहीं होते। उनके चिन्तन को तथा आचरण को विस्तार से प्रस्तुत नहीं किया गया है। व्यवसायों से जुडे हुए इन सभी व्यवसायियो म स फुटपाथ पर लघु व्यापार करने वाले पुलिस से पीडित हैं तो बडे उद्योगपति मजदूरो की अकर्मण्यता और हडतालो की चिन्ता से। बडे उद्योगपतियो म इतनी महत्वाकाक्षा है कि वे देश के ही नहीं समूचे विश्व के सबसे बडे उद्योगपति बनना चाहते है। मध्यम दर्जे के व्यापारी सख्या म कम हैं किन्तु उनकी धन पिपासा का अन्दाजा लगाया जा सकता है। इस प्रकार व्यवसाय के आधार पर चित्रित पात्रो के व्यवहार म व्यावसायिक रुचियो, सस्कारो समस्याओ, आकाक्षाओ आदि का चित्रण सक्षेप म ही हुआ है।

दाम्पत्य सम्बन्ध की दृष्टि से चित्रित पुरुष पात्र महिलाओं की पुरुष चेतना को अधिक विस्तार से वर्णित करते हैं। इनके आचरण में पत्नी पर अपने अहम् को आरोपित करने की प्रवृत्ति प्रमुख है। सभी पति अपनी पत्नी को अनुगता, अनुशासिता के रूप में ही देखना चाहते हैं सहधर्मिणी के रूप में नहीं। जहाँ कहीं भी उनके स्वाभिमान को ठेस पहुँचती है वे क्रुद्ध हो जाते हैं। पत्नी के लिए पीड़ादायक स्थितियों की सृष्टि करने वाले ये पुरुष आज के पति का प्रतिनिधित्व करते हैं। प्राय. सभी में यौनलिप्सा की वृत्ति है और वे पत्नी से इतर स्त्रियों से सम्बन्ध स्थापित करने में सकोच नहीं करते। पत्नी की उपस्थिति में या उसकी जानकारी में भी ऐसा करते हुए लज्जित नहीं होते। पति रूप में प्राय सभी पुरुष पत्नी से अपने को ऊँचा समझते हैं और आत्म निर्णय को अन्तिम देखने के अभ्यस्त हैं। विवश पतियों की चर्चा भी इन उपन्यासों में अधिक हुई है। ऐसे पति पुरुष द्वारा नारी के अहं के प्रत्यारोपण के लिए प्रस्तुत किए गए हैं।

सामाजिक वर्गों के आधार पर पुरुषों का चित्रण अपूर्ण है। महिलाओं की लेखनी उन्हीं पुरुषों को लेखनीबद्ध कर सकी है जो अपेक्षाकृत सुविधा सम्पन्न हैं। जिनकी रुचियाँ कौलीन्य भाव युक्त हैं। जो अर्थाभाव से पीड़ित नहीं हैं। निम्न वर्ग के पुरुष-पात्र पूरी तरह अनुपस्थित हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि ऐसे पुरुषों की स्थितियों से महिलाएँ अधिक परिचित नहीं हैं। नारी के इर्द गिर्द घूमने वाले इनके उपन्यासों के कथानक प्राय. उन्हीं नारियों की समस्याओं का चित्रण कर पाए हैं जो उच्च या उच्च मध्य वर्ग की हैं। इसलिए इसी परिवेश में पुरुष को देखने-आंकने का प्रयास हुआ है। पुरुषों में वर्ग चेतना का चित्रण भी कम हुआ है। उपन्यासों में स्थानापूर्ति के रूप में या प्रगतिशील लेखन की ख्याति अर्जित करने के मोह में कहीं-कहीं बुर्जुआ वर्ग, दलित वर्ग आदि की चर्चा की गई है। इससे आगे बढ़कर निम्न-वर्ग के पुरुषों की यथार्थ स्थिति को चित्रित करने का प्रयास इन लेखिकाओं के द्वारा नहीं के बराबर हुआ है।

सामान्यत. शिक्षित पुरुषों का ही इन उपन्यासों में चित्रण किया गया है। अर्द्ध-शिक्षित एवं अशिक्षित पुरुषों की नितान्त उपेक्षा की गई है। लेखिकाओं ने उच्च शिक्षा प्राप्त, विदेशी शिक्षा प्राप्त पुरुषों को तो उपन्यासों में स्थान दिया है किन्तु अनपढ़ पुरुषों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया है।

क्षेत्रीय संस्कारों के आधार पर उपन्यासों में महानगरीय चेतना को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई है। नगरों में रहने वाले पुरुष भी देखे जा सकते हैं लेकिन ग्राम्यांचल के पुरुषों का चित्रण नहीं हुआ है। यह भी लेखिकाओं की उस दृष्टि की ओर संकेत करता है कि उन्होंने जो पुरुष देखा और चित्रित किया है वह सिर्फ नगर

म बगने वाला है। इनके उपन्यासो मे विदेशी पुरुष देखे जा सकते हैं लेकिन अपने ही देश के ग्रामीण पुरुष उनकी दृष्टि मे नही आ सके। शिवानी ने पर्वतांचल के पुरुषो की मन स्थिति को अवश्य विस्तार से चित्रित किया है।

महिलाओ के उपन्यासो का पुरुष कौन सा है?

उपर्युक्त निष्कर्ष इस बात को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि हिन्दी उपन्यास लेखिकाओ के उपन्यासो म जो पुरुष चित्रित हुआ है वह कौन सा पुरुष है? निश्चय ही वह युवावस्था का पुरुष है, महानगरीय जिन्दगी जी रहा है, शिक्षित है, अच्छी नौकरी करता है या बडे उद्योगो अथवा व्यापारो मे लगा हुआ है इसलिए आर्थिक दृष्टि म निश्चिन्त है, जिसके चिन्तन मे अर्थाभाव की पीडा कही नहीं है, परिवार म जिसकी भूमिका पलायनवादी वृत्तियो म परिचालित है जो घोर अहवादी है जो पत्नी को अनुगामिनी के रूप मे देखना अधिक पसन्द करता है, जो यौनाक्रान्त जीवन जीता है, जिसकी बौद्धिकता सदैव उसकी अपनी बात को सत्य सिद्ध करने म सचेष्ट रहती है।

उपन्यासो मे पुरुष-व्यक्तित्व

पात्रो के पृथक्-पृथक् स्वरूप एव आचरण स पुरुषो का जो एक समन्वित व्यक्तित्व निर्मित होता है उसका विश्लेपण चौथे अध्याय मे किया जा चुका है। उसके आधार पर महिलाओ के द्वारा चित्रित पुरुष के व्यक्तित्व को देखा जा सकता है। उनके द्वारा चित्रित पुरुष का व्यक्तित्व निम्न प्रकार है—

महिलाओ द्वारा चित्रित पुरुष नायिकाओ की ही भाँति सुदर्शन है। पाठकों को प्रभावित करने के लिए इन्हे लाखो मे एक सौदर्य को धारण करने वाला बतलाया गया है। वह सुन्दर वेशभूषा मे सुसज्जित रहने वाला है। यही नहीं उसका सौंदर्य-बोध उसे अपनी प्रेमिका या पत्नी को भी सुसज्जित देखने की प्रेरणा देता है। किन्तु इस दृष्टि से ऐसे पुरुष भी देखे जा सकते है जो वेशभूषा के प्रति लापरवाह है अथवा उस दृष्टि से अधिक मितव्ययी हैं। उसका सामाजिक आचरण सामान्यत शिष्टाचार की सीमा के अतर्गत ही दृष्टिगत होता है। कही कही उसके आचरण की अभद्रता परिलक्षित होती है। ऐसे अभद्र पुरुष अभद्रता करते समय किसी भी प्रकार कुण्ठित नहीं होते हैं। पुरुष मे आचरणगत दोहरापन भी उसके व्यक्तित्व के एक अग के रूप मे देखा जा सकता है। घर से बाहर समाज मे पत्नी के प्रति सहृदय रहने तथा घर मे उसके प्रति असहिष्णुतापूर्ण आचरण करने की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है।

पुरुष के व्यवहार को सुनिश्चित दिशा देने वाला उसका चिन्तन पक्ष विस्तारपूर्वक वर्णित हुआ है। शिक्षा, सस्कार, आस्था एव निजी मान्यताओ से घिरा हुआ उसका व्यक्तित्व बहु आयामी है। विविध सामाजिक स्थितियो एव समस्याओ के प्रति

उसकी मान्यताएँ विविधामुखी है। उसके चिन्तन के वे पहलू जो पारिवारिक स्थितियों से जुड़े हुए हैं अधिक वर्णित हुए है। यह पुरुष संयुक्त परिवार की अपेक्षा स्वतंत्र रहना अधिक पसन्द करता है, यद्यपि संयुक्त परिवार की भावना को पूरी तरह जोड़ नहीं पाया है। पारिवारिक झंझटों को दलदल की तरह देखता है तथा यथासम्भव उनसे भागने की चेष्टा करता है। उसका यह पलायनवाद उसके व्यक्तित्व को महत्त्वपूर्ण आधार देता है। परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण को यह माता-पिता की जिम्मेदारी मानता है। अतः अर्थोपार्जन करते हुए भी अपनी वैयक्तिक सत्ता बनाए रखना चाहता है। विवाह को अनिवार्य शारीरिक आवश्यकता मानता है, *किन्तु पत्नी का मानसिक तोष देने वाली गृहिणी देखना पसन्द करता है।* अर्थात् पत्नी से य अपेक्षाएँ रखता है कि वह न केवल शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करेगी वरन् उसे मानसिक शान्ति भी देगी। परिवार की समस्याओं से स्वयं जूझते हुए अनुशासिता रहेगी।

विवाह से पूर्व रोमान्स को पसन्द करता है। प्रेम को विवाह का अनिवार्य आधार भी मानता है। प्रेमिका से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने से नहीं हिचकिचाता लेकिन विवाह के समय पत्नी को अक्षतयोनि देखना चाहता है। दहेज से भी इसे अरुचि नहीं है, बल्कि दहेज की आशा रखने वाले पुरुष भी देखे जा सकते है। दहेज के भारी चैक के समक्ष पत्नी के दोषों को न देखने वाले पुरुष भी हैं तो दहेज को अस्वीकारने वाले भी। पत्नी की मृत्यु पर एकाकीपन की पीड़ा से इतना ग्रस्त है कि पुनर्विवाह करने में ही मुक्ति देखता है। बड़े-बड़े बच्चों का पिता होते हुए भी उम्र में अधिक छोटी लड़की से विवाह करता है। लेकिन नवपरिणीता से यह अपेक्षा करता है कि वह प्रौढ़ा का सा आचरण करेगी। इसी प्रकार एकाधिक विवाह करने में भी उसे संकोच नहीं है। *विवाह के सम्बन्ध में जाति, धर्म आदि के बन्धनों को अब छोड़ता जा रहा है।* पति-पत्नी में तनाव हो जाने पर विवश समझौता करते हुए कष्टकर जीवन जीते रहने की अपेक्षा तलाक को अधिक पसन्द करता है। लेकिन तलाक शुदा नारी के प्रति अनुकूल आचरण का भी इसमें अभाव है। इस दृष्टि से मर्द के दम्भ का पालन की प्रवृत्ति अधिक है। अत्याधुनिक विचारों से जुड़कर यह कहीं कहीं तलाक की आवश्यकता को भी नकारता है। पुरुष की एतद्विषयक विचारधारा का आधार नारियों के चिन्तन का वह पक्ष है जिसके अंतर्गत वे आधुनिक जीवन स्थितियों से जुड़कर जड़ मान्यताओं को तोड़ने की चेष्टा करती हैं।

इस प्रकार विवाह से सम्बन्धित इस पुरुष का चिन्तन यद्यपि आधुनिक है तथापि यह संस्कारों की जड़ता से पूरी तरह मुक्त भी नहीं हो सका है और अनेक बार उन संस्कारों के मोह के कारण उसका आचरण नारी के लिए कष्टकर सिद्ध हो जाता है।

परिवार से बाहर की अन्य सामाजिक समस्याओं के प्रति उसका चिन्तन अधिक विस्तार से वर्णित नहीं हुआ है। भ्रष्टाचार को सामाजिक अनिवार्यता मानता है और भ्रष्ट आचरण करने में किसी प्रकार संकोच नहीं करता। यद्यपि राष्ट्रीय दृष्टि से सोचने का भाव भी अब प्रस्फुटित हुआ है तथापि उसका प्रस्फुटन अत्यंत सीमित है। वेश्यावृत्ति को समस्या के रूप में नहीं लिया गया है बल्कि वेश्यागमन करने की ओर रुझान का भाव ही परिलक्षित होता है। बेरोजगारी से ग्रस्त पुरुष कम है इसलिए इस ओर उसका चिन्तन अधिक स्पष्ट नहीं है। अतः महिलाओं के इस पुरुष के व्यक्तित्व में सिर्फ वे ही वृत्तियाँ दृष्टिगत होती हैं जो उसके जीवन में प्रत्यक्ष जुड़ी हुई हैं उनसे बाहर निकल कर कुछ सोचने समझने की चेष्टा वह नहीं करता।

जहाँ कहीं वह पुरुष अपनी इस स्वार्थ केन्द्रित वृत्ति से बाहर निकला है वहाँ इसकी विचारधारा आधुनिक नवयुवक के चिन्तन को ही प्रस्तुत करती है। वर्तमान व्यवस्था के प्रति इसमें असन्तोष अधिक है। भ्रष्ट व्यवस्था से पीड़ित इसका मन उसमें सुधार लाने की दृढ़ इच्छा रखता है। इसकी धारणा है कि क्रान्ति के द्वारा ही यह भ्रष्ट व्यवस्था टूट सकेगी। शिक्षा के केन्द्र भी भ्रष्टाचार के केन्द्र हैं अतः वहाँ भी परिवर्तन अनिवार्य है ऐसी इसकी मान्यता है। साहित्यकार जो परिवर्तन लाने के लिए नेतृत्व कर सकते हैं भी अक्षम हैं क्योंकि इसकी मान्यता है कि वे व्यवस्था का ही एक अंग हैं। इसलिए उसकी दोगली नीति का विरोध करते हुए उन पर व्यवस्था से जुड़ जाने का प्रत्यक्ष आरोप लगाता है। इसी प्रकार नेताओं से, भाषणों से, नारेबाजी से इसे इतनी चिढ़ है कि वह उन्हें पूरी तरह अस्वीकारता है। व्यवस्था के प्रति असन्तोष का यह भाव इसमें एक ओर राष्ट्रीयता की विचारधारा को जन्म देता दृष्टिगत होता है तो दूसरी ओर यही स्वर उसे मानवतावादी विचारा से सम्पृक्त करता है।

नारी के प्रति इसकी मान्यताओं में भी नूतन दृष्टि के संकेत मिलते हैं। पुत्र या पुत्री में अब अधिक भेद नहीं किया जाता। पुत्री पैदा होने पर यह उतना क्षुब्ध नहीं होता जितना पुरानी पीढ़ी के पुरुष होते थे। नारी स्वातंत्र्य एवं स्वावलम्बिता की अवरोधक समस्त विरोधी, स्थितियों को अस्वीकारता है और नारी को अपने हक पाते हुए देखना चाहता है। पर्दा प्रथा को पसन्द नहीं करता इसलिए इसका समर्थन करने वाले पुरुषों की निन्दा करता है। लड़कियों का समाज की प्रत्येक गतिविधि में भाग लेने, स्वावलम्बी होने, पुरुषों से मित्रता स्थापित करने, उनके साथ काम करने को बुरा नहीं समझता फिर भी एतद् विषयक समस्त संकीर्णताओं से पूरी तरह मुक्त नहीं हुआ है। मधुकर जैसे पुरुष दूसरे की विवाहिता से प्रेम-विवाह करने पर भी 'वोमेनलिब' और 'फ्रीलव' में विश्वास नहीं करते। इस प्रकार वैचारिक दृष्टि से

उदारमना होने हुए भी व्यवहार मे यह पुरुप पूरी तरह नारी स्वातन्त्र्य और स्वावलम्बिता का समर्थक नही हो सका है। नारी के प्रति निरकुशी दृष्टि इसमे यथावत् देखी जा सकती है। उस पर अपना अह थोपने मे सचेष्ट रहता है। नारी को अभी तक लोभनीय वस्तु ही समझता है और अनैतिक तरीके से उसे यौनाकाक्षाओ का शिकार बनाता है। पत्नी को अनुगता रूप मे ही देखना चाहता है। जब अपने अह को, अपनी यौन बुभुक्षा को तथा अपनी इच्छा को नारी पर आरोपित नही कर पाता तो उससे टकराता है, कुण्ठित होता है, पलायनवादी बन जाता है।

धर्म आदि के सम्बन्ध मे विचार यद्यपि अस्पष्ट हैं तथापि वे आधुनिक जीवन मूल्यो पर ही अधिक आधारित हैं। धर्म के प्रति अब बदली हुई दृष्टि दिखलाई पडती है। उसकी सामयिक तर्क सगत व्याख्या करता है। जिसमे अधश्रद्धा, पाप पुण्य पर आधारित चिंतन की अपेक्षा आत्मा की कसौटी पर अच्छी बुरी लगने वाली बात को महत्व देना अधिक है। यह वाह्याडम्बर को पसन्द नही करता और ढोगी तथा भ्रष्ट साधुओ के प्रति इसम अरुचि का भाव अधिक है। इसी प्रकार राजनीति को यह एक सुनिश्चित विषय आदाय मानता है। स्वातन्त्र्योत्तरकालीन मोहभग से शुरू होकर इसका चिन्तन देश के पिछडपने की भावना से सत्रस्त दृष्टिगत होता है।

महिलाओ की दृष्टि मे पुरुष

इस अध्ययन के उपरान्त महिलाओं की दृष्टि मे पुरुप के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि इनकी दृष्टि मे पुरुप वह है जो सुन्दर है, सुशिक्षित है, सुसज्जित है, युवा है। जो रोमान्स को पसन्द करता है, प्रेमिका से शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने मे सकोच नही करता लेकिन विवाह के समय पत्नी को अक्षतयोनी देखना चाहता है। दहेज लेने मे आनाकानी नही करता। पत्नी की मृत्यु पर पुनर्विवाह करता है लेकिन उम्र मे अधिक छोटी दूसरी पत्नी के प्रति सहिष्णुतापूर्ण आचरण नही करता। पत्नी को जीवन की पूरक के रूप मे देखना चाहता है और यह आशा करता है कि वह घर गृहस्थी के सारे झझटो से उसे मुक्त रखेगी, उसे शारीरिक सन्तोष तो देगी ही साथ ही मानसिक तोष भी प्रदान करेगी। पत्नी से इतर स्त्रियो से यौन सम्बन्ध स्थापित करने मे सचेष्ट रहता है। पति-पत्नी के बीच तनाव आ जाने पर तलाक ले लेना पसन्द करता है। किन्तु तलाकशुदा नारी के प्रति अनुकूल विचार नही रखता। भ्रष्टाचार का युग सत्य मानता है और भ्रष्ट आचरण करने मे सकुचित नही होता। वर्तमान व्यवस्था को अधिक पसन्द नही करता और उसे बदलने का भी इच्छुक है, किन्तु सुधारवाद के प्रति इसका झुकाव कम है। बेरोजगारी, मुनाफाखोरी, वेश्यावृत्ति जैसी सामाजिक बुराईयो के प्रति विचारने या कुछ करने की चेष्टा करने की अपेक्षा निजी समस्याओ के प्रति अधिक सचेष्ट है इस प्रकार स्वार्थ केन्द्रित

अधिक है। सयुक्त परिवार मे रहने की अपेक्षा स्वतन्त्र रहना अधिक पसन्द करता है। पारिवारिक उलझनों से यथासम्भव पलायन कर जाता है। धर्म को अधिक महत्व नहीं देता बल्कि बाह्याचारो, ढोंगी धार्मिक नेताओं का विरोध करता है। नैतिकता के प्रति आत्म विचार रखता है। किसी एक राजनैतिक दल के प्रति प्रतिबद्ध नहीं है, बल्कि उन दलों से एक प्रकार से असम्पृक्त है। राजनीति को गम्भीरता म लेता है इसलिए राजनेताओ के भ्रष्ट आचरण एव अवसरवादी वृत्ति से क्षुब्ध है। इसी प्रकार देश के पिछड़ेपन से त्रस्त है और दूसरे देशों की समता म वहा की अभावग्रस्तता को नापसन्द करता है। आर्थिक दृष्टि से अभावो की पीडा का अनुभव भी करता है लेकिन देश की पिछडी अर्थ व्यवस्था के लिए नेताओ, अर्थ शास्त्रियो के अव्यावहारिक चिन्तन को दोषी मानता है। स्थितियों की वैज्ञानिक व्याख्या करने की चेष्टा करता है, साहित्य के प्रति रुचि रखता है लेकिन व्यवस्था से जुडे हुए साहित्यकारो से क्रान्ति की आशा नही करता। अग्रेजी भाषा के प्रति विशेष आकर्षण रखता है। वक्त के महत्व को जानता है, जिन्दगी को कॉफी के प्याले मा कडवा मानता है, मृत्यु को अनिवार्य मानते हुए भी उसस आतकित है। सिर्फ इसी जन्म म विश्वास करता है फिर भी भाग्यवादी है।

महिला पात्रो की दृष्टि मे पुरुष

उपन्यासों मे अनेक प्रसगो मे पुरुषो के प्रति नारी पात्रो के द्वारा तथा स्वय लेखिकाओ के द्वारा भी कही कही अनेक बातें कही गई हैं। उनको यहाँ उद्धृत कर उनके आधार पर भी पुरुष के प्रति नारी की दृष्टि को आँका जा सकता है-

(क) पुरुष क्रूर है—

1 पुरुष . ओह् बडा क्रूर प्राणी है वह। वह चाहता है कि भागकर आई हुई स्त्री भी उसके साथ सती-साध्वी का व्यवहार कर। किन्तु खुद वह उसकी रखैल स ज्यादा इज्जत नही करता। (इन्नी पृ 140)

2 पुरुष बहुत कुटिल है। (पानी की दीवार पृ 121)

3 विधाता ने बनाई ही क्यो औरतजात। इस मर्दों की दुनिया म सिर्फ मर्द ही होते तो अच्छा होता। ईंट का जवाब पत्थर से देते, निपटते रहते। लेकिन, फूलो सी तन मन वाली नारी, रूप और मद से भरपूर कलियाँ, पुरुष के हाथो डाल से तोडी जाती हैं, पैरो तले रोद दी जाती है। पुरुष स्वय ही समाज के कानून बनाते हैं, उनका कुछ नही बिगडता। छली नारी ही जाती है, सजा भी वही पाती है। पुरुष केवल पुरुष बना रहता है, नारी ही सती या कुलटा कहलाती है। (प्रिया पृ 45)

(ग) पुरुष वासनान्ध है।

1 मरद का मन चाहे वह लाख साधे, औकात म होता है एकदम देशी कुत्ता। सामने हड्डी रख दो तो कितना सिखाया पढाया हो, कभी लार टपकाए बिना रह सकता है? (भैरवी–पृ 130)

2 सभी पति पत्नियों को वेश्या से गया-बीता समझते हैं। (बात एक औरत की पृ 143)

3 उसने सदैव यही अनुभव किया कि प्रत्येक स्थान पर पुरुष उसकी ओर एक जैसी दृष्टि से ही देखते हैं। मानो वह रसगुल्लों की एक प्लेट है जिसमें सबका साझे का अधिकार है। (मोम के मोती पृ 149)

4 'भ्रमर' इस भूत का नाम होगा 'भ्रमर', नारी के लिए 'कामना' नाम जितना सार्थक है, पुरुष के लिए 'भ्रमर' नाम भी उतना ही सार्थक। सूरदास ने 'भ्रमरगीत' ऐसे ही नहीं लिखा। और हर नारी में 'कामना' होती हो या न होती हो, हर पुरुष म भ्रमर अवश्य होता है। और किसी राम को अपने रामत्व को कभी प्रमाणित नहीं करना पडता वह तो 'सीतात्व' को ही अग्नि परीक्षा देनी होती है। कृष्णमय हो उठना राधा की विवशता हो सकती है किन्तु कृष्ण केवल 'राधामय' हो उठते तो सहस्रो गोपियो सहित 'महाभारत' की लीला से लेकर 'गीता' के कर्मयोग का प्रवचन देना कैसे सम्भव होता? लीलामय कृष्ण और योगीराज कृष्ण का एक नाम 'भ्रमर कृष्ण' भी तो है। किन्तु 'राधा' का कोई और नाम है क्या? (प्रिया पृ 152)

(ग) पुरुष नीच और स्वार्थी है।

1 सभ्यता के इस युग मे, पुरुष ने मनोरंजन के सब साधन अपने लिए रख लिए हैं, नारी को वैसे का वैसा ही विहीन रखा है। उसके हाथ प्रतिबन्धो की एक लम्बी सूची पकड़ा दी है। (पानी की दीवार पृ 87)

2 ओह, यह पुरुष सब नीच होते हैं। (मोम के मोती पृ 7)

3 पहले भी नारी की यही समस्या थी कि वह सन्तान को जन्म देती थी, पुरुष उसके शरीर से अधिक उसके व्यक्तित्व को महत्व नहीं देता था। नारी की यह समस्या अभी तक ज्यों की त्यों ही बनी है। (काली लड़की पृ 62)

(घ) पुरुष कमीन है।

1 मेरा यह बेअक्ल मर्द जना यही नहीं जानता कि मुझको दरियाई नार किस गुर से काबू आती है मैं निगोडी बन ठनके बैठती हूँ तो गबरू सौदा सुल्फ लेने उठ जाता है। अरे जिसने नार मुटियार को सधाने की पढाई नहीं पढ़ी वह इस बाला की चतुराई को क्या समझेगा? (मित्रो मरजानी पृ 34)

2 पुरुष कायर होते हैं। (मोम के मोती पृ 80)

(ङ) पुरुष पशुवत् आचरण करने वाला है।

1 पुरुष एक वहशी जानवर है, उसे बाँधोगी नही तो वह कभी भी बहक सकता है। (बात एक औरत की पृ 86)

2 पुरुष वह कुत्ता मेडिया है, जिसने चिर पुरातन से नारी का इसी प्रकार पतन किया है। नारी का कौमार्य नष्ट करके यौवन की मादकता को समाप्त करके पुरुष हँसता है और नारी की तडप को, उसकी पीडा को उसका आनन्द समझकर उस पार चला जाता है। (वेदना पृ 127)

3 पुरुष का अर्थ यह नही कि वह हिंसक पशु बने। पुरुष सदा ही नारी को मादक मदिरा के समान देखता है और पीता है। इस प्रकार उसकी प्यास बुझती नही और अधिक उत्तेजित होती है। मानव ने सुन्दर नारी का नाश कर दिया। (वेदना पृ 127)

4 पुरुष ही तो हो, मेडिया नही, मेडिये से केवल एक सीढी नीचे। (मोम के मोती पृ 86)

5 गिद्ध जानवर नही, 'आदमी' होता है। (प्रिया पृ 96)

6 सजय जैसे ही पति होते हैं क्या? वहशी, जानवर, सुख-दुख और अपनेपन के दो शब्द तक नही पूछते। परिचय अपरिचय के बीच कोई सेतु नही वासना की कमजोर रस्सी। (बात एक औरत की पृ 51)

(च) पुरुष नारी की समता मे भी दुर्बल है।

1 अनुभा तुम भी सुनलो, इस मर्दजात के साथ तभी सोओ अगर मान हासिल होता हो या पोजीशन हासिल होती हो। या फिर शादी करता हो साला। वरना मजे के लिए तो क्या, प्यार की खातिर भी सो जाओ तो ये लोग समझते क्या हैं? रडी ही। रडी को रडी नही समझेंगे, उसम तो डर भी जाएँगे कभी। (पतझड की आवजे–पृ 97)

2 ओह, नो, पुरुषो को अपनी मुसीबत के बारे मे इतनी बेचारगी स मत बताओ। क्या पता, कब कौन विवश उदासियो को सवारने की आड म कितना फायदा उठाने की सोचने लगे। (पतझड की आवाजें–पृ 30)

3 पहले एक पुरुष परिवार भर की नारिया का भार अपने ऊपर ले लेता था। आज अपना पति भी भार लेने को तैयार नही। (मोम के मोती–पृ 92)

इन पक्तियो के आधार पर महिला पात्रो की दृष्टि मे पुरुष का जो स्वरूप निर्धारित होता है वह मुख्यत तीन बातो पर आधारित है। पहला—पुरुष अविश्वनीय आचरण

के विरोधी रोगी या क्लीव हो गया है। जिसके आचरण के नियामक बिन्दुओं में उसकी वासनान्धता, उसका अहंकार, उसका अत्याचारी तथा कायरता से भरा हुआ पलायनवादी रूप अधिक मुखरित हुआ है।

निष्कर्ष

इस प्रकार महिलाओं की दृष्टि में जो पुरुष है वह सामान्यतः आज का पुरुष ही है। उसका बाह्याचार एवं चिन्तन आम आदमी के व्यवहार को ही प्रकट करता है, किन्तु घर में पत्नी के साथ उसका आचरण दोषपूर्ण है। वहाँ वह पलायनवादी, क्रूर, असहिष्णु अहंकारी यौन दुर्बलताओं से ग्रस्त है। इसलिए लेखिकाओं ने पुरुष आचरण के इस दोहरेपन को अधिक स्पष्ट किया है। वह आधुनिक विचारों का है, आधुनिक जीवन जीता है आधुनिक जीवन मूल्यों को अपनाने में सचेष्ट है लेकिन अपने संस्कारों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सका है। नूतन मूल्यों की ओर उसका झुकाव सुविधा के भोग तक ही सीमित है। जब तक आधुनिकता उसकी सुविधाओं में बाधक नहीं बनती तभी तक वह उन्हें स्वीकारता है, किन्तु ज्योंही उसके मार्ग में कुछ भी बाधाएँ आती है वह तुरन्त प्राचीन संस्कारों की दुहाई देने लगता है। अस्तु, वह पुरुष वैचारिक दृष्टि से उदारमना होते हुए भी व्यवहार में संकीर्ण मनोवृत्ति को ही धारण किए हुए है। अर्थात् उसके चिन्तन एवं आचरण में पर्याप्त असमानता है। यह पुरुष पूरी तरह स्वार्थ केन्द्रित है और अपने अहं की तुष्टि के लिए ही प्रयत्नशील रहता है। अपनी दुनिया से बाहर झाँककर देखने की प्रवृत्ति उसमें नगण्य है। किन्तु जहाँ कहीं वह बाहर की दुनिया के बारे में विचार प्रकट करता है वहाँ उसका चिन्तन आधुनिक युवा के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। इस प्रकार आधुनिक महिलाओं की दृष्टि में पुरुष का जो स्वरूप प्रस्तुत हुआ है वह न केवल आज के पुरुष के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करता है। वहीं उसके व्यवहार की समस्त त्रुटियों का उद्घाटन भी हुआ है। प्रश्न यह है कि क्या पुरुष अपने व्यवहार को इतना बदल देगा कि जिससे नारियों को उससे किसी प्रकार की शिकायत नहीं रहे।